

सर्वालिका प्रकाशन
इलाहाबाद



वाचस्पति गैरोला

अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय

NRTYĀDHYĀYA

(A work on Indian Dancing)

by

ĀŚOKAMALLA

Tr by

Vachaspati Gairola

Price Rs 15 00



भारतशासनस्य शिक्षामन्त्रालयस्य वित्तीय साहाय्येन मुद्रितम्

Printed with the Financial assistance from the Ministry of Education Government of India

अशोकमल्ल

विरचित

नृत्याध्याय

[भारतीय नाट्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ]

वाचस्पति गैरोला

प्रकाशक



संवर्तिका प्रकाशन

३३।६, करेलाबाग कॉलोनी, इलाहाबाद-३

सर्वतिका प्रकाशन
३३/९, करेलाबाग कॉलोनी, इलाहाबाद द्वारा
प्रकाशित

प्रथम सस्करण १९६९

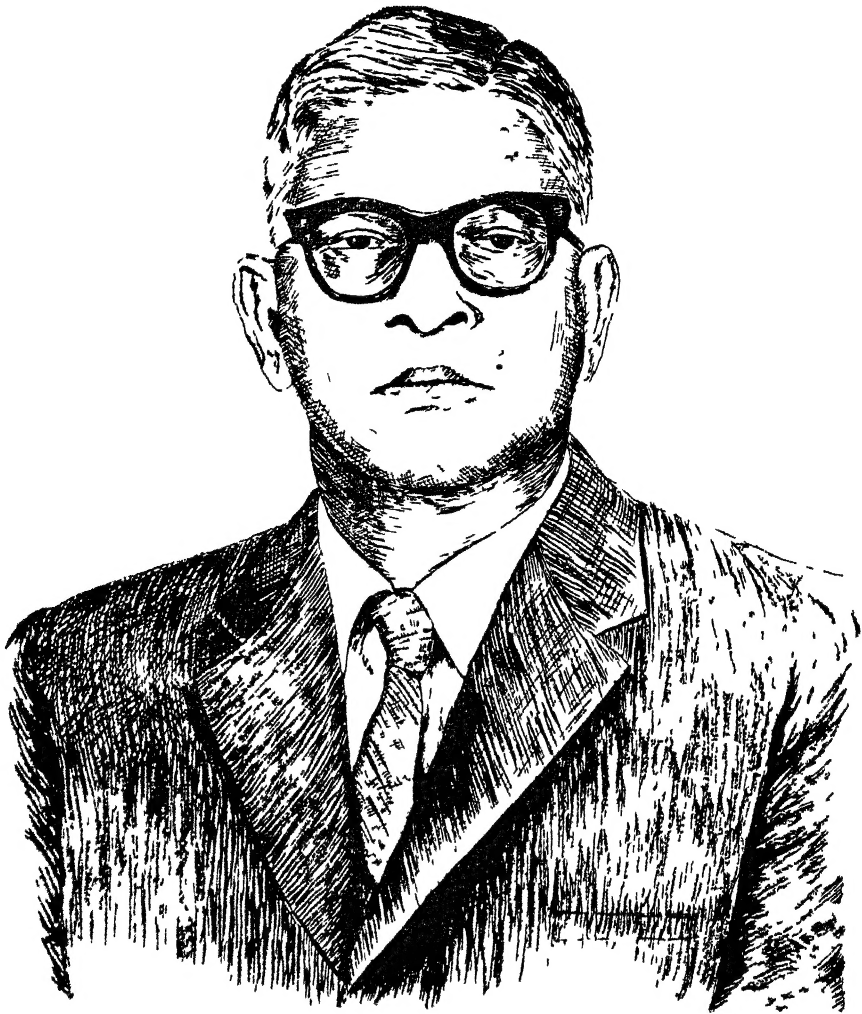
कापीराइट
श्री वाचस्पति गैरोला

आवरण सज्जा रेखानुकृति
श्री कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव
श्री शिवगोविन्द पाण्डेय

ब्लाक निर्माता
सरस्वती ब्लाक वर्क्स, इलाहाबाद

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

मूल्य १५ ००



श्रद्धेय

डाक्टर के० एन० गैरोला

को

सादर समर्पित

प्राक्कथन

अशोकमल्ल और उनका नृत्याध्याय

ग्रन्थ के अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है कि अशोकमल्ल एक राजा था। **नृत्याध्याय** के कतिपय स्थलों पर उसने स्वयं ही अपने नाम का उल्लेख किया है (यथा ५६४, ९४५, १०१८, १०६४, १०७७ और १२७२ आदि)। अपने लिए उसने अनेक प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है, जिनके आधार पर उसका राजा होना सिद्ध होता है। स्वयं को उसने **अशोकेन पृथ्वीन्द्रेण** (४६), **अशोकमल्लेन भूभुजा** (८०, १०७, १८८, ३३९, ३९९ तथा १५९७), **अशोकमल्लो नृपाग्रणी** (२८१, ५४५, ८८५ तथा १५१९ आदि) और **नृपाशोकमल्लेन** (१२९४, १३२७ एवं १४८९ आदि) राजपदवाच्य विशेषणों से अभिहित किया है। राजा होने के साथ ही उसने अपने को **धीमान्** (४६, ५२६) और **विदुषां वर** (४२८) भी बताया है। अपने लिए उसने विशेष सम्मानजनक पदवियों एवं गौरवशाली पर्यायों का भी उल्लेख किया है, जो कि ६९५, ७०७, ९७३, १०८८, १२०८ और १२१२ आदि श्लोकों में दृष्टव्य है।

परिचयात्मक दृष्टि से अशोकमल्ल के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। **नृत्याध्याय** के कतिपय स्थलों से केवल इतना ज्ञात होता है कि अशोकमल्ल के पिता का नाम वीरसिंह था। वीरसिंह भी राजपद पर आसीन हुआ, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु अशोकमल्ल द्वारा अपने लिए प्रयुक्त **वीरसिंहसुत** (३३८, ६०१ ४६५), **वीरसिंहसूनुना** (३९८, ६८६, १०१३), **वीरसिंहात्मज** (८८९, १०४१), **वीरसिंहज** (९१३, १०४८, १३०६) और **वीरसिंहसुनन्दन** (१५३७) आदि उल्लेखों से स्पष्ट है कि उसके पिता का नाम वीरसिंह था।

अशोकमल्ल कहाँ का राजा था और उसका स्थितिकाल क्या था, इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ में जिन आचार्यों का उल्लेख किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे १४वीं, १५वीं शती ई० के आस-पास हुए। ऐसा ज्ञात होता है कि वे क्षत्रिय वंशोद्भव थे और दक्षिण-मध्य भारत के निवासी। नाट्य-संगीत के वे पारगत विद्वान् थे और अन्य कलाओं में भी निष्णात थे। विद्वान् होने के साथ ही वे विद्वत्प्रिय भी थे।

उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति **नृत्याध्याय** के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अपनी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा अपने मूल रूप में वह कुछ भिन्न थी। जिस रूप में उसका एकमात्र हस्तलेख उपलब्ध हुआ है, उसमें निश्चित ही उसके लिपिकार की स्वबुद्धि का भी आंशिक समावेश देखने को मिलता है। आदि से अन्त तक उसको एक ही गति से लिपिबद्ध किया गया है और बीच-बीच में उसके अनेक स्थल स्खलित तथा अशुद्ध हो गये हैं। मूल हस्तलेख के लिपिकरण की इस अवैज्ञानिकता, अज्ञता एवं असावधानी के कारण अनेक स्थल

भी ज्ञात होता है कि उसकी इस सर्वांगीणता के कारण लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टि, दोनों प्रकार से उसको असाधारण ख्याति प्राप्त हुई।

आभार

महाराज अशोकमल्ल विरचित **नृत्याध्याय** को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा को है। श्री बी० जे० सन्देसर के प्रधान सम्पादकत्व और सुश्री डा० प्रियबाला शाह के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज संख्या १४१ में १९६३ ई० को प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की मूल हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल इन्स्टिटयूट, बडोदा के हस्तलेख-संग्रह में सुरक्षित थी। उस हस्तलेख को महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा ने अपने संगीत तथा नाट्य विषयक ग्रन्थों की सम्पादन-प्रकाशन-योजना में सम्मिलित कर उसका सम्पादन तथा प्रकाशन कराया। संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता से उसका सम्पादन तथा प्रकाशन हुआ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ ओरिएण्टल इन्स्टिटयूट, बडोदा, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा और संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, इन तीन संस्थानों से सम्बद्ध है। मुझे यह ज्ञापित करने प्रसन्नता हो रही है कि ओरिएण्टल इन्स्टिटयूट, बडोदा के निदेशक एवं **नृत्याध्याय** के प्रधान सम्पादक श्री बी० जे० सन्देसर, (B J Sandesara), महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा के रजिस्ट्रार श्री के० ए० अमीन (K A Amin) और संगीत नाटक अकादेमी नयी दिल्ली के सचिव डॉ०सुरेश अवस्थी ने मेरे निवेदन पर इस महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत करने की स्वीकृति प्रदान की। इस औदार्य एवं सहयोग के लिए मैं उक्त तीनों संस्थानों एवं सम्बन्धित विद्वान् महानुभावों के प्रति अपनी सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

संस्कृत साहित्य के इस ग्रन्थरत्न का यह सचित्र हिन्दी संस्करण सम्भवतः प्रकाश में न आया होता, यदि शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा इसके मुद्रण आदि के लिए मुझे आंशिक वित्तीय सहायता प्राप्त न हुई होती। हिन्दी साहित्य में नाट्य-विषयक लक्षण ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। इस दृष्टि से विभिन्न भारतीय भाषाओं के विशिष्ट ग्रन्थों को अनुवाद तथा रूपान्तर द्वारा अन्य भाषाओं में लाने तथा उन्हें सर्वसुलभ बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने अपनी विशेष योजना के अन्तर्गत इस ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण प्रकाशित कराया है। एतदर्थ भारत सरकार के प्रति मैं अपना सादर आभार प्रकट करता हूँ।

इस ग्रन्थ के निर्माण, मुद्रण तथा सज्जा आदि में मुझे लीडर प्रेस के व्यवस्थापक श्री बालादत्त पाण्डेय और आचार्य तारणीश झा से जो सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में नाट्यकला (Dramaturgy) विषय के अध्ययन के लिए हिन्दी के माध्यम से पाठ्य-सामग्री का जो अभाव बना हुआ है, मुझे विश्वास है कि इस उपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से उसकी पूर्ति में सहायता होगी और उसके द्वारा इस विषय के छात्रों तथा अध्येताओं का बहुत-कुछ लाभ होगा। —वाचस्पति गैरोला

विषयानुक्रम

हस्त प्रकरण एक

असयुत हस्त आर उनका विनियोग

संयुत हस्त और उनका विनियोग

नृत्तहस्त और उनका विनियोग

अग प्रत्यग प्रकरण / दो

विषयानुक्रम

दृष्टि प्रकरण / तीन

विषयानुक्रम

नृत्याध्याय

विषयानुक्रम

हस्तप्रचार प्रकरण / पाँच

विषयानुक्रम

वर्तना प्रकरण / सात

वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण

चालन प्रकरण/आठ

विषयानुक्रम

स्थानक प्रकरण नौ

स्थानकों का निरूपण

विषयानुक्रम

चारी प्रकरण / दस

चारियों का निरूपण

विषयानुक्रम

नृत्तकरण प्रकरण / ग्यारह

नृत्तकरणो का निरूपण

नृत्याध्याय

विषयानुक्रम

नृत्याध्याय

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण / बारह

अडतीस उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

अगहार रेचक मण्डल प्रकरण/तेरह

लास्याग प्रकरण / चौदह

मार्गस्थित लास्यागो का निरूपण (१)

कलास करण प्रकरण/पन्द्रह

अशोकमल्लविरचितः

नृत्याध्यायः

[मूल और हिन्दी अनुवाद]

हस्त प्रकरण / एक

अशोकमल्लविरचितः

नृत्याध्यायः

असंयुत हस्त और उसका विनियोग

५ चतुर हस्त और उसका विनियोग

--ज्योव् (? प्रयोज्यौ च) यथोचितम् ।
सखित्वे संयुतः स स्यात् सुखे तु हृदयस्थितः ॥१॥ 1

[अभिनय के समय हस्तमुद्रा को] यथोचित रूप से प्रदर्शित करना चाहिए। मित्रता का भाव अभिव्यजित करने के लिए **सयुत हस्त** का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु सुख के भाव को प्रदर्शित करने के लिए हाथ को हृदय पर अवस्थित करना उचित है।

ऊर्ध्वोत्थितो नाभिदेशाद्यौवनेऽथ मृदुन्यसौ ।
मर्दिताङ्गुष्ठकः कार्यो रचनायां त्वधोमुखः ॥२॥ 2

यौवन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उत्तानावस्था मे हथेली को ऊपर उठाते हुए धीरे से नाभि के पास ले जाकर रख दे। यदि रचना या निर्माण का भाव व्यजित करना हो तो अँगूठे को मसलते हुए हथेली को औंधा कर नाभिदेश मे अवस्थित करना चाहिए।

अथ ज्ञानेच्छयोस्तोषे चिन्तने हृदयेऽपि वा ।
अनुरागे प्रतिज्ञायां स्वभावे पण्डितेऽपि च ॥३॥ 3
अन्यदर्थे समर्थे च विश्रब्धेऽपि तथादरे ।
समाश्वासे गुणे चायं हृदयस्थो मतः सताम् ॥४॥ 4

लोकमान्य व्यक्तियो (**सताम्**) का अभिमत है कि ज्ञान, इच्छा, सन्तोष, चिन्तन, हार्दिक भाव, अनुराग,

प्रतिज्ञा, स्वभाव, पाण्डित्य, परार्थ, समर्थता या समर्थन, विश्वास, आदर, सान्त्वना और गुण आदि के भावो को अभिव्यक्त करने के लिए हृदयस्थ अधोमुख हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

परिमण्डलितो रक्ते वर्णे पीतेऽप्यसौ कनः (? र): ।
सिते वर्णे तूर्ध्वगतो नीलेऽसौ पनि (? रि) मर्दितः ॥५॥ 5

लाल और पीले रग का भाव प्रदर्शित करने के लिए मण्डलाकार हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु स्वेत वर्ण के लिए **उत्तान हस्त** का और नीले वर्ण के लिए **परिमर्दित हस्त** का प्रयोग करना चाहिए ।

आदिष्टेऽधोमुखः स स्यात् सोदर्ये बालकेऽपि च ।
स्वल्पे कुब्जे कुमार्यां च मध्ये मध्यस्थितो भवेत् ॥६॥ 6

आदेश देने, सोदर भाई ओर बाल-कथन का भाव प्रदर्शित करने के लिए हृदयस्थ हस्त को अधोमुख, और अल्पता, कुबडापन, कौमार्य ओर मध्यावस्था का भाव अभिव्यजित करने के लिए हाथ को ऊर्ध्व-अध की मध्यस्थिति मे रखना चाहिए ।

अपराधेऽप्युपादाने प्रिये च हृदि सम्मुखः ॥७॥

अपराध, स्वीकार या ग्रहण तथा प्रियजन के अभिनय मे हृदयस्थ हाथ को समुखावस्था मे रखना चाहिए ।

परिवृत्तस्त्वविनये मलिने दुर्लभेऽपि च । 7
अनुत्पन्नेऽनातुरे [? च] विस्मये निर्गुणेऽपि च ।

अविनय, मलिनता, दुर्लभता, अनुत्पत्ति, उदासीनता, विस्मय ओर निर्गुण का भाव अभिव्यजित करने के लिए **परिवृत्त चतुर हस्त** का प्रयोग करना चाहिए ।

विस्मृतावथ मायायां पापे व्यावर्तितः [? करः] ॥८॥ 8

विस्मृति, छल,कपट और पाप के आशय मे **व्यावर्तित चतुर हस्त** का विनियोग करना चाहिए ।

—स स्यादधीने सम्मुखागतः ।
अङ्गुल्यनासिकास्पर्शात्सुवर्णाभिनये भवेत् । 9

अधीनता के अर्थ मे और अनामिका उँगुलि तथा सुवर्ण का स्पर्श करने मे हथेली को समुखावस्था मे रखना चाहिए ।

मृगकर्णविनिर्देशे त्वसावुत्तानितो भवेत् ॥९॥

मुखदेशस्थितः प्रश्ने भये वाथ प्रकम्पितः । 10
असमग्रे प्रयोक्तव्यः कीदृशे मुखदेशग ॥१०॥

प्रश्न और भय के भावो को अभिव्यजित करने के लिए हाथ को कम्पित कर समुखावस्था मे रखना चाहिए । असमग्रता और '**किस तरह**' का भाव व्यजित करने मे हाथ को समुखावस्था मे रखना चाहिए ।

इदमर्थे किमर्थे च तथा ग्रथितवस्तुनि । 11
उत्तानितो मुखरथः स्यात्काव्याद्यर्थनिदर्शने ॥११॥

'यह इसलिए है' 'यह किसलिए है' ऐसा आशय व्यक्त करने तथा ग्रथित (क्रमबद्ध या गुथी हुई) वस्तु और काव्य आदि का अर्थ प्रकट करने के आशय मे हथेली को मुख के सामने उत्तानावस्था मे रखना चाहिए।

उद्वेष्टितो दर्शने स्यात् प्रयोक्तव्ये भवेदसौ । 12
उत्तानितोऽथ विश्वासे प्रयोक्तव्यो हृदि स्थितः ॥१२॥

देखने के अर्थ मे हथेली मुडी हुई, किसी वस्तु का प्रयोग करने मे उत्तान ओर विश्वास के भाव प्रदर्शित करने मे हृदय पर अवस्थित होनी चाहिए ।

परिवर्तितो भवेदेष निन्दिते तु विवर्तितः । 13
समे तूर्ध्वतलः स स्याद्दोषे तु हृदयस्थितः ॥१३॥

निन्दा के भाव प्रदर्शित करने मे हथेली उलटी या घूमी हुई होनी चाहिए। समावस्था के अभिव्यजन मे हथेली ऊपर की ओर होनी चाहिए । यदि दोष का भाव प्रदर्शित करना हो तो वही उत्तान हथेली हृदय पर अवस्थित होनी चाहिए ।

उत्तानो नयनौपम्ये पद्मपत्रेऽपि सम्मतः । 14
अथातुरे तथा सत्ये वाक्ये युक्तेऽप्यसौ करः ॥१४॥
यथोचितं बुधैर्योज्यः पथ्यकैतवयोरपि । 15

नेत्रो के सादृश्य तथा पद्मपत्र के भावाभिव्यजन मे हथेली को उत्तानावस्था मे रखना चाहिए । आतुरता, सत्यता, समीचीन वचन, पथ्य ओर प्रवचना के भाव प्रदर्शित करने मे (उत्तान स्थिति मे) , या नाटच-विशारदो द्वारा अभिमत हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

परिमण्डलितोत्तानश्चरितेऽथ स्वसम्मुखः ॥१५॥
मध्ये गते स्वस्तिकोऽसौ पुरस्कारेऽपि संमतः । 16

चरित के प्रदर्शन मे स्वसमुख हस्त को चारो ओर घुमाकर उत्तानावस्था मे रखना चाहिए। मध्यावस्था तथा पुरस्कार के अर्थ मे **स्वस्तिक** हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

संश्लिष्य मणिबन्धौ स्तः विनये चतुरोदितौ ॥१६॥

विनय के भाव प्रदर्शित करने मे दोनो कलाइयो को सटाकर **चतुर हस्त** का विनियोग करना चाहिए।

सुरते स्वस्तिकाकारौ चातुर्यवचनेषु तु । 17
संयुतौ तौ विधातव्यावर्ह्यां मुखदेशगौ ॥१७॥
स्वस्तिकौ तौ प्रयोक्तव्यौ स्वागताभिनयेऽपि च । 18
निपुणे श्लिष्टविश्लिष्टौ नेत्रे तद्देशविच्युतौ ॥१८॥
स्वस्तिकीभूय तो स्तोऽथ चाक्षुषे विस्तृताविमौ । 19
स्वस्तिकावथ कर्तव्यौ प्रजा(?ज्ञैः) स्तद्वेष्टिताविमौ ॥१९॥

रतिक्रीडा और चातुर्यपूर्ण बातो के अभिव्यज मे **स्वस्तिक** हाथो का प्रयोग करना चाहिए। पूजा-आराधना का भाव व्यक्त करने मे दोनो **स्वस्तिक** हाथो को मुख के सामने अवस्थित रखना चाहिए। स्वागत के अभिनय मे भी **स्वस्तिक** हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए। निपुणता के भाव दिखाने मे **स्वस्तिक हस्त** को मिला कर या अलग-अलग भी दिखाना चाहिए। नेत्र का भाव प्रदर्शित करने मे **स्वस्तिक** हस्त को आँख से गिरा कर रखना चाहिए। आँखो का भाव दिखाने के लिए स्वस्तिक हस्त को फैला कर भी रखा जा सकता है। नाट्यशास्त्रियो के मत से नेत्रो का भाव प्रदर्शित करने के लिए **स्वस्तिक** हस्त को वेष्टितावस्था मे भी रखा जा सकता है।

६. हसास्य हस्त और उसका विनियोग

यत्र त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः । 20
संलग्नाग्रा यदाङ्गुल्यो शेषे स्तो विरलोर्ध्वगे ॥२०॥
हंसास्यः स करः प्रोक्तस्तदा

जिस अभिनय मे तीन अग्नियो (दक्षिण, गार्हस्पत्य और आहवनीय) के विन्यास रूप तर्जनी [अँगठे के पास की उँगली], अँगुष्ठ और मध्यमा [बीच की उँगली] नामक उँगलियो के अग्रभाग सटे हो और शेष

दोनो उँगलियाँ [अर्थात् अनामिका और कनिष्ठा] अलग-अलग ऊपर की ओर उठी हो, उस हस्तमुद्रा को **हसास्य** कहा जाता है।

—त्रेताग्निदर्शने । 21
नि.सारे मृदुनि श्लक्ष्णे दधदेषोऽङ्गुलित्रयम् ॥२१॥

उक्त तीनो अग्नियो, सारहीन वस्तु, कोमल वस्तु और चिकनी वस्तु का भाव प्रदर्शित करने मे **हसास्य हस्त** का विनियोग होता है।

मर्दिताग्रमथाग्रं तु क्षिप्तं तद्वद्विधूनितम् । 22
दधल्लाद्यौ(?लद्यौ)तु शिथिले स्वल्पेऽसौ परिकीर्तितः ॥२२॥

यदि हलकी, शिथिल और स्वल्प वस्तु का भाव प्रदर्शित करना हो, तो उक्त तीनो उंगलियो के अग्रभाग को मर्दित कर, झटक कर या कम्पित कर **हसास्य हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

असौ दरिद्रे मन्देऽपि चञ्चलोऽसौ सतां मतः । 23
बुधैर्योज्यो विमर्दे तु निषेधेऽपि स मर्दित. ॥२३॥

लोक सपूज्य (सताम्) व्यक्तियो का अभिमत है कि दरिद्र और मूर्ख व्यक्ति के भाव-प्रदर्शन के लिए **हसास्य हस्त** का विनियोग करना चाहिए। इसी प्रकार विद्वान् व्यक्तियो के [illegible] युद्ध या शरीर रगडने तथा निषेध करने के आशय मे **हसास्य हस्त** को मसल कर प्रयोग मे लाना चाहिए।

हृद्यूर्ध्वाधोमुख. स स्यात् प्राणेष्वथ निषेवणे । 24
अधो घर्षन् रताश्वासे कन्दर्पेऽपि हृदि स्थितः ॥२४॥

यदि हृदय का भाव प्रदर्शित करना हो तो **हसास्य हस्त** को ऊर्ध्वमुख और प्राणो के तथा किसी वस्तु के सेवन के आशय मे अधोमुख रखना चाहिए। रतिक्रीडा के समय श्वास-प्रश्वास और कन्दर्प के भाव व्यजित करने मे भी **हसास्य हस्त** को हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए।

स्तनप्रदेशविधृतः परिहासे तरौ (?रतौ) तु सः । 25
ऊर्ध्वमुखो नियोज्योऽसार्वापितेऽधो मुखो मतः ॥२५॥

परिहास और रतिक्रीडा के प्रदर्शन मे **हसास्य** को ऊर्ध्वमुख करके स्तनो पर रखना चाहिए। अर्पण का भाव प्रदर्शित करने मे उसे अधोमुख रखना चाहिए।

अधोमुखः प्रयोक्तव्यश्व(?श्च)रणे ङ्गुधृ(?ष्ठ) देशगः । 26
अधरस्फुरणे त्वेषोऽधरस्थो विवृतोऽथ सः ॥२६॥

चरण का भाव प्रदर्शित करने मे **हसास्य** को पैर के अँगूठे के पास अधोमुख करके रखना चाहिए। निचले ओठ (अधर) के फडकने के आशय मे उसे मोड कर अधर पर रखना चाहिए।

चलाङ्गुलिस्तु लेपे स्यान्मुकुलोद्गमने तु सः । 27
ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशः प्रसवेऽपि च संमतः ॥२७॥

लेप या अगराग का भाव दिखाने मे **हसास्य** की कम्पित उँगली का और कली के निकलने तथा प्रसव का भाव व्यक्त करने मे उँगलियो को ऊर्ध्वावस्था मे सँडसी की तरह प्रयोग मे लाना चाहिए।

ऊर्ध्वमुखो विचित्रः स्याद् वसन्ताभिनये कर. । 28
अन्याङ्गुलिसमीपस्थो मुद्रायां स्यादधोमुखः ॥२८॥

वसन्त ऋतु के अभिनय मे **हसास्य** को ऊर्ध्वमुख और मुद्रा का भाव दिखाने मे अन्य उँगलियाँ के समीप अधोमुख करके रखना चाहिए।

पुष्पितेऽधोमुखः कार्यः परिमण्डलितश्चलः । 29
उदये विवृतास्योऽथ द्विस्त्रिर्वोर्ध्व चलत्करः ॥२९॥

फूल खिलने के भाव मे **हसास्य** को मण्डलाकार अवस्था मे कम्पित करते हुए अधोमुख रखना चाहिए और उदय का भाव दिखाने मे उसे खोल कर तथा ऊर्ध्वमुख करके दो-तीन बार कम्पित कर देना चाहिए।

असावुडुगणे कार्यः परावृत्तस्त्वपुष्पिते । 30
नासादेशगतः कार्यः सुगन्धिद्रव्यदर्शने ।
उचितश्चयुतसन्दन्शः पुष्पोपचयनादिषु ॥३०॥ 31

तारो तथा अपुष्पित वृक्षो के अभिनय मे **हसास्य** को परावृत्त करना चाहिए। सुगन्धित द्रव्यो का भाव दिखाने मे उसे नासिका के पास रखना चाहिए। फूल चुनने आदि का भाव प्रदर्शित करने मे उसे खुली हुई सँडसी के समान अधोमुख करना चाहिए।

७. भ्रमर हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्योः सन्दंशे तर्जनी नता ।

मध्यमा ओर अगुष्ठ परस्पर मिले हुए हो ओर तर्जनी मँडमी की तरह मुडी हुई (अँगुष्ठ के मूल पर्श करती हुई) नत हो (आर शेप दोनो उँगलियाँ अनामिका तथा कनिष्ठा सीधी फैली हो) तो उस हस्त-को **भ्रमर हस्त** कहा जाता है।

बुधैर्व्या(? र्यो)ज्योऽथ विश्वासे बालालापे च भर्त्सने ॥३१॥ 32
ताले शीले(? ते) च कर्तव्यः सशब्दो विच्युतोऽपि सः ।
तालपत्रे त्वसौ कर्णक्षेत्रमण्डलितभ्रमः ॥३२॥ 33
अक्षरेषु चलन् कार्यो भ्रमरे त्वेष कम्पितः ।
अधोमुखो नियोज्योऽथ यन्त्रेहायामिमौ करौ । 34
इतरेतरसंश्लेषात्तर्जन्योः कथितौ बुधैः ॥३३॥

ग्रविशारदो के मतानुसार विश्वास, बालको के साथ बात-चीत, डाँटने-फटकारने, तालपत्र और शीत ः का भाव अभिव्यजित करने मे **भ्रमर हस्त** को सशब्द गिराकर प्रयोग मे लाना चाहिए। तालपत्र के -प्रदर्शन मे इस हस्त को कान के चारो ओर घुमाकर प्रयुक्त करना चाहिए। अक्षरो के अभिव्यजन मे और ा की अभिव्यक्ति मे उसे कम्पित करके प्रदर्शित करना चाहिए। ग्रन्थि या कुण्डी (यत्र) खोलने की इच्छा ' करने मे दोनो भ्रमर हस्तो को अधोमुख करके रखना चाहिए। बुधजनो का कहना है कि दोनो तर्जनियो ारस्परिक गूँथने के भाव मे भी **भ्रमर हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

काँगूल हस्त और उसका विनियोग

यत्र वक्रानामिका स्यात् कनिष्ठो(? ष्ठो)र्ध्वा यदाङ्गुलिः । 35
शेषास्त्रेताग्निसंस्थाना अलग्नाग्रास्तदा करः ॥३४॥
काङ्गुगूलः संज्ञितस्तस्य विनियोगः प्रकथ्यते । 36

(अभिनय के समय) अनामिका मुडी हो, कनिष्ठा ऊपर की ओर हो, शेप अग्निस्थापन रूप तीनो र्जनी, मध्यमा और अगुष्ट) उगलियो के अग्रभाग परस्पर मिले न हो, तो उसे **काँगूल हस्त** कहा जाता उसका विनियोग इस प्रकार है

अल्पे फले मिते ग्रासे बालस्य चिबुकग्रहे ॥३५॥
चुचुकाभिनयेऽप्येष प्रसूने पञ्चकस्य च । 37
मन्त्रणे मुखदेशस्थः स्त्रीरोषवचने तु सः ॥३६॥
आस्यदेशेऽङ्गुलिक्षेपात्कर्तव्यो नृत्यपण्डितैः । 38

नृत्याचार्यों के मतानुसार थोडे फल, नपे-तुले कोर, बालक की ठुड्डी पकडने, स्तनाग्र, पॉच पूल (कमल, अशोक, आम्रमजरी, नवमल्लिका ओर रक्त अशोक), मत्रणा और स्त्री की क्रोधभरी वाणी के भाव व्यक्त करने मे उँगुलियो को मुख के पास रखकर कॉगल हस्त का विनियोग करना चाहिए।

बिडालादिपदेऽप्येष तथा यवनभोजने ॥३७॥
अधोमुखो नियोज्योऽथ वुल्पा(? ह्य_र्मा) वूर्ध्वमुखो मतः । 39
ऋतौ बिम्बे च शङ्कायां वृत्तान्ते रत्नशब्दयोः ॥३८॥

बिल्ली आदि के पैरो और यवनो के भोजन के अभिनय मे कॉगूल हस्त को अधोमख करना चाहिए। तरग, यज्ञ, बिम्ब, शका, वृतान्त, रत्न ओर शब्द के अभिनय मे उसे ऊर्ध्वमुख मे रखना चाहिए।

अग्रसंकोचनादेष सन्दष्टे कथितो बुधैः । 40
मुखस्थितो भवेदेष सन्देशवचनादिषु ॥३९॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि काटने या डक मारने के अभिनय मे कॉगुल हस्त की उँगलियो को अग्रभाग से सिकोड लेना चाहिए। सन्देश-कथन आदि के अभिनय मे उसे मुख पर अवस्थित करना चाहिए।

पृष्ठायातावुभौ कार्यौ बालाया स्वस्तिकाविमौ । 41
कुचदेशगतौ कार्यौ पश्चादर्थे तु लोकतः ।
कर्म्मान्तराण्येवमस्य बुधैरुक्तानि शास्त्रतः ॥४०॥ 42

बाला स्त्री के अभिनय मे दोनो कॉगूल हस्तो को स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित कर पृष्ट भाग से आते हुए दिखाना चाहिए। लोक-परम्परा के अनुसार इस हस्त-मुद्रा को कुचो के पास रखने का भी विधान है। इसी प्रकार नाटयाचार्यो ने शास्त्रीय दृष्टि से कॉगूल हस्त के अन्य भी अनेक भेद बताये है।

९ ताम्रचूड हस्त और उसका विनियोग

मध्यमाङ्गुष्ठयोर्यत्र सन्दंशस्तर्जनी नता ।
शेषे तलस्थिते स्तोऽसौ ताम्रचूडः करो मतः ॥४१॥ 43

यदि मध्यमा और अँगुष्ठ को मोड कर मिला दिया जाय तथा तर्जनी को घुमा कर झुका दिया जाय (किन्तु वह हथेली को स्पर्श न करती हो) ओर शेष दोनो उँगलियो (अनामिका और कनिष्ठा) को हथेली पर रख दिया जाय तो उसे ताम्रचूड हस्त कहा जाता है।

सशब्दच्युतसन्दंश एष विश्वासनादिषु ।
कलाकाप्त्या (?ष्ठा) मुहूर्त्तेषु जृम्भणेऽपि क्षणे तथा ॥४२॥ 44
गीतादिमानताले च शैघ्र्ये निर्भर्त्सनेऽपि च ।
बालाह्वानेऽप्यसावेव छोटिका प्रोच्यते बुधैः ॥४३॥ 45

विश्वास दिलाने आदि कार्यो मे, समय के परिणाम, यथा काष्ठा (कला का ३०वा भाग), मुहूर्त, जमुहाई की काल-मर्यादा तथा क्षण मे, सगीत आदि के ताल-मेल मे, शीघ्रता मे, भर्त्सना करने मे और बालको को बुलाने मे—सॅडसी की तरह मुडी एव मिली हुई उगलियो के शब्द, अर्थात चुटकी बजाने या चुटकी काटने, का प्रयोग करना चाहिए। नाटयाचार्यो ने इस **ताम्रचूड हस्त** को छोटिका (चुटकी काटने) नाम से कहा है।

मुष्टिमूर्ध्र्व (?र्ध्व) कनिष्ठं तु ताम्रचूडं परे जगुः ।
असौ योज्यः सहस्रा (?स्रा)दौ सख्यायामथविन्दुषु । 46
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिस्तद्वत्स्फुलिङ्गेष्वपि कीर्तितः ॥४४॥

कुछ विद्वान् ऐसे मुष्ठिबन्ध को **ताम्रचूड हस्त** कहते है, जिसमे कनिष्ठा उँगली ऊपर उठी हुई हो। इस हस्त-मुद्रा का विनियोग हजार आदि सख्या या विन्दुओ का भाव व्यक्त करने मे किया जाता है। इसी प्रकार कुछ लोगो के मत से यदि इस हस्त मुद्रा की उगलियो को खोल दिया जाय तो अग्निकणो के भाव प्रदर्शित करने मे उसका विनियोग किया जाता है।

१० मुष्टि हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुल्यग्रा यदा गुप्तास्तलमध्ये सुसंयताः । 47
पीडयित्वा स्थितोऽङ्गुध्वो(?ष्ठो)मध्यमा यस्यस स्मृतः ॥४५॥
करो मुष्टिरशोकेन पृथिवीन्द्रेण धीमता । 48

बुद्धिमान राजा अशोक का कहना है कि यदि हाथ की (चारो) उँगलियो के अग्रभाग को हथेली के बीच भली भॉति बॉध दिया जाय और अगुष्ठ मध्यमा को दबा कर अवस्थित रहे तो उसे **मुष्टि हस्त** कहते है।

यष्टिग्रहे किमर्थे च स्थितावप्ययमिव्य (?ष्य) ते ॥४६॥
दोहने च गवादीनां रसनिष्कासनेऽपि च । 49
कुन्तखड्गग्रहेऽप्येष मल्लयुद्धे कराविमौ ॥४७॥

लाठी पकडने, **'ऐसा क्यो'**—इस प्रकार पूछने, ठहरने, गो आदि दोहने, रस निकालने, भाला तथा

तलवार पकड़ने और दोनो हाथो से मल्लयुद्ध का भाव प्रदर्शित करने मे **मुष्टि हस्त** का विनियोग होता है।

कथने स्कन्धदेशस्थः स मनाक्कलितो मतः । 50
मध्ये मध्यप्रदेशस्थः स स्वयमित्यस्य दर्शने ॥४८॥
हृदयस्थो निरालम्बे त्वसौ स्यात्परिवर्तितः । 51
परिग्रहे यथौचित्यमप्यर्थे स्कन्धदेशगः ॥४९॥
तत्रेत्यर्थेऽप्यसावेव परिवर्तित इष्यते । 52

कहने का भाव प्रदर्शित करने मे **मुष्टि हस्त** को ईषत् कम्पन के साथ कन्धे पर रखना चाहिए। मध्य का भाव दिखाना हो तो उसे मध्य मे और **'वह स्वयं हुआ'** ऐसा भाव प्रदर्शित करने मे हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए। निराश्रय वस्तु को प्रकट करने मे उसे परिवर्तित (उल्टा) कर देना चाहिए। पकडने या भोग-सामग्री ग्रहण करने के आशय प्रकट करने मे उसे यथोचित स्थान पर रखना चाहिए। **'यह भी होगा'** ऐसा भाव दिखाने मे उसे कन्धे पर, और **'वहाँ होगा'** ऐसा आशय प्रकट करने मे कन्धे के अतिरिक्त दूसरे स्थान पर रखना चाहिए।

भञ्जने कार्मुकादीनामुपर्येकः करोऽपरः ॥५०॥
मध्यस्थः स्याद्विचारे तु बाहुदेशस्थितो मतः । 53
व्यावृत्तपरिवृत्तौ च वस्त्रकेशादिपीडने ॥५१॥
पतन्तावुत्पतन्तौ तौ वस्त्रप्रक्षालने क्रमात् । 54
संवाहनेऽप्यथ स्यातां धावने तौ पराङ्मुखौ ॥५२॥

धनुष आदि के तोडने के भाव मे एक **मुष्टि हस्त** ऊपर और दूसरा मध्य भाग मे (हृदय के पास) अवस्थित रहना चाहिए। किन्तु विचार का भाव प्रकट करने के लिए उसे बाँह पर रखना चाहिए। वस्त्रो और केशो को निचोडने मे दोनो मुष्टि हस्तो को उलट-पलट कर अवस्थित करना चाहिए। वस्त्रो को धोने के आशय मे उनको क्रमश गिराते-उठाते रहना चाहिए। बोझा ढोने और दौडने का भाव दिखाने के लिए दोनो मुष्टि हस्तो को विपरीत स्थिति मे रखना चाहिए।

११ शिखर हस्त और उसका विनियोग

ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो यदा मुष्टिस्तदासौ शिखरः करः । 55

यदि मुष्टि हस्त-मुद्रा मे अँगूठे को उँगलियो के ऊपर न मोड कर सीधे खडा कर दिया जाय, तो उस मुद्रा को **शिखर हस्त** कहते है।

कुशाङ्कुशग्रहे चापवज्रयोर्ग्रहणेऽपि च ।।५३।।
अलकोत्क्षेपणेऽप्येषोऽलक्तकोत्पीडने तथा । 56
मोक्षणे तोमरस्यासौ शक्तेरपि सतां मतः ।।५४।।

कुश, अकुश, धनुष और वज्र धारण करने, बाल झाडने या सँवारने, महावर लगाने, तोमर (भाले की तरह का अस्त्र विशेष), तथा शक्ति (साँग) नामक अस्त्रो को चलाने का भाव प्रदर्शित करने मे **शिखर हस्त** का विनियोग होता है।

नीव्यादिरचने त्वेष चञ्चलाङ्गुष्ठका मनाक् । 57
नाभिदेशस्थितो नीविधारणेऽधोमुखः स्थित. ।।५५।।

नीवी (धोती की गाँठ या इजारबन्द) आदि बाँधने के अभिनय मे **शिखर हस्त** का अँगूठा कुछ कम्पित कर देना चाहिए। किन्तु नीवी धारण करने के अभिनय मे उसे अधोमुख करके नाभि के पास रखना चाहिए।

वादने कोहलादीनां घण्टादीनां तु वादने । 58
स्वपार्श्वे दोलितोऽथासौ रञ्जनेऽलक्तकादिना ।।५६।।
अधरस्य प्रकर्तव्यस्तद्देशस्थोऽभिनेतृभिः । 59

कोहल (एक प्रकार का वाद्य यत्र) और घटा आदि बाजो को बजाने के अभिनय मे **शिखर हस्त** को बगल मे करके कम्पित कर देना चाहिए। अधर को महावर आदि से रँगने के भावाभिव्यजन मे अभिनेताओ को चाहिए कि वे **शिखर हस्त** को अधर के पास अवस्थित करे।

वंशादिजलयन्त्रे स्यात् पश्चादेकोऽपरः पुरः ।।५७।।
यवादिताडने दण्डे पतनोत्पतनान्वितः । 60
असौ शिरसि तद्देशेऽधोमुखः परिकीर्तितः ।।५८।।

बाँस आदि के बने जलयत्र के भाव-प्रदर्शन मे एक **शिखर हस्त** को पीछे और दूसरे को आगे रखना चाहिए। यव (जौ) आदि धानो के कूटने-पीटने मे प्रयुक्त डण्डे के भाव-दर्शन मे **शिखर हस्त** को उठाते-गिराते हुए (अथवा) सिर पर अधोमुख करके रखना चाहिए।

सीधुपाने मुखस्थः स्यान्नियोगे तावधोमुखौ । 61
शिरो देशगतौ कार्यौ शिखरौ नृत्यपण्डितैः ।।५९।।

नाट्याचार्यो के अभिमत से मद्यपान के अभिनय मे **शिखर हस्त** को (ऊर्ध्वमुख मे) मुख पर अवस्थित करना चाहिए । आदेश या निषेधाज्ञा के आशय मे दोनो शिखर हस्तो को अधोमुख करके शिर पर रखना चाहिए।

ऊर्ध्वाधः शिखरौ हस्तौ सम्मुखाङ्गुष्ठकौ मिथः । 62
वर्तितौ नावि संप्रोक्तौ बुधैस्तच्चालनेऽप्यथ ।।६०।।

विद्वानो का कहना है कि नाव और उसके चलाने के अभिनय मे दोनो शिखर हस्तो के अँगूठो को परस्पर आमने-सामने करके ऊपर-नीचे अवस्थित करना चाहिए ।

क्रोशनेऽङ्गुलिसंस्फोटे स्त्रीभिस्तु शिखरद्वयम् । 63
संयुतं तद्विधातव्यं संयुज्य तु वियोजितम् ।।६१।।

स्त्रियो को चाहिए कि वे चिल्लाने ओर उँगली तोडने के अभिनय मे दोनो शिखर हस्तो को पहले मिला दे और बाद मे अलग कर दे ।

नास्तीत्युक्तावथ मनाक्चलस्तूष्णी निरूपणे । 64
एव कर्मान्तराण्यस्य ज्ञातव्यानि मनीषिभिः ।।६२।।

'नहीं है' ऐसे कथन तथा मौन होने का भाव दिखाने मे **शिखर हस्त** को थोडा कम्पित कर देना चाहिए। **शिखर हस्त** के अन्य अनेक प्रयोगो की जानकारी के लिए नाट्यविशेषज्ञो का आश्रय लेना चाहिए ।

१२ कपित्थ हस्त और उसका विनियोग

करस्य शिखरस्य स्यादङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् । 65
तर्जन्यग्रं यदा यत्र कपित्थोऽसौ तदा करः ।।६३।।

यदि **शिखर हस्त** मुद्रा की तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे के अग्रभाग से दबा दिया या योजित किया जाय तो उसे **कपित्थ हस्त** कहते है ।

कार्मुकाकर्षणे योज्यो यथाभूतार्थदर्शने । 66
चक्रचापगदादीना धारणे तालवादने ।।६४।।
प्रतोदग्रहणेऽप्येष मुक्तादिग्रथने तथा । 67

धनुष खीचने, किसी वस्तु को ज्यौ-का-त्यौ दिखाने, चक्र-धनुष-गदा आदि धारण करने, ताल देने

या तबला बजाने, चाबुक धारण करने और मोती आदि गूँथने के भाव प्रकट करने मे **कपित्थ हस्त** का विनियोग होता है।

तिर्यगायत एष स्याद्रेखायामथ नाभित. ।।६५।।
ऊर्ध्वोत्थितो रोमराजौ दिग्बन्धे तूर्ध्वगो भ्रमन् । 68
सशब्दच्युतसन्दशोऽधस्त्वगादि निरूपणे ।।६६।।
उत्तानितोऽधोमुखः स्यादूर्ध्वास्य. सूक्ष्मवस्तुनि । 69

रेखा का भाव दिखाने के लिए **कपित्थ हस्त** को तिरछा करके प्रदर्शित करना चाहिए। रोमावली का भाव दिखाने के लिए उसे नाभि से ऊपर उठाना चाहिए। दिशाओ को बाँधने का भाव दिखाने मे उसे ऊपर की ओर घुमाकर फिर सँडसी के आकर मे सशब्द करके (चुटकी बजाकर) उठा देना चाहिए। पर्वत या वृक्ष का भाव दिखाना हो तो उसे उत्तान करके अधोमुख कर देना चाहिए और सूक्ष्म वस्तु के अभिव्यजन मे ऊर्ध्व-मुख कर देना चाहिए।

पुरुषे श्मश्रुदेशस्थस्तथा श्मश्रुप्रसाधने ।।६७।।
असौ पुरोगतः कार्यश्चित्रताडनयोरथ । 70
ग्रहणे पार्श्वगामी स्याच्चामरस्यापि धारणे ।।६८।।

पुरुष और दाढी-मूँछो के भाव-दर्शन मे **कपित्थ हस्त** को दाढी-मूँछो के पास रखना चाहिए। आश्चर्य और ताडन के आशय मे उसे सामने अवस्थित करना चाहिए। किसी वस्तु को ग्रहण करने और चामर धारण करने मे उसे बगल मे स्थित होना चाहिए।

उन्मूलने त्वधो गत्वोद्धृतोऽसौ सम्प्रयुज्यते । 71
नाभिदेशस्थितावेतौ नीव्याः काञ्च्याश्च बन्धने ।।६९।।

किसी वस्तु को उखाडने का भाव प्रदर्शित करना हो तो **कपित्थ हस्त** को नीचे ले जाकर ऊपर उठा देना चाहिए। नीवी (धोती की गाँठ या इजारबन्द) और काँची (मेखला या करधनी) खोलने मे दोनो कपित्थ हस्तो को नाभि के पास रखना चाहिए।

कटिक्षेत्रगतौ कार्यौ खड्गाद्यायुधबन्धने । 72
अवश्यं सर्वथास्थानेऽवधारणनिरूपणे ।।७०।।

कपित्थौ हस्तकौ स्यातामथ सत्ये वरे तथा । 73
उपपन्नेऽप्येवमर्थे यथौचित्यं स युज्यते ।

तलवार आदि आयुधों के बाँधने के भावाभिव्यंजन मे दोनो कपित्थ हस्तो को कमर पर रखना चाहिए। निश्चय करने के आशय मे दोनो कपित्थ हस्तो को सर्वथा उपयुक्त स्थान मे रखना चाहिए। सत्य, वरदान और समीचीन वस्तु का भाव प्रकट करने मे **कपित्थ हस्त** को यथोचित रीति से प्रयोग करना चाहिए।

शिखरस्यापि कर्माणि योज्यान्यस्मिन्यथोचितम् ॥७१॥ 74

शिखर हस्त के अभिनय मे भी **कपित्थ हस्त** का यथोचित रीति से प्रयोग किया जा सकता है।

१३ खटकामुख हस्त और उसका विनियोग

कपित्थस्योत्थिते वक्रे यत्रानामाकनिष्ठिके ॥७२॥
यदा तदासौ खटकामुख. प्रोक्तो मनीषिभिः । 75

यदि **कपित्थ हस्त** की अनामिका और कनिष्ठा उँगलियाँ उठी होकर (अग्रभाग से) मुडी हुई हो, तो मनीषियो के मतानुसार उस मुद्रा को **'खटकामुख हस्त'** कहा जाता है।

असौ शराकर्षणे स्याद्दर्पणग्रहणे तथा ॥७३॥
बालग्रहे स्रगादाने छत्रचामरधारणे । 76
पुष्पावचयने हारे बीटिकादिग्रहेऽपि च ।
पत्रवृन्तच्छेदने च योज्यो धीरैर्यथोचितम् ॥७४॥ 77

खटकामुख
८ कपित्थ हस्त का विनियोग बाण-सन्धान करने शीशे मे मुँह देखने, बच्चे को गोद मे लेने माला पहनने, छत्र तथा चामर धारण करने, फूल चुनने, हार तथा ताम्बूल आदि ग्रहण करने और पत्तो के डठल तोडने के अभिनय मे होता है।

च्युतसन्दंश एष स्याद् बन्धनस्थेऽथ पार्श्वगः ।
वक्षोदेशात्प्रयोक्तव्यश्चित्तस्याहरणे बुधैः ॥७५॥ 78

बन्धन मे पड हुए का भाव प्रदर्शित करने मे सँडसी की भाँति फैलाकर इस हस्त को बगल मे रखना चाहिए। बुध जनो का मत है कि चित्तहरण के भाव-दर्शन मे इसका प्रयोग वक्ष पर करना चाहिए।

सयुद्धृतौ त्वधो गत्वोद्धृतोऽथ स भवेत्करः ।
संगमादौ वरस्त्रीणां प्रियेणांशुककर्षणे ॥७६॥ 79

किसी वस्तु को उठाने और उत्तम सुन्दरी स्त्रियो के साथ रति-केलि आदि करने मे प्रिय के द्वारा वस्त्र खीचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए **खटकामुख हस्त** को नीचे ले जाकर ऊपर की ओर उठा देना चाहिए।

शीर्षदेशाल्ललाटस्थो वधूनामवगुण्ठने ।
मन्थस्याकर्षणे योज्यौ दधतौ तौ गतागतौ ।।७७।। 80

स्त्रियो का घूँघट काढने का भाव प्रदर्शित करने मे दोना खटकामुख हस्तो को शिर के ऊपर रखना चाहिए और मथानी चलाने के आशय मे उन्हे आगे-पीछे की ओर सचालित करना चाहिए।

ऊर्ध्वगाधोमुखावेतौ बन्धनेऽथांशुकस्य तु ।
परिधाने नाभिगतावितरेतरसम्मुखौ ।।७८।। 81

मलमल या रेशमी वस्त्र बॉधने के भाव मे खटकामुख हस्तो को क्रमश ऊर्ध्वमुख और अधोमुख करना चाहिए। यदि वस्त्र पहनने का भाव दर्शित करना हो तो उन्हे नाभि के निकट आमने-सामने अवस्थित कर देना चाहिए।

इमौ विच्युतसन्दंशौ निराशे समुदाहृतौ ।
पेषणे कुङ्कुमादेस्तु कार्यावितावधस्तलौ । 82

निराशा का भाव दिखाने के लिए उन्हे सँडसी की तरह खोल कर लटका देना चाहिए। यदि केसर आदि के पीसने का आशय प्रकट करना हो तो उन्हे निम्न स्थान पर ले जाना चाहिए।

यथासम्भवमेतस्मिन्कर्माण्यूह्यानि पण्डितैः ।।७९।।

उक्त विनियोगो के अतिरिक्त नृत्याचार्यो ने **खटकामुख हस्त** के अन्य भी प्रयोग बताये है। उनका भी आवश्यकतानुसार उपयोग करना चाहिए।

१४ सूचीमुख हस्त और उसका विनियोग

ऊर्ध्वप्रसारिता चेत्स्यात् खटकास्यस्य तर्जनी । 83
तदा सूचीमुखः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ।।८०।।

यदि **खटकामुख हस्त** मुद्रा की तर्जनी को ऊपर की ओर सीधे फैला दिया या तान दिया जाय तो नृपति अशोकमल के मतानुसार उसे **सूचीमुख हस्त** कहते है।

तर्जन्यस्य भ्रमन्त्यूर्ध्वमुखा चक्रायुधे मता । 84
घटोपकरणे चक्रे भ्रमन्ती स्यादधोमुखी ।।८१।।

निजपार्श्वे भ्रमन्ती सा रथचक्रनिदर्शने । 85
जनसङ्घे निजं पार्श्वमायान्ती चान्यपार्श्वतः ॥८२॥
साधुवादे ध्वजेऽप्येषा दोलिता परिकीर्तिता । 86

चक्रायुध के अभिनय मे **सूचीमुख हस्त** तर्जनी को घुमाते हुए ऊर्ध्वमुख कर देना चाहिए । घटादि सामग्री से सम्बद्ध चाक के आशय मे उसे घुमाते हुए अधोमुख कर देना चाहिए । रथ के पहिए का प्रदर्शन करने मे उसे अपने पार्श्व मे घुमाना चाहिए । यदि जन-समूह का भाव दिखाना हो तो उसे अन्य पार्श्व से स्वपार्श्व मे आते हुए प्रदर्शित करना चाहिए । साधुवाद और ध्वजा का भाव दर्शित करने मे उसे कम्पित कर देना चाहिए ।

ऋजुरूर्ध्वा तु सैकत्वे श्वासे नासास्थिता मता ।
ईषत्प्रकम्पितायान्ती कर्णान्त कर्णभूषणे ॥८३॥ 87

एकता का भाव दिखाने के लिए उसे सीधा ऊपर की ओर रखना चाहिए और श्वास के आशय मे नासिका पर अवस्थित करना चाहिए । कर्णभूषण का भाव दिखाने मे उसे ईषत् कम्पन के साथ कान तक ले जाना चाहिए ।

स्तवकेषु समाकुञ्च्य मनाक्कार्या प्रसारिता ॥८४॥

यदि पुष्पादि स्तवको (गुच्छो) का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसे सिकोडकर कुछ फैला देना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः शीघ्रमायान्ती विद्युत्येषा स्मृताबुधैः । 88
कुष्माण्डादिलतासूर्ध्वा भ्रमन्ती मण्डलाकृतिः ॥८५॥

विद्वानो का अभिमत है कि विद्युत का भाव प्रदर्शित करने के लिए **सूचीमुख हस्त** को ऊपर से शीघ्रतापूर्वक नीचे आते हुए दिखाना चाहिए । यदि कुम्हडे आदि लताओ का अभिनय करना हो तो उसे मण्डलाकार घुमाते हुए ऊपर की ओर ले जाना चाहिए ।

चला किसलये तु स्याद्दीपे चाथोडुदर्शने । 89
ऋजुरूर्ध्वमुखो योज्यो भ्रमन्मण्डलिताकृतिः ॥८६॥

नवपल्लव तथा दीपक का भाव प्रदर्शित करने के लिए **सूचीमुख हस्त** को कम्पित कर देना चाहिए और तारो का भाव दिखाने के लिए उसे सीधे ऊर्ध्वमुख करके मण्डलाकार रूप मे घुमा देना चाहिए ।

पतनेऽधः पतन्कार्यो दंष्ट्राभिनयने पुनः । 90
मनाक् पार्श्वनतावेतावोष्ठप्रान्तगतौ करौ ॥८७॥

गिरने के भाव मे उसे नीचे गिराते हुए प्रदर्शित करना चाहिए और दष्ट्रा (दाढ या हाथी के दाँत) के अभिनय मे दोनो सूचीमुख हस्तो को बगल मे थोडा झुकाकर ओठो के निकट अवस्थित कर देना चाहिए।

संयोगे त्वस्य तर्जन्यौ कर्तव्ये पार्श्वसयुते । 91
अधस्तले वियोगे तु विधातव्ये वियोजिते ।।८८।।

यदि सयोग का भाव दिखाना हो तो दोनो सूचीमुख हस्तो की तर्जनियो को पार्श्व भाग से मिला देना चाहिए और यदि वियोग का भाव प्रदर्शित करना हो तो उनको अव भाग से वियुक्त कर देना चाहिए।

कलहे स्वस्तिकाकारे नियोज्ये ते विचक्षणैः । 92
धूमे सा मण्डलाकारभ्रान्ताथात्यन्तचञ्चला ।।८९।।

विद्वानो का मत हे कि कलह का भाव दर्शित करने मे दोनो सूचीमुख हस्तो को **स्वस्तिकाकार** मुद्रा मे प्रयुक्त करना चाहिए। धुएँ का भाव दिखाने के लिए **सूचीमुख** हस्त को **मण्डलाकार** मे तीव्रगति से कम्पित कर देना चाहिए।

बालसर्पे भवे(? द्)देव्याक्रेथे(? व्याः केशे)वक्रप्रसारिता । 93
कम्पमानाथ कर्तव्या निर्देशे तु रिपोरियम् ।।९०।।

बाल सर्प और देवी के केशो का भाव प्रदर्शित करने मे **सूचीमुख** हस्त को टेढा करके प्रसारित कर देना चाहिए। शत्रु का निर्देश करने के आशय मे उसे कम्पित कर देना चाहिए।

पार्श्वोत्ताना कुन्तले तु कुण्डलाङ्गदयोस्तथा । 94
तत्तद्देशगता कार्या कूपावर्ते त्वधोमुखी ।।९१।।

शिर के बाल, कुण्डल तथा केयूर (भुजबन्द) आदि के भावाभिव्यजन मे **सूचीमुख** हस्त को पार्श्व भाग से ऊर्ध्वमुख करके उन-उन स्थानो पर रखना चाहिए। कुएँ के भँवर के आशय मे उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

ऊर्ध्वलोके तु सर्वेषामादिमेऽपि च सोर्ध्वगा । 95
जृम्भायां तु मुखाभ्यासे नियोज्या सा मनीषिभिः ।।९२।।

मनीषी जनो का कहना है कि ऊर्ध्वलोक, सर्वप्रथम, जँभाई और मुखाभ्यास का भाव दिखाने के लिए उसे ऊर्ध्वमुख करना चाहिए।

श्रोत्रकण्डूयने दुष्टश्रवणे चास्य तर्जनी । 96
कर्णरन्ध्रागता कार्या कुन्तले क्षेपणे पुनः ।।६३।।

कान खुजलाने, कटुवाणी सुनने, शिर के बाल और किसी वस्तु को फेकने के आशय मे **सूचीमुख हस्त** की तर्जनी को कान के छिद्र तक ले जाना चाहिए ।

स्वेदापनयनेऽज्ञातपृच्छायां तर्जनेऽपि च । 97
लोकयुत्त्यनुसारेण योज्यैषा नृत्यपण्डितैः ।।६४।।

नृत्याचार्यों का अभिमत है कि पसीना पोछने, अज्ञात वस्तु के सम्बन्ध मे पूछने और डाँटने-धमकाने का भाव प्रकट करने मे **सूचीमुख हस्त** का लोक परम्परा के अनुसार विनियोग करना चाहिए ।

अधोमुखी ललाटस्था हराभिनयने मता । 98
इन्द्राभिनयने त्वेषा तिरश्चीना तथोन्नता ।।६५।।
परिवेषेभ्रमन्तो सा तिर्यग्मण्डलिताकृतिः । 99

शकर के अभिनय मे **सूचीमुख हस्त** को अधोमुख करके ललाट पर रखना चाहिए और इन्द्र के अभिनय मे उसे उन्नत तथा तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए। (सूर्य आदि के) मण्डल के प्रदर्शन मे उसे मण्डलाकार बनाकर तिरछा घुमाना चाहिए ।

इदमर्थेऽधोमुखी साभिहिते मुखदेशगा ।।६६।।

'यह इस लिए है' ऐसा भाव प्रदर्शित करने मे उसे अधोमुख कर देना चाहिए और कही हुई बात के अभिनय मे उसे मुख पर अवस्थित रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या भ्रमन्ती लोकसर्वयोः । 100
भ्रमन्त्यौ संयुते भ्रान्तौ संयुक्तासु सखीष्वियम् ।।६७।।

लोक तथा समष्टि का भाव दिखाने मे इस हाथ को घुमाकर ऊपर से नीचे गिरा देना चाहिए। भ्रान्ति का भाव प्रकट करने मे दोनो सूचीमुख हस्तो को घुमाकर सटा देना चाहिए और समवेत सखियो के अभिनय मे एक ही **सूचीमुख हस्त** को घुमाना चाहिए ।

अधःपार्श्वगता कार्या संरम्भे स्वस्तिकाकृतिः । 101
अधोमण्डलिता कार्या पल्लवेऽथ मुखास्थिता ।।६८।।

(किसी कार्य को) आरम्भ करने के अभिनय मे **सूचीमुख हस्त** को **स्वस्तिक** मुद्रा मे नीचे बगल मे रखना चाहिए और पल्लव के भाव-प्रदर्शन मे उसे नीचे घुमाकर मुख पर रखना चाहिए ।

दूते ते ऊर्ध्वमुख्यौ तु समानाभिनये म(?न) ते । 102
भानौ चन्द्रे च कर्तव्या भ्रमन्ती दक्षिणा बुधैः ॥९९॥

दूत के अभिनय मे दोनो सूचीमुख हस्तो को ऊर्ध्वमुख करके समान रूप से प्रदर्शित करना चाहिए । सूर्य और चन्द्रमा के अभिनय मे उसे दाहिनी ओर घुमाना चाहिए, ऐसा विद्वानो का कथन है ।

प्रतिद्वन्द्विनि ते स्यातामूर्ध्वाग्रे प्रमुखे पुनः । 103
ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या प्रस्तुतेऽपि बुधैरियम् ॥१००॥

प्रतिद्वन्द्वी, अग्रगामिता और प्रमुखता के अभिनय मे दोनो सूचीमुख हस्तो को ऊर्ध्वमुख करना चाहिए । प्रस्तुत वस्तु के भाव-प्रदर्शन मे एक **सूचीमुख हस्त** को ऊपर उठा कर नीचे गिरा देना चाहिए, ऐसा बुद्धिमान् व्यक्तियो का कहना है ।

विभक्ते छेदने चैते योज्येते विच्युते उभे । 104

किसी वस्तु को विभक्त करने तथा काटने के अभिनय मे दोनो सूचीमुख हस्तो को गिराकर प्रदर्शित करना चाहिए ।

पुरोमुखी सूचिते सा मन्त्रणे मुखदेशगा ॥१०१॥
प्रणामेऽधःपतन्ती सा सूर्यास्ते वामपार्श्वगा । 105

किसी सूचित वस्तु के अभिनय मे **सूचीमुख हस्त** को अग्रमुख करके रखना चाहिए और मन्त्रणा के अभिनय मे उसे मुख पर अवस्थित करना चाहिए । प्रणाम करने के भाव मे उसे नीचे गिराना तथा सूर्यास्त के आशय मे बॉयी बगल मे रखना चाहिए ।

विश्लिष्टे ते पराङ्मुख्यौ दक्षिणात्पार्श्वतोमते ॥१०२॥
पार्श्व व्यत्ययतो योज्ये निशान्ते तद्वदेव ते । 106
संयुक्ता तु सहाये स्यादथ रक्तप्रमोक्षणे ॥१०३॥

नृत्याचार्यो के मत से वियुक्त करने के अभिनय मे दोनो सूचीमुख हस्तो को विमुख करके दाहिनी बगल मे रखना चाहिए । रात्रि के अन्तिम भाग के प्रदर्शन मे उसी प्रकार वियुक्त करके दाहिनी बगल मे रखना चाहिए । मित्र या सहायक तथा रक्त निकालने के आशय मे उन्हे सयुक्त करके रखना चाहिए ।

के भाव-प्रदर्शन मे इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए। परित्राण देने के अर्थ मे उसका मुँह मुडा हुआ होना चाहिए , और अनुवाद का भाव प्रदर्शित करने मे उसे कानो के समीप रखना चाहिए।

शिरोवेष्टित एष स्याद् भूपालाभिनये करः ।
स वैद्ये त्वेकहस्तस्थनाडिकादेशसश्रितः ॥११०॥ 114

राजा के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** को शिर पर घुमा कर रखना चाहिए और वैद्य के अभिनय मे उसे एक हाथ की नाडी पर रखना चाहिए।

मुखप्रदेशमागच्छन्नसौ योज्यो जनान्तिके ।
चलदङ्गुलिरुत्तानोऽभिव्यक्तेऽथ विसर्जने ॥१११॥ 115

अभिनय के समय (रगमच) पर अभिनेता द्वारा दूसरे के सामने कुछ करने का भाव प्रदर्शित करने मे **त्रिपताक हस्त** को मुख के पास ले जाना चाहिए। किसी बात को प्रकट करने और विमर्जन के आशय मे उसे, उगलियो को कम्पित करते हुए, उत्तानावस्था मे रखना चाहिए।

पुरोगतस्तिरस्कारेऽतिक्रमे परिवर्तितः ।
त्रिपताकं यदा वामनुगच्छेत्पर. करः ॥११२॥ 116
तदानुवृत्ते योज्योऽयं पत्यौ तु शिरशि स्थित. ।
अयमन्तःपुरे तु स्यात्स्वास्तिकाकृतितां गतः ॥११३॥ 117

तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करने मे उसे सामने रखना चाहिए और उल्लघन के आशय मे उसे उलट कर रखना चाहिए। एक के पीछे दूसरे को चलने अथवा अनुकरण करने के अभिनय मे दाहिने **त्रिपताक हस्त** को आगे और बॉये **त्रिपताक हस्त** को उसका अनुसरण करते हुए दिखाना चाहिए। पति का भाव दिखाना हो तो उसे शिर पर रखना चाहिए और अन्त पुर के अभिनय मे उसे स्वस्तिकाकार बनाना चाहिए।

मुखदेशे तु पार्श्वस्थो विविक्ते गदितो बुधैः ।
कुञ्चिताधस्तलीभूय नेये स स्यात्प्रसारितः ॥११४॥ 118

विद्वानो का कहना है कि एकान्त के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** को मुख के एक बगल मे रखना चाहिए और ले जाने के भाव-प्रदर्शन मे उसे निम्न भाग से मोड कर फैला देना चाहिए।

अहमित्यादिनिर्देशे हृदयाभिमुखो मतः ।
व्यक्तः कुटलकेशेषु मुहुरुद्वेष्टितो बुधैः ॥११५॥ 119

'मै' इत्यादि के निर्देश के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** को हृदय के सम्मुख रखना चाहिए । विद्वानो का अभिमत है कि घुंघराले बालो के अभिनय मे उसे चारो ओर से घिरा या मुडा हुआ प्रदर्शित करना चाहिए ।

मुखान्तरित एष स्याद् व्याजेऽथानुप्रवेशने ।
चलाङगुलिरथाल्पेऽर्थे व्यावर्तितनतोन्नतः ॥११६॥ 120

छल-कपट तथा प्रवेश करने के अभिनय मे उसे मुख के पास रखना चाहिए और अल्पता के अर्थ मे उसकी उँगलियो को कम्पित करके उलटे, झुके तथा उठे हुए रूप मे प्रस्तुत करना चाहिए ।

कुले त्वयं नियोक्तव्य ऊर्ध्वाधश्चलदङ्गुलिः ।
संशये दधदङ्गुल्यौ क्रमादेष नतोन्नते ॥११७॥ 121

कुल के अभिनय मे उसकी उँगली को ऊपर-नीचे कम्पित करते हुए प्रयुक्त करना चाहिए। सन्देह के भाव-प्रदर्शन मे उसकी दो उँगलियाँ क्रमश नत और उन्नत होनी चाहिए ।

अनादरेऽधस्तल स्याद्वहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वयः ।
अलकापनयने स स्याद्भालादलकसंश्रितः ॥११८॥ 122

अनादर के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** की हथेली नीचे की ओर तथा उसकी दो उँगलियाँ नीचे की ओर फेकी हुई होनी चाहिए और केशो को हटाने के अभिनय मे उसे ललाट पर केशो से सटा हुआ होना चाहिए ।

–कुञ्चिताङ्गुलि (? को) भ्रमन् ।

उसकी उगलियो को मोडकर घुमाते हुए [?]. ।

मस्तकाच्चेद्भ्रमत्यूर्ध्वं तदा मुकुटधारणे । 123
तिलके स्यादूर्ध्वमेष भ्रुवोर्मध्याल्ललाटग. ॥११९॥

मुकुट धारण करने के अभिनय मे उसे मस्तक के ऊपर घुमाना चाहिए । तिलक धारण करने के भाव-प्रदर्शन मे उसे ऊपर भँवो के बीच से ललाट पर रखना चाहिए ।

विकृते घोषवाग्गन्धे कर्णास्यघ्राणसंवृतिम् । 124
क्रमात्कुर्वन्नङ्गुलिभ्यामथ(?धः)स्यात् कटिदेशतः (?ग.) ॥१२०॥

विकार, शब्द, वाणी तथा गन्ध के भावाभिव्यजन मे दो उँगलियो से क्रमश कान, मुख तथा नाक को ढकते हुए **त्रिपताक हस्त** को नीचे कमर के हिस्से मे रखना चाहिए ।

क्रमादधस्तिर्यगूर्ध्वं क्षुद्रे स्रोतसि मारुते । 125
तथाविधे खेचरे च दधदेष चलाङ्गुली ॥१२१॥

छोटे सोते, वायु तथा आकाशचारी जीवो के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** की कम्पित उँगलियो को क्रमश नीचे, तिरछे तथा ऊपर अवस्थित करना चाहिए ।

विच्युतानामिकाङ्गुष्ठसन्दशोऽश्रुप्रमार्जने 126
आकाशाभिनये तूर्ध्वमुखोऽथाधोमुखो भुवि ॥१२२॥

आँसू पोछने के अभिनय मे इस हाथ की अनामिका तथा अँगुष्ठ उँगलियो को सँडमी की तरह मोड कर नीचे लटका देना चाहिए । आकाश के अभिनय मे इस हस्त को ऊर्ध्वमुख तथा भमि के अभिनय मे अधोमुख रखना चाहिए

इतस्ततश्चलन्नेष बालसर्पनिरूपणे । 127
बाहुशीर्षसमुत्थोऽयमूर्ध्वप्राप्ताङ्गुलिद्वयः ॥१२३॥

बालसूर्य के अभिनय मे **त्रिपताक हस्त** को इधर-उधर चलाते हुए, दो उँगलियो को ऊपर करके बाँह तथा शिर पर रख देना चाहिए ।

साग्निधूमे प्रयोक्तव्यो वक्रमार्गेष्वधोमुखः । 128
पुरश्चलन्नुच्चनीचभुव्यूर्ध्वाधोमुखः करः ॥१२४॥

अग्नि तथा धूम और टेढे मार्गो के अभिनय मे उसे अधोमख करके प्रदर्शित करना चाहिए । ऊँची-नीची भूमि के भाव-प्रदर्शन मे उसे आगे चलाते हुए ऊपर-नीचे कर देना चाहिए ।

कुञ्चिताङ्गुलिरेष स्यात्कर्णस्थश्चापकर्षणे । 129
बालेन्दुदर्शने कार्यः प्रसृताङ्गुष्ठसम्मुखः ॥१२५॥

धनष को खीचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए **त्रिपताक हस्त** को कान पर रखना चाहिए और उँगलियो को मोड लेना चाहिए । बालचन्द्र के अभिनय मे उसके अगुष्ठ को फैलाकर सामने रखना चाहिए ।

पराङ्मुखो नृणां याने प्रयोक्तव्यो विचक्षणैः । 130
अधोमुखौ स्वस्तिकौ तौ गुरुपादाभिवन्दने ॥१२६॥

विद्वज्जनो को चाहिए कि मनुष्यो की सवारी के अभिनय मे वे **त्रिपताक हस्त** को पराङमुख (अर्थात् प्रतिकूल दिशा मे) करके प्रयुक्त करे । गुरु के चरणस्पर्श के अभिनय मे दोनो त्रिपताक हस्तो को **स्वस्तिक** बनाकर अधोमुख कर देना चाहिए ।

विवाहदर्शने स्यातां श्लिष्टौ तावितरेतरम् । 131
भूपालदर्शने तौ स्तो विच्युतौ तु ललाटगौ ॥१२७॥

विवाह के अभिनय मे दोनो **त्रिपताक हस्त** परस्पर सम्बद्ध करके रखने चाहिएँ और राज-दर्शन के अभिनय मे दोनो को अलग करके ललाट पर अवस्थित करना चाहिए ।

तौ तिर्यक्स्वस्तिकौ स्यातां सम्बद्धौ वेश्मदर्शने । 132
तपस्विदर्शने स्याता तावूर्ध्वौ तु पराङ्मुखौ ॥१२८॥

गह दिखाने मे दोनो त्रिपताक हस्तो को स्वस्तिकाकार मे सबद्ध करके तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए । तपम्वी के दर्शन मे उन्हे ऊपर करके पराङमुख (अर्थान् विरुद्ध दिशा मे) कर देना चाहिए ।

अन्योन्याभिमुखौ तौ तु वियोज्यौ हारदर्शने । 133
मुखाग्रसंश्रितौ कार्यावुत्तानाधोमुखीकृतौ ॥१२९॥

हार के प्रदर्शन के अभिनय मे उन दोनो हस्तो को एक-दूसरे के आमने-सामने करके दोनो के मुखाग्र भाग को मिलाकर उर्ध्वमुख तथा अधोमुख कर देना चाहिए ।

नक्राणा वडवाग्नेश्च मकराणां च दर्शने । 134
अन्योन्याभिमुखौ द्वारे सहार्थे संयुतौ मतौ ॥१३०॥

घडियालो, वडवाग्नि, मगरो, द्वार तथा साथ के अभिनय मे दोनो हाथो को परस्पर सम्मुख करके सयुक्त कर देना चाहिए ।

वानरे मुखदेशस्थावुत्तानाभिमुखाविमौ । 135
न जानामीति वाक्यार्थे छादितश्रोत्रसम्पुटौ ॥१३१॥

वानर के प्रदर्शन मे दोनो हस्तो को उत्तान एव आमने-सामने मुख के पास रखना चाहिए । **'मै नहीं जानता हूँ'** इस कथन के प्रदर्शन मे उनसे दोनो कर्ण-विवरो को ढक देना चाहिए ।

इमावन्योन्यसंश्लिष्टौ स (?हृ) द्गतावुत्थितौ पुनः । 136
सम्भाविते प्रकर्तव्यौ पूर्वाचार्यैरिमौ करौ ॥१३२॥

पूर्वाचार्यो के मत से सम्भावना के अभिनय मे दोनो त्रिपताक हस्तो को एक-दूसरे से मिलाकर पुन हृदय पर उठाकर रख देना चाहिए ।

१६ कर्तरीमुख हस्त और उसका विनियोग

हस्तस्य त्रिपताकस्य यद्यश्लिष्टा तु तर्जनी । 137
मध्यमायां स्थिता पृष्ठे तदासौ कर्तरीमुखः ॥१३३॥

यदि **त्रिपताक** हस्त-मुद्रा की तर्जनी उँगली को अलग करके उसे मध्यमा उगली के पृष्ठभाग मे अवस्थित किया जाय (और मध्यमा को अनामिका के साथ हस्ततल की ओर मोड दिया जाय) तो उसे **कर्तरीमुख हस्त** कहते है ।

क्रमे स्थितौ च क्षेपे (च) तथैवात्मगतेऽप्यसौ । 138
अशून्ये तद्विधेत्यर्थे स भिन्नवलितो भवेत् ॥१३४॥

क्रम, स्थिति, क्षेपण, स्वगत भाषण, अशून्य तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थो के अभिनय मे **कर्तरीमुख हस्त** को बिना मोडे हुए प्रदर्शित करना चाहिए ।

ऊर्ध्वास्योऽसौ कपोलादौ पत्रादिरचने मतः । 139
अलक्तकादिचरणरञ्जने मार्गदर्शने ॥१३५॥
असावधोमुखः कार्यो दर्शने कर्णदेशगः । 140
नासाक्षेत्रादथाग्रस्थो भवेदुत्तानिताङ्गुलिः ॥१३६॥

कपोल आदि पर पत्र आदि की रचना करने के प्रदर्शन मे इस हाथ का मुख ऊपर को होना चाहिए । महावर आदि से चरणो को रँगने तथा मार्ग दिखाने मे उसे अधोमुख कर देना चाहिए । देखने के आशय मे उसे कान के समीप ले जाकर फिर नाक के अग्र भाग मे, उँगली को उत्तान करके, अवस्थित रखना चाहिए ।

लेखप्रवाचनेऽथासौ मरणे पतनेऽपि च । 141
वितर्कितेऽपराधे च परिवर्ते व्यतिक्रमे ॥१३७॥
व्यत्यस्ततर्जनीकः स्यादवाङ्मुखचलाङ्गुलिः । 142
अयं तु पादविन्यासे योज्यस्तद्देशगो बुधैः ॥१३८॥

लेख बाँचने, मरण, पतन, दलील देने, अपराध, परिवर्तन और उल्लघन के भाव-प्रदर्शन मे **कर्तरीमुख हस्त** की तर्जनी को विपरीत दिशा मे रखकर शेष उँगलियो को कम्पित कर देना चाहिए ।

सौधान्तःपुरयोरेष स्वस्तिकः परिदेवने । 143
मुखदेशस्थितोऽथैकोऽनुगतोऽनुगते करः ॥१३९॥
अपरेण करेणाथ हताशे परिवर्तितः । 144
हृदयस्थोऽथ पार्श्वाच्चेद्दक्षिणाद्वामपार्श्वगः ॥१४०॥

महल तथा अन्त पुर के भाव-प्रदर्शन मे **कर्तरीमुख हस्त** को स्वस्तिकाकार होना चाहिए । विलाप करने के अभिनय मे उसे मुख पर और अनुगमन करने के आशय मे दोनो हाथो का परस्पर अनुगत कर देना चाहिए (अर्थात् एक हाथ के पीछे दूसरे हाथ को रख देना चाहिए) । हताश के भाव-प्रदर्शन मे उसे दाहिनी बगल से बॉयी बगल की ओर परिवर्तित करके हृदय पर अवस्थित करना चाहिए ।

तदा दाननिषेधे स प्रकाशे वृष्टिदेशतः । 145
दक्षिणस्तु करो वामं पार्श्वमागत ईरितः ।

दान के निषेध तथा प्रकाश के अभिनय मे दाहिने हाथ को क्षेत्रप्रान्त से लाकर वाम पार्श्व मे रखना चाहिए ।

इमौ शिरःस्थौ कर्तव्यौ शृङ्गाभिनयने करौ ॥१४१॥ 146

सीग के अभिनय मे दोनो कर्तरीमुख हाथो को शिर पर रखना चाहिए ।

१७ अर्धचन्द्र हस्त और उसका विनियोग

स्थितेऽन्यतोऽङ्गुलीसंघे विततेऽङ्गुष्ठके सति ।
योऽर्धचन्द्राकृतिधरः सोऽर्धचन्द्राभिधः करः ॥१४२॥ 147

यदि चारो उँगलियो को सीधे खडी कर दिया जाय और अँगूठे को बाहर की ओर सीधे फैला दिया जाय तो उससे जो अर्धचन्द्राकार मुद्रा बनती है उसी को **अर्धचन्द्र हस्त** कहते है ।

ऊर्ध्वोत्तानोऽर्धचन्द्रेऽथोत्तानितो मण्डलभ्रमः ।
ग्लानिसंतापयोः शोके नियोज्योऽसौ नियोक्तृभिः ॥१४३॥ 148

अभिनेताओ को चाहिए कि ग्लानि, सन्ताप और शोक के भाव-प्रदर्शन मे वे **अर्धचन्द्र हस्त** को ऊपर उत्तान करके मण्डलाकार मे घुमाये ।

मुखदेशस्थितः पाने वदनेऽपि भवेदसौ ।
पादाङ्कुरणे त्वेष करस्तद्देशगः स्मृतः ॥१४४॥ 149

पीने तथा बोलने के अभिनय मे इस हस्त को मुख पर रखना चाहिए । पैरो के आभूषण प्रकट करने मे उसे पैरो के पास ले जाना चाहिए ।

मणिबन्धप्रदेशस्थवलये मण्डलाकृतिः ।
पराङ्मुखोऽथ खेदे स कपोलफलकाश्रितः ॥१४५॥ 150

कलाई पर धारित कँकण या चूडी के भाव-प्रदर्शन मे **अर्धचन्द्र हस्त** को मण्डलाकार बनाना चाहिए और खेद प्रकट करने मे उसे उलटा करके कपोल पर रखना चाहिए ।

कर्णान्तिकगतौ कार्यौ कर्णाभरणदर्शने । 151
लोकयुक्त्यनुसारेण बलान्निःकाशने मतः ॥१४६॥

कानो के आभूषण प्रकट करने मे दोनो अर्धचन्द्र हस्तो को कानो के पास रखना चाहिए । किसी को बलपूर्वक निकालने के आशय मे लोक-परम्परा के अनुसार **अर्धचन्द्र हस्त** का उपयोग करना चाहिए ।

कुम्भाभिनयने स्याता पुरतोऽन्योन्यसम्मुखौ ।
मध्यसाम्ये कटिस्थौ द्वावितरेतरसम्मुखौ ॥१४७॥ 152

घट के भाव-प्रदर्शन मे दोनो अर्धचन्द्र हस्तो को आमने-सामने (समुखावस्था मे) रखना चाहिए और मध्य का साम्य दिखाने मे दोनो को उसी प्रकार परस्पर समुख करके कटिभाग मे रखना चाहिए ।

नियोज्यौ रस(?श)नायां च कर्तव्यौ तावधोमुखौ ।
मुखदेशगतावेतौ शङ्खाभिनयने करौ ॥१४८॥ 153

करधनी या रस्सी के भाव-प्रदर्शन मे उक्त दोनो हस्तो को अधोमुख करके प्रयुक्त करना चाहिए और शंख के अभिनय मे दोनो को मुख पर रखना चाहिए ।

असंयुताविमावूर्ध्वावुत्थितौ निजपार्श्वतः ।
प्रयोक्तव्यौ करौ बालपादपाभिनये बुधैः ॥१४९॥ 154

छोटे-छोटे पौधो के अभिनय मे नाट्यविद् लोग दोनो अर्धचन्द्र हस्तो को ऊपर उठाये हुए, बिना सटाये ही अपने बगल मे रखे ।

१८. अराल हस्त और उसका विनियोग

तर्जनी चापवद्वक्रा यत्राङ्गुष्ठस्तु कुञ्चितः ।
अङ्गुल्याः पूर्वपूर्वस्या अङ्गुली चेत्परा परा ॥१५०॥ 155
भिन्नोच्चा स्यान्मनाग्वक्रा तदारालः स कीर्तितः ।

यदि तर्जनी धनुष की तरह टेढी हो, अगुष्ठ कुछ मुडा हो, और पूर्व-पूर्व की उगली से उत्तर-उत्तर की उँगली भिन्नता धारण किये उन्नत तथा कुछ वक्र हो (अर्थात् कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा क्रमश उन्नत होती हुई उसी क्रम से कुछ वक्र हो) तो उसे **अराल हस्त** कहते है ।

एषोन्नादावुपस्थाने याचने विजयेऽपि च ।।१५१।। 156
अर्हादेवतयोश्च स्यादाशीर्वादे हृदि स्थितः ।

अन्न आदि, उपस्थिति या सामीप्य (उपस्थान), याचना, विजय, पूजा, देवता और आशीर्वाद के अभिनय मे **अराल हस्त** को हृदय पर रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वास्यः शिरसः पश्चान्मयूराभिनये मतः ।।१५२।। 157

मयूर के अभिनय मे उक्त हस्त को शिर के पीछे ऊर्ध्वमुख करके रखना चाहिए ।

अङ्कुशाभिनये त्वेष मनागूर्ध्वपराङ्गमुखः ।
देहस्वभावभावेषु हितेष्वेष स्वसम्मुखः ।।१५३।। 158

अकुश के अभिनय मे उसे थोडा ऊपर पराङमुख करके रखना चाहिए और देह, स्वभाव, भाव तथा हित के आशय मे उसे अपने सम्मुख रखना चाहिए ।

निवारणे बहिःक्षिप्तोऽभिनेतव्योऽभिनेतृभिः ।
पराङ्मुखः परित्राणे मन्त्रिते मुखदेशगः ।।१५४।। 159

अभिनेताओ को चाहिए कि निवारण (दूर करने या हटाने) के भाव-प्रदर्शन मे वे उक्त हस्त को बाहर फेक कर (अर्थात् झटका देकर) अभिनीत करे। बचाने के अभिनय मे उसे पराङमुख करके और मत्रणा के आशय मे मुख पर रखकर प्रयुक्त करना चाहिए ।

अखण्डिते महालाभे भाग्यमाहात्म्ययोरपि ।
योग्यतायां च कर्तव्य उत्थितोऽथ बहिर्मुखः ।।१५५।। 160

अखण्डित वस्तु, महान् लाभ, भाग्य, माहात्म्य और योग्यता के अभिनय मे उसे उठाकर बहिर्मुख कर देना चाहिए ।

श्राद्धकर्मणि योज्योऽयमथ द्रव्ये सुगन्धिनि ।
नासादेशगतः कार्यस्तथा खल्विति दर्शने ।।१५६।। 161
तर्जन्याङ्गुष्ठको युक्त्वा वियुक्तो जनने भवेत् ।
मुखदेशाद्विनिर्गच्छन्नुपदेशे मतः सताम् ।।१५७।। 162

श्राद्धकर्म के अभिनय मे **अराल हस्त** का उपयोग करना चाहिए। सुगन्धित पदार्थ के अभिनय मे उसे नासिका के पास रखना चाहिए। **'वैसा निश्चित ही हुआ है'** इस प्रकार के भाव-प्रदर्शन मे **अराल हस्त** की तर्जनी

उँगली को अँगुष्ठ से मिला देना चाहिए, किन्तु प्रजनन या उत्पादन के आशय मे उसे (तर्जनी को) अलग कर देना चाहिए। सज्जन लोगो का मत है कि उपदेश के भावाभिनय मे उसे मुख के पास से निकालते हुए दिखाना चाहिए।

तोषे तूत्तानितः स स्याच्चन्द्रिकासु चलाङ्गुलिः ।
केशानां बन्धने स्त्रीणामसो तेषां विकीर्णने ॥१५८॥ 163
द्विस्त्रिर्वा मण्डलाकारोऽथाह्वाने पतदङ्गुलिः ।

सन्तोष के अभिनय मे उक्त हस्त को उत्तान रखना चाहिए। चन्द्रिका (ज्योत्स्ना) के भाव-दर्शन मे उसकी उँगलियो को कम्पित कर देना चाहिए। स्त्रियो के केशो के बाँधने तथा छितराने मे उस हस्त को दो या तीन बार मण्डलाकार बनाना चाहिए। किसी को बुलाने के आशय मे उसकी उँगलियाँ गिरती हुई प्रदर्शित करनी चाहिएँ।

धृतिस्थैर्यबलोत्साहगर्वगाम्भीर्यदर्शने ॥१५९॥ 164
नाभिक्षेत्रादयं कार्यो धीरैरुर्ध्व शिरोवधिः ।
अधोमुखो लाभ(? भाल)देशस्वेदापनयने भवेत् ॥१६०॥ 165

धैर्य, स्थिरता, बल, उत्साह, गर्व और गभीरता दिखाने मे उसे धीर पुरुष, नाभि के निकट ले जाकर ऊपर शिर तक ले जायें। ललाट का पसीना पोंछने के आशय मे उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

भालस्थोऽप्यन्यपार्श्वाच्चेद् भ्रमन्नायाति वर्तुलः ।
स्वपार्श्वे जनसंघे स्याद्विवाहे तु करद्वयम् ॥१६१॥ 166
प्रदक्षिणं भ्रमत् कार्य स्वस्तिकाकारतां गतम् ।
अङ्गुल्यग्रस्थितं कार्य केवलस्तु प्रदक्षिणम् ॥१६२॥ 167

जन-समूह के अभिनय मे **अराल हस्त** को ललाट पर रख कर वहाँ से गोलाकार मे घुमाते हुए दूसरे के बगल से अपने बगल मे ले आना चाहिए। विवाह के अभिनय मे दोनो अराल हस्तो को **स्वस्तिक मुद्रा** मे प्रदक्षिणा कराते हुए घुमाना चाहिए, किन्तु प्रदक्षिणा केवल उँगलियो के अग्रभाग द्वारा ही होनी चाहिए।

भ्रमन्प्रदक्षिणे सद्भिर्देवानां स नियुज्यते ।
कोऽहं कस्त्व मया सार्ध सम्बन्धः क्वेति भाषणे ॥१६३॥ 168
असबद्धे बहिःक्षिप्ताङ्गुलिरेष पुनः पुनः ।

२०. सन्दश हस्त और उसका विनियोग

लग्नाग्रे तु यदाङ्गुष्ठतर्जन्यौ निम्नक मनाक् ।
तलमध्यमरालस्य तदा सन्दश ईरितः ॥१६९॥ 175

यदि **अराल हस्त-मुद्रा** की तर्जनी और अगुष्ठ उँगलियो के अग्रभाग को मिला दिया जाय और हथेली को भीतर की ओर थोडा झुका दिया जाय तो उसे **सन्दश हस्त** (सँडासी) कहते है।

इति त्रेधा भवेत्सोऽयमग्रजो मुखजस्तथा ।
पार्श्वजश्चाथ ते ज्ञेयोस्त्रयोऽप्यन्वर्थलक्षणाः ॥१७०॥ 176

इस प्रकार **सन्दश हस्त** के तीन भेद होते है **अग्रज, मुखज** और **पार्श्वज**। उनके नामार्थ के अनुसार ही उनका प्रयोग भी समझना चाहिए ।

कण्टकोद्धरणे सूक्ष्मपुष्पावचयनेऽपि च ।
केशपर्णतृणादीनां ग्रहणेऽप्यग्रजो मतः ॥१७१॥ 177

काँटा निकालने, सूक्ष्म पुष्पो को चुनने ओर केश, पत्ते तथा तृण आदि के ग्रहण करने मे **अग्रज सन्दश हस्त** का उपयोग करना चाहिए।

शल्यावयवनिष्कर्षेऽपकर्षे चाथ कीर्तितः ।
प्रसूनोद्धरणे वृन्ताद्धिगित्युक्तो च रोषतः ॥१७२॥ 178
वर्त्यञ्जनशलाकादिपूरणे चास्यजस्त्वथ ।

शरीरागो मे बरछा या तीर मारने तथा निकालने, डण्ठल से फूल तोडने, '**धिक्कार है**' क्रोध से ऐसा कहने, बत्ती तथा अजन-शलाका आदि के व्यवहार के अभिनय मे **मुखज सन्दश** का विनियोग करना चाहिए।

मुक्तादीना गुणक्षेपे वेधनेऽपि च पार्श्वजः ॥१७३॥ 179

मणि-मुक्तादि के गुण बताने तथा (उनके) वेधन करने के अभिनय मे **अग्रज सन्दश** का विनियोग करना चाहिए।

सद्वितीयः प्रयोक्तव्यस्तत्त्वस्य च निरूपणे ।
ध्यानाभिनयने चित्रकर्मण्यपि च भाषणे ॥१७४॥ 180
सक्रोधे वामहस्तेन मनागग्रविवर्तनात् ।
निष्पीडने त्वलक्तस्य चायमुक्तो बुधैः करः ॥१७५॥ 181

तत्त्व-निरूपण मे **मुखज सन्दश** का उपयोग करना चाहिए। ध्यान चित्रकर्म, भाषण और थोडा आगे फैला कर बाँये हाथ से महावर पीसने के अभिनय मे इसी हस्त का विनियोग करना चाहिए, ऐसा विद्वानो का अभिमत है।

योगे स्तोके निर्धने च गुरुयज्ञोपवीतयोः ।
वितर्के पेलवासूयानेत्ररञ्जन (द) र्शने ।।१७६।। 182
कद्रौ तत्सुतविद्याया विद्यातो (ष) विधावपि ।
स्मृतौ सम्भावनायां चानयनेऽपि हृदि स्थित. ।।१७७।। 183

योग, अल्प, निर्धन, गुरु, यज्ञोपवीत, वितर्क, कोमल, असूया, काजल, दर्शन, कद्रु (नागो की माता), सर्पविद्या (**तत्सुतविद्याया**), विद्या, सन्तुष्ट करने की विधि, स्मरण, सभावना और आनयन के भाव-प्रदर्शन मे **मुखज सन्दश हस्त** को हृदय पर अवस्थित करना चाहिए।

उद्भिन्ने विच्युतः स स्यान्मोचनीये करावुभौ ।
विच्युतावथ नेत्रादिस्फुरणे स्यादसौ करः ।।१७८।। 184
तद्देशसश्रिते लक्ष्ये त्वेष कार्यः पुर.स्थित ।

फोड कर निकली हुई वस्तु (जैसे सोता) के अभिनय मे **सन्दश हस्त** के सटे हुए अग को अलग कर देना चाहिए। खोलने योग्य वस्तु के अभिनय मे दोनो सन्दश हस्तो को वैसे ही विच्युत कर देना चाहिए। नेत्र आदि के फडकने के अभिनय मे भी उसी **सन्दश हस्त** का विनियोग करना चाहिए। नेत्र प्रदेश के लक्ष्य का आशय प्रकट करने मे उसे आगे रखना चाहिए।

पिपीलिकास्वयं योज्यश्चलाधोमुखः करः ।।१७९।। 185
क्षुद्रे विवर्तितः किञ्चिद्दोषे तु परिवर्तितः ।
परिणामे पार्श्वमुखो ब्राह्मणे वामबाहुतः ।।१८०।। 186

चीटियो के अभिनय मे **सन्दश हस्त** को कम्पित करके अधोमुख कर देना चाहिए। क्षुद्र वस्तु के अभिनय मे उसे घुमाकर और अल्प अपराध के आशय मे बदल कर प्रदर्शित करना चाहिए। परिणाम के अभिनय के प्रदर्शन मे उसे बगल की ओर झुका होना चाहिए और ब्राह्मण के भाव-निदर्शन मे उसे बाँई भुजा की बगल से प्रयुक्त करना चाहिए।

आगते दक्षिणे पार्श्वे कर्तव्यो दशनेषु तु ।
तद्देशस्थो बुधैरुक्तः कर्णस्थः कर्णभूषणे ।।१८१।। 187

आये हुए व्यक्ति के अभिनय मे सन्दश हस्त को दाहिनी बगल मे, दाँतो के अभिनय मे दाँतो के पास ओर कर्णाभूषण के अभिनय मे कान के पास रखना चाहिए, ऐसा विद्वानो का अभिमत हे।

मुखसंकोचने त्वेष देशीनृत्ये चलग्रहे ।
वधूभिर्भालदेशस्थः कार्य श्वश्वादिवञ्चने ॥१८२॥ 188

मुँह छिपाने या सिकोडने, देशी नृत्य (ग्राम्य नृत्य), चलग्रह और बहुओ द्वारा सास आदि को ठगने के अभिनय मे इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए।

युक्तेऽङ्कुरे तथा स्थाने इत्येवार्थे च युक्तितः ।
यथौचित्यं योजनीयो लोकैर्नृत्यविशारदैः ॥१८३॥ 189

समीचीन वस्तु, अकुर, स्थान, 'ऐसा ही' इस कथन के अभिनय मे नृत्यवेत्ताओ को चाहिए कि वे लोक-परम्पराओ के द्वारा यथोचित रूप मे सन्दश हस्त का विनियोग करे।

२१ मुकुल हस्त और उसका विनियोग

लग्नाग्राः सहता ऊर्ध्वा. पञ्चाप्यङ्गुलयो यदा ।
तदासौ मुकुलः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥१८४॥ 190

यदि ऊपर उठी हुई पाँचो उँगलियो के अग्रभाग को परस्पर मिला दिया जाय तो, नृपति अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को मुकुल हस्त कहते है।

बलिदाने भोजने च पद्मादिमुकुले तथा ।
प्रार्थने देवपूजायां योज्योऽसौ लोकयुक्तितः ॥१८५॥ 191

बलिदान, भोजन, कमल आदि की कली, प्रार्थना और देवपूजा के अभिनय मे लोकरीति के अनुसार मुकुल हस्त का विनियोग करना चाहिए।

विटकर्तृककान्तादिचुम्बनेऽङ्गीकृतेऽपि सः ।
अधोमुख. सद्वर्णेषु विलोलविरलाङ्गुलिः ॥१८६॥ 192

कामुक द्वारा कान्ता आदि के चुम्बन, अगीकार और उत्तम वर्णो (द्विजाति) के अभिनय मे मुकुल हस्त को अधोमुख करके उसकी उँगलियो को विरल (विलग) करके कम्पित कर देना चाहिए।

राक्षसेऽधोमुखः कार्यश्चलाङ्गुलिरसौ करः ।
ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशस्तूत्क्षेपे सीकरेषु च ॥१८७॥ 193

राक्षस के अभिनय मे **मुकुल हस्त** को अधोमुख करके उस की उँगलियो को कम्पित कर देना चाहिए। यदि किसी वस्तु को ऊपर फेकने तथा जल-कणो का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसकी ऊर्ध्वमुख सटी हुई उँगलियो को खोल देना चाहिए।

असौ च सत्वरे दाने विकाश्य प्रकृति गतः ।
मुहुर्मुहुरथ द्रव्यगणनायां प्रकीर्तितः ॥१८८॥ 194
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिरसौ पार्श्वात्पार्श्वोत्तरावधि ।

शीघ्रता ओर दान के अभिनय मे **मुकुल हस्त** को विकसित कर (पुन) यथापूर्व कर देना चाहिए। यदि द्रव्यो की गणना का भाव-प्रदर्शन करना हो तो उसकी उँगलियो को खोलकर उसे एक बगल से दूसरी बगल मे करना चाहिए।

उच्छ्वासे च्युतसन्दंशो मुखक्षेत्रगतो भवेत् ॥१८६॥ 195

उच्छ्वास (ऊर्ध्व स्वास) लेने के आशय मे उसे सँडसी की तरह खोल कर मुख के पास रखना चाहिए।

पञ्चसंख्यादिनिर्देशे तथाच्छुरितकेऽप्यसौ ।
यत्कुचादौ कामिनीनां सशब्दं नखलेखनम् । 196
अङ्गुलीपञ्चकेन स्यात्तदाच्छुरितकं विदुः ॥१९०॥

पाँच की सख्या आदि बताने तथा नख-क्षत के अभिनय मे **मुकुल हस्त** का प्रयोग करना चाहिए। कामिनियो के कुच आदि पर पाँचो उँगलियो के प्रहार से शब्द के साथ जो नख-क्षत किया जाता है उसी को **आच्छुरितक** कहते है।

२२ पद्मकोश हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुष्ठसहिताङ्गुल्यो विरलाश्चापवन्नताः । 197
ऊर्ध्वा यस्मिन्नलग्नाग्राः स करः पद्मकोशकः ॥१९१॥

यदि अँगुष्ठ सहित पाँचो उँगलियाँ अलग-अलग रहकर धनुष की तरह मुडकर ऊर्ध्वमुख हो ओर उनके अग्रभाग एक-दूसरे को स्पर्श न करते हो, तो उस मुद्रा को **पद्मकोश हस्त** कहते है।

असौ देवार्चने स्त्रीणां कुचयोस्तद्ग्रहेऽपि च । 198
कबरीग्रहणे स्त्रीणां पुष्पाणां च ग्रहे तथा ॥१९२॥

देवपूजन, स्त्रियो के कुच और कुचो को पकडने, स्त्रियो का जूडा पकडने ओर पुष्पो के चुनने के अभिनय मे **पद्मकोश हस्त** का विनियोग होता है ।

नान्दीपिण्डप्रदाने तूत्तानः क्षिप्ताङ्गुलिर्मतः । 199
अधोमुखः कुञ्चिताग्रः कपित्थश्रीफलग्रहे ॥१९३॥

नान्दी श्राद्ध मे पिण्डदान करने के आशय मे पद्मकोश हस्त को उत्तान करके उसकी उगलियो को फेकने की शक्ल मे करना चाहिए। कैथ आर बेल के ग्रहण मे उसे अधोमुख करके, उस की उँगलियो के अग्रभाग को कुचित कर देना चाहिए ।

भूस्थितार्थग्रहे लोभेऽप्युत्तानो बलिकर्मणि । 200
क्षिप्ताङ्गुलिरथासौ तु पश्चादर्थे चलाङ्गुलि· ॥१९४॥

भूमि पर या भू-गर्भ मे स्थित द्रव्य के आदान, लोभ और बलिकर्म के भाव-प्रदर्शन मे उक्त हस्त को उत्तान करके अँगुलियो को क्षिप्त कर देना चाहिए। पश्चात् अर्थ के स्वीकार या निर्देश के अभिनय मे उसकी उँगलियो को कम्पित कर देना चाहिए।

अधोमुखौ यथौचित्यं बीजपूरादिके फले । 201
अंसग्रहे च सिहाद्यैरथातिविरलाङ्गुली ॥१९५॥

बिजौरा नीबू आदि फलो के अभिनय मे दोनो पद्ममुख हस्तो को यथोचित रूप से अधोमुख करना चाहिए। सिह आदि के द्वारा कन्धा पकड लिये जाने के अभिनय मे दोनो पद्ममुख हस्तो की उँगलियाँ अलग करके प्रयुक्त करनी चाहिएँ।

संश्लिष्टमणिबन्धौ च फुल्लपद्मादिदर्शने । 202
कुचदेशस्थितौ कार्यौ प्रौढायां पद्मकोशकौ ॥१९६॥

खिले हुए कमल आदि पुष्पो के भावाभिव्यजन मे दोनो पद्मकोश हस्तो की कलाइयो को परस्पर सटा देना चाहिए ओर प्रौढा नायिका के अभिनय मे उन्हे कुचो पर रख देना चाहिए।

पक्षिणां पञ्जरेष्वेतौ तथा संकीर्णवेश्मनि । 203
विरलाङ्गुलिकौ कार्यावन्योन्यान्तरनिर्गतौ ॥१९७॥

पक्षियो के पिजरो तथा सकीर्ण गृह के अभिनय मे उक्त दोनो हस्तो को एक-दूसरे के भीतर से निकालते हुए उनकी उँगलियो को विरल कर देना चाहिए।

संध्याकाले पृथक्स्याता मणिबन्धनताविमौ । 204
कुचयोः सम्मुखावेतौ काठिन्याभिनये करौ ॥१९८॥

सन्ध्याकाल के अभिनय मे दोनो पद्ममुख हस्तो की कलाइयो को अलग करके प्रदर्शित करना चाहिए, और कुचो की कठोरता के आशय मे उन्हे सम्मुख रखकर दिखाना चाहिए।

२३ ऊर्णनाभ हस्त और उसका विनियोग

पद्मकोशस्य हस्तस्य पञ्चाङ्गुल्योऽपि कुञ्चिताः । 205
यदा यत्र तदा स स्मादूर्णनाभाभिधः करः ॥१९९॥

यदि **पद्मकोश हस्त** मुद्रा की पाँचो उँगलियाँ मुडी हुई हो तो उसे **ऊर्णनाभ हस्त** कहते है।

एष वस्तुग्रहे चौर्यात् पङ्काश्मादिग्रहेऽपि च । 206
कुछ(?ष्ठ) व्याधौ तथा शीर्षकण्डूयायां च कीर्तितः ॥२००॥

चोरी से किसी वस्तु को लेने, कीचड तथा लोहा आदि ग्रहण करने, कुष्ठरोग और शिर खुजलाने के अभिनय मे **ऊर्णनाभ हस्त** का विनियोग करना चाहिए।

उद्धृत्याधोमुखः कार्यो मण्डकाभिनये करः । 207

मण्डक (एक प्रकार की रोटी या मॉड, मण्डूक पाठ के अर्थ मे मेढक) के अभिनय मे उक्त हस्त को ऊपर उठाकर अधोमुख कर देना चाहिए।

विधायाधोमुखावेतौ नाभिदेशे प्रसारितौ ॥२०१॥
नीतोर्ध्वतर्जनीकौ चेत्तदान्त्रेषु नियोजितौ । 208
चिबुकस्थाविमौ कार्यौ व्याघ्रसिंहादिदर्शने ॥२०२॥

यदि आँतो का अभिनय प्रदर्शित करना हो तो दोनो ऊर्णनाभ हस्तो की तर्जनियो को ऊर्ध्वमुख करके तथा दोनो हस्तो को अधोमुख करके नाभिदेश मे फैला देना चाहिए। बाघ तथा सिह आदि का भाव प्रकट करने मे उनको ठुडडी पर रखना चाहिए।

२४ अलपल्लव हस्त और उसका विनियोग

आवर्तिन्यः पार्श्वगता हस्तस्याङ्गुलयः स्थिताः । 209
तले यस्य विकीर्णाश्चेत्तदासावलपल्लवः ॥२०३॥

जिस हाथ की (पाँचो) उँगलिया पार्श्वगत होकर वृत्ताकार रूप मे मुडी हुई और हथेली की ओर फैली हो, उसे **अलपल्लव हस्त** कहते है ।

अयमेवालपद्म॰ स्यादित्यन्येऽत्र बभाषिरे । 210
ता एव परिवर्त्तिन्यो भूत्वा व्यर्वात्तिता मताः ॥२०४॥

कुछ पूर्वाचार्यो ने **अलपल्लव** को ही **अलपद्म** नाम मे कहा है, जिमसे उमकी पार्श्वगत उगलियाँ परिवर्तित होकर छितराये या अलग-अलग रूप मे निर्दशित की गयी है ।

अयुक्तानृततुच्छोक्तौ कस्य त्वमिति भाषणे । 211
नास्तीत्युक्तौ च नारीभिर्लोकयुक्त्यैष युज्यते ॥२०५॥

असगत, मिथ्या तथा छोटी बात कहने, '**तुम किसके हो** ?' ऐसा भाषण करने और '**नही है**' इस तरह बोलने मे **अलपल्लव हस्त** का विनियोग होता है । नारियो को चाहिए कि वे लोकरीति के अनुसार उसका प्रयोग करे ।

सर्वार्प्य(?र्थ)ग्रहणे योज्यो वामहस्तेन पातितः । 212
अनुरूपे प्रसन्ने च विश्रान्तौ च गुणोत्तरे ॥२०६॥
विनष्टे च तथासत्ये शोभासंहर्षयोरपि । 213
केवले परितोषे च रसग्रहणयोरपि ॥२०७॥
मुधा विनार्थे सिहे चावहिते नवभोगयो॰ । 214
क्रीडायामपि पर्याप्तेऽप्येष धीरैर्नियुज्यते ॥२०८॥

सब प्रकार के अर्थो के ग्रहण मे बाँये **अलपल्लव हस्त** को गिरा कर प्रयुक्त करना चाहिए । अनुरूप, प्रसन्न, विश्राम, गुणश्रेष्ठ, विनष्ट, सत्य, शोभा, हर्ष, केवल, परितोष, रस, ग्रहण, व्यर्थ, सिह, सावधान, नवीन, भोग, क्रीडा और पर्याप्ति के अभिनय मे भी वीर पुरुष इस हस्त का विनियोग करते है ।

लोकयुक्त्यनुसारेण साधौ त्वेष चलो मत. । 215
तारुणोऽसौ प्रसिद्धे स्याद्वक्षस्थस्त्वात्मदर्शने ॥२०९॥

साधु के अभिनय मे उक्त हस्त को कम्पित कर लोकरीति के अनुसार प्रयुक्त करना चाहिए । प्रसिद्ध वस्तु के अभिनय मे यह हाथ सर्वथा उपयुक्त है । आत्मदर्शन के भाव-प्रदर्शन मे उसे छाती पर रखना चाहिए ।

देवेषु दक्षिणो वामबाहुःशीर्ष समुत्थितः । 216
सुखे कर्णगतः कार्यो नवनीते त्वधोलुठन् ।।२१०।।

देवताओ के अभिनय मे दॉया **अलपल्लव हस्त** बाम बाहु या शिर पर रखना चाहिए । सुख के अभिनय मे उसे कान के पास रखना चाहिए ओर मक्खन के भाव-प्रदर्शन मे नीचे लुढका देना चाहिए ।

विशेषे तु चलावेतौ कान्तायां कुचदेशगौ । 217

किसी विशेष वस्तु या बात के अभिनय मे दोनो अलर्कपल्लव हस्तो को कम्पित कर प्रयुक्त करना चाहिए ओर प्रिया के अभिनय मे उन्हे कुचो के पास रख देना चाहिए ।

एवमन्ये बुधैरुह्याः शास्त्रलोकानुसारतः ।।२११।।

नृत्तविद्या-विशारदो को चाहिए कि शास्त्र-दृष्टि ओर लोक-परम्परा के अनुसार वे **अलपल्लव हस्त** का अन्य अभिनयो मे भी विनियोग करे ।

चौबीस असयुत हस्तो का निरूपण समाप्त



संयुत हस्त और उनका विनियोग

१ अजलि हस्त और उसका विनियोग

तलश्लिष्टौ पताकौ चेत्तदा हस्तोऽञ्जलिर्मतः । 218

यदि दोना पताक हस्तो के तल भाग को परस्पर जोड दिया जाय तो उसे **अजलि हस्त** कहते हे ।

देवताया द्विजातेश्च गुरोरपि नमस्कृतौ ।।२१२।।
शिरोवक्षोमुखस्थोऽयं क्रमात्पुंभिर्नियुज्यते । 219
कामिनीभिर्यथाकाममिति नृत्यविदां मतम् ।।२१३।।

देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को नमस्कार करने मे **अजलि हस्त** को क्रमश शिर, वक्ष और मुख पर प्रदर्शित करना चाहिए । नृत्याचार्यो का अभिमत है कि पुरुषो और स्त्रियो को उसका यथेच्छा प्रयोग करना चाहिए ।

२ कपोत हस्त और उसका विनियोग

मूलाग्रपार्श्वसंश्लेषाद्विश्लेषात्तलयोरपि । 220

यदा हस्तौ कपोताभौ कपोतो हस्तकस्तदा ॥२१४॥

केचिदेनं करं प्राहुः कूर्मसंज्ञं विचक्षणाः । 221

यदि दोनो हाथो के मूल भाग (कलाई) ओर अग्र भाग (उँगलियो के छोर) आपस मे सटे रहे और तल भाग (हथेली) अलग-अलग रहे, तो उसे **कपोत हस्त** कहते हे । कुछ विद्वान इसे **कूर्म हस्त** कहते हे ।

प्रणामे विनये कार्यो गुरुसंभाषणेऽपि च ॥२१५॥

प्रणाम करने, विनय और गुरु से बात-चीन करते समय **कपोत हस्त** का विनियोग होता है ।

प्राङ्मुखः कम्पितो वक्ष.स्थित. शीते स्त्रियामपि । 222

कातरे स्यादथेयत्तापरिच्छेदे तु विच्युत. ॥२१६॥

शीत और स्त्री के अभिनय मे इस हस्त को कम्पित एव पूर्वमुख रूप मे छाती पर रखना चाहिए । कातरता और परिणाम या सीमा-निर्धारण के आशय मे उसे विच्युत (अर्थात् सटे हुए अश को अलग) कर देना चाहिए ।

सखेदवचसीदानीमित्यर्थस्य च सूचने । 223

आज्ञाप्रतिज्ञयोर्नाथे प्रसादेऽवहितेऽपि च ॥२१७॥

पक्षपाते पराधीने भक्षणे प्रतिपादने । 224

सेवायामपि योज्योऽसौ लोकयुक्त्यनुसारतः ॥२१८॥

खेद के साथ बोलने, **'इस समय'** इस अर्थ को सूचित करने, आज्ञा, प्रतिज्ञा, स्वामी, प्रसन्नता, सावधान, पक्षपात, पराधीन, भक्षण, प्रतिपादन (निरूपण या समर्पण) ओर सेवा के अभिनय मे भी लोक-परम्परा के अनुसार **कपोत हस्त** का प्रदर्शन करना चाहिए ।

विच्युतश्लिष्टपार्श्वोऽसौ भिक्षायां करपात्रिणाम् । 225

जिनके हाथ ही पात्र का काम करते है, ऐसे भिक्षुओ को भिक्षा देने के अभिनय मे **कपोत हस्त** के तल मुख से सटे हुए भाग को अलग कर देना चाहिए ।

इतराण्यपि कर्म्माणि बुधैरूह्यानि युक्तितः ॥२१९॥

इनके अतिरिक्त अन्य कार्यो एव भावो के अभिनय मे भी विद्वान नृत्यवेत्ताओ को यथाविधि **कपोत हस्त** का प्रदर्शन करना चाहिए ।

३ **कर्कट हस्त और उसका विनियोग**

करयोरखिलाङ्गुल्योऽन्योन्यमन्तरनिर्गताः । 226
दृश्यन्तेऽन्तर्बहिर्वा चेत्तदा स्यात्कर्कटः करः ॥२२०॥

यदि दोनो हाथो की सभी उँगलियाँ परस्पर बीच से निकल कर या गुँथी होकर भीतर ओर बाहर दोनो ओर से दिखायी दे, तब उसे **कर्कट हस्त** कहते है ।

एष सुप्तोत्थजृम्भायामङ्गानां च प्रसारणे । 227
अग्रे पार्श्वेऽथवोर्ध्वे वा पराङ्मुखतलः करः ॥२२१॥

सोकर उठने के बाद जमुहाई लेने, अगो के फैलाने, आगे, बगल अथवा ऊपर के भाव प्रदर्शित करने मे **कर्कट हस्त** के तल भाग (हथेली) को पराङमुख कर देना चाहिए ।

बहिस्स्थिताङ्गुलिस्तु स्यादनङ्गादङ्गमोटने । 228
स्थूलोदरेऽप्यसावेवोदरसंस्थित इष्यते ॥२२२॥

अगो मे कामजन्य पीडा का भाव दर्शाने मे उक्त हस्त की उँगलियो को बाहर की ओर रखना चाहिए। स्थूल उदर का भाव दिखाने मे उसी हस्त को पेट पर रखना चाहिए ।

हनुं बिभ्रदसौ पृष्ठेऽङ्गुलीनां खेदसूचने । 229
अथान्तःस्थाङ्गुलिः कार्यश्चिन्ताया चिबुके स्थितः ॥२२३॥

खेद प्रकाश करने के आशय मे **कर्कट हस्त** की उँगलियो पर ठुड्ढी रख देनी चाहिए और चिन्ता के भाव-दर्शन मे उसकी उँगलियो को ठुड्डी पर रख देना चाहिए ।

ईषद्वक्रीकृतान्योन्याभिमुखाङ्गुलिरेष तु । 230
शङ्खस्य धारणे योज्यो मुखेऽधः स्नानकर्मणि ॥२२४॥
द्विस्त्रिर्वा मूर्ध्नि संयोज्यो गृहे तु स्यादधस्तलः । 231
हृदयक्षेत्रगः कार्यः किञ्चित्कुञ्चितकूर्परः ॥२२५॥

शख धारण करने की मुद्रा मे उक्त हस्त की उँगलियो को थोडा टेढा और एक-दूसरे के आमने-सामने करके मुख पर रखना चाहिए। स्नान करने के अभिनय मे उसे नीचे रखना चाहिए, अथवा दो-तीन बार मस्तक

पर रख देना चाहिए। घर का भाव दिखाने मे उसके निम्न भाग को नीचे की ओर करके, कुहनी को कुछ मोड कर, हृदय पर रखना चाहिए।

अन्त पुरे वामभागस्थितः कार्योऽथ कार्मुके। 232
पार्श्वोत्थितः प्रयोक्तव्यः पराङ्मुखतलाङ्गुलिः ॥२२६॥

अन्त पुर के अभिनय मे उक्त हस्त को वाम भाग मे अवस्थित करना चाहिए और धनुष के अभिनय मे उसकी उँगलियो को पीछे की ओर फेरकर बगल से उठाते हुए प्रदर्शित करना चाहिए।

४ गजदन्त हस्त और उसका विनियोग

सर्पशीर्षौ करौ मध्यं स्कन्धकूर्परयोर्मिथः। 233
दधाते चेत्तदा प्रोक्तो गजदन्ताभिधः करः ॥२२७॥

यदि दोनो **सर्पशीर्ष हस्त** परस्पर कन्धे और कोहनी के मध्य भाग को धारण करे तब उस मुद्रा को **गजदन्त हस्त** कहते हे।

स्कन्धस्थौ सर्पशीर्षौ चेदितरेतरसम्मुखौ। 234
कुञ्चत्कूर्प्परकौ प्राहुर्गजदन्तं तथाऽपरे ॥२२८॥

कुछ आचार्यो का कहना हे कि यदि दोनो **सर्पशीर्ष हस्त** कन्धे पर अवस्थित होकर एक-दूसरे के आमने सामने रहे, और उनकी कोहनियाँ मुडी रहे, तब उस मुद्रा को **गजदन्त हस्त** कहते है।

वरवध्वोर्विवाहार्थं नयने स प्रयुज्यते। 235

वर-वधू को विवाहार्थ ले जाने के अभिनय मे **गजदन्त हस्त** का विनियोग होता है।

भारस्योद्वहने स्तम्भग्रहणे च गतागते ॥२२९॥
अधः शैलशिलोत्पाटे करः कार्यो विचक्षणैः। 236

सुधीजनो के अभिमत से बोझा ढोने, खूँटा पकडने, आने-जाने और पर्वतशिला के उखाडने के अभिनय मे उक्त हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

अस्यान्येऽभिनया धीरैर्विज्ञेयाः शास्त्रदृष्टितः ॥२३०॥

गजदन्त हस्त के शास्त्रदृष्टि से अन्य अभिनय-प्रयोगो को विद्वानो द्वारा जान लेना चाहिए।

५ निषध हस्त और उसका विनियोग

कपित्थं मुकुलं हस्तं परिवेष्ट्य यदा स्थितः। 237
तदा निषधनामासौ–

यदि एक हाथ को कपित्थ मुद्रा मे बना कर उससे दूसरे **मुकुल हस्त** को परिवेष्टित कर अवस्थित किया जाय तो उसे **निषध हस्त** कहते है ।

—सम्यक्स्थापितवस्तुनि ॥२३१॥

निष्पेषणे तथा सत्यमिदमित्यपि कीर्त्तने । 238

सम्यक्तया च शास्त्रार्थस्वीकारेऽपि प्रकीर्तितः ॥२३२॥

भली भाँति स्थापित की गयी वस्तु, पीसने, **'यह सत्य है'** इस प्रकार के कथन और सम्यक् प्रकार से शास्त्रार्थ स्वीकार करने के अभिनय मे **निषध हस्त** का विनियोग होता है ।

पूर्वोक्तं गजदन्तं तु निषधं संजगुः परे । 239

गर्वगाम्भीर्यधैर्यादिष्वसौ शौर्ये च कीर्तितः ॥२३३॥

कुछ आचार्य पूर्वोक्त **गजदन्त हस्त** को ही **निषध हस्त** कहते है। गर्व, गाम्भीर्य, धैर्य ओर वीरता आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६ पुष्पपुट हस्त और उसका विनियोग

बाह्यपार्श्वसुसंश्लिष्टौ सर्पशीर्षौ यदा करौ । 240

तदा पुष्पपुटौ हस्तोऽशोकमल्लेन कीर्तितः ॥२३४॥

यदि दोनो सर्वशीर्ष हस्तो के वाह्य पार्श्वो को भली भाँति मिला दिया जाय तो, अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को **पुष्पपुट हस्त** कहा जाता है ।

पुष्पधान्यजलादोनामर्पणे ग्रहणेऽपि च । 241

पुष्पाञ्जलौ प्रसादे चोपायनेऽपि स कीर्तितः ॥२३५॥

फूल, धान्य और जल आदि के देने-लेने, पुष्पाजलि, प्रसन्नता तथा उपहार के अभिनय मे **पुष्पपुट हस्त** का विनियोग होता है ।

७ खटकावर्धन हस्त और उसका विनियोग

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ खटकामुखसंज्ञितौ । 242

यदा यद्वा स्वस्तिकौ तौ मणिबन्धस्थितौ तथा ॥२३६॥

खटकावर्धमानोऽसौ—

यदि दोनो खटकामुख हस्तो को एक-दूसरे के आमने-मामने कर दिया जाय, अथवा अन्योन्याभिमुख करके दोनो स्वस्तिक हस्तो को परस्पर कलाइयो पर अवस्थित किया जाय, तो उसे **खटकावर्धन हस्त** कहते है ।

—प्रणामकरणे मतः । 243

ग्रथने च प्रसूनाना तथ्योक्तौ चादिमे मते ।।२३७।।

प्रणाम करने, फूल गूँथने, सत्य बोलने ओर आदिम मत के अभिनय मे **खटकावर्धन हस्त** का विनियोग होता है।

मतान्तरे कामिनां स पर्णादिग्र(ह)णे करः । 244

तिर्यगास्योऽथ सूर्यस्योदये तूत्तानितो मतः ।।२३८।।

निर्णयाङ्गीकृतौ योज्यो मितेऽपि स युक्तितः । 245

कमियो के मतभेद और पत्ते आदि के ग्रहण के अभिनय मे उक्त हस्त को तिरछा करके प्रस्तुत करना चाहिए। सूर्योदय के अभिनय मे उसे उत्तान रखना चाहिए। निर्णय को स्वीकार करने आर परिमितता का भाव दर्शाने मे उसे यथाविधि प्रयुक्त करना चाहिए।

अस्य क्रियान्तराण्येवं सद्भिरूह्यानि शास्त्रत' ।।२३९।।

खटकावर्धन हस्ताभिनय के अन्य प्रयोगो को शास्त्रानुसार जान लेना चाहिए।

८ उत्सग हस्त और उसका विनियोग

स्वस्तिकाकृतिसम्प्राप्तावन्योन्यस्कन्धदेशगौ । 246

अरालौ विततौ स्वाभिमुखौ स्याता यदा तदा ।।२४०।।

उत्सङ्ग हस्तमाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणीः । 247

यदि दोनो अराल हस्तो को **स्वस्तिक हस्त** मुद्रा मे करके समुखावस्था मे एक-दूसरे की बाज़ुओ के ऊपर रख दिया जाय तो उसे, महाराज अशोकमल्ल ने, **उत्सग हस्त** कहा है।

स्वस्तिकं केचिदत्राहुरार्या दक्षिणदेशगम् ।।२४१।।

अधस्तलत्वमप्याहुरन्ये त्वत्र विचक्षणाः । 248

कुछ विद्वान् उक्त हस्त को **दक्षिणदेशगामी स्वस्तिक** कहते हे। दूसरे विद्वान् उसे **अधस्तल** भी कहते है।

बहुयत्नप्रसाध्येऽर्थे तुषाराश्लेषयोरपि ।

अलङ्कारानुपादाने लज्जादावपि सुभ्रुवाम् ।।२४२।। 249

बहु यत्न-साध्य वस्तु, तुषार, आलिगन, आभूषण न पहनने और सुन्दरियो की लज्जा आदि के अभिनय मे उत्संग हस्त का विनियोग होता है।

९ स्वस्तिक हस्त और उसका विनियोग

खटकास्यौ पताकौ वा यद्वारालौ करौ यदा ।
मणिबन्धस्थितौ स्यातामितरेतरपार्श्वगौ ।।२४३।। 250
उत्तानौ वामभागस्थौ यद्वा हृदयसंस्थितौ ।
तदा करः स्वस्तिकाख्योऽशोकमल्लेन कीर्तितः ।।२४४।। 251

यदि दोनो खटकामुख हस्तो या पताक हस्तो अथवा अराल हस्तो को एक-दूसरे की बगल मे करके उनकी कलाइयो को बाँध कर उत्तान करके बाँयी ओर या हृदय पर रख दिया जाय, तो उस मुद्रा को अशोकमल्ल ने **स्वस्तिक हस्त** के नाम से कहा है।

विच्युतोऽसौ कामिनीभिरेवमस्त्विवति भाषणे ।
विस्तीर्णे गगनेऽम्भोधिप्रसृतौ च नियुज्यते ।।२४५।। 252

कामिनियो के '**अच्छा**' ऐसा कहने, विस्तृत आकाश और समुद्र-विस्तार के अभिनय मे **स्वस्तिक हस्त** को फैला कर प्रयुक्त करना चाहिए।

स्वस्तिकाधोमुखौ रात्रौ विच्युतोत्तानितौ दिने ।
मेधप्रच्छादिते तस्मिन् विच्युताधोमुखाविमौ ।।२४६।। 253

रात्रि के अभिनय मे दोनो स्वस्तिक हस्तो को अधोमुख, दिन के अभिनय मे फैला कर उत्तान और मेघाच्छन्न दिन के अभिनय मे फैलाकर अधोमुख रूप मे प्रस्तुत करना चाहिए।

१०. दोला हस्त और उसका विनियोग

विरलाङ्गुली पताकौ चेल्लम्बमानौ श्लथांसकौ ।
तदा दोलाभिधो हस्तो

यदि दोनो **पताक हस्त** लम्बायमान तथा शिथिल या ढीले हो और उनकी उँगलियाँ अलग-अलग हो, तो उसे **दोला हस्त** कहते है।

—विषादे मदमूर्च्छयोः ।।२४७।। 254

व्याधौ च सम्भ्रमे गर्वगतावपि स युज्यते ।
धीरैः स्तब्धो दोलितो वा पार्श्वयोर्लोकयुक्तितः ॥२४८॥ 255

विषाद, मद, मूर्च्छा, व्याधि, हडबडी तथा गर्वपूर्वक चलने के अभिनय मे **दोला हस्त** का विनियोग होता हे। धीर पुरुषो को चाहिए कि दोनो पार्श्वो के अभिनय मे **दोला हस्त** को लोक-परम्परा के अनुसार निश्चल या चलायमान, जैसा उचित समझे, प्रयुक्त करे।

११ अवहित्थ हस्त और उसका विनियोग

शुकतुण्डाभिधौ हस्तौ हृदयक्षेत्रसम्मुखौ ।
अधोमुखौ विधायाधो नीतौ ताववहित्थकः ॥२४९॥ 256

यदि दोनो **शुकतुण्ड हस्त** हृदय के सामने अधोमुख करके नीचे की ओर ले जाये जाॅय तो उसे **अवहित्थ हस्त** कहते हे।

निःश्वासौत्सुक्यदौर्बल्यकायकार्श्येष्वसौ मतः ।
सतृष्णे चानुरक्तेऽपि प्रतापे मण्डलेऽपि च ॥२५०॥ 257

साॅस को बाहर निकालने या साॅस लेने, उत्सुकता, दुर्बलता, शरीर-क्षीणता, सतृष्ण, अनुरक्त होने, प्रताप और मण्डल के अभिनय मे **अवहित्थ हस्त** का विनियोग होता है।

१२ मकर हस्त और उसका विनियोग

यदा पताकौ संश्लिष्टावुपरिस्थौ परस्परम् ।
उर्ध्वाङ्गुष्ठावधौवक्त्रौ तदासौ मकरः करः ॥२५१॥ 258

यदि दोनो पताक हस्तो को ऊपर उठा कर तथा उनकी हथेलियो को निम्नमुख करके (अर्थात् एक हथेली की पीठ पर दूसरी हथेली को रख कर) उन्हे परस्पर मिला दिया जाय और दोनो हाथो के अँगुष्ठ ऊपर की या बाहर की ओर निकले हो, तो उसे **मकर हस्त** कहते हे।

क्रव्यादे मकरे मीने सिंहे च द्वीपिदर्शने ।
नदीपूरे च नक्रेऽपि धीरैरेष प्रयुज्यते ॥२५२॥ 259

राक्षस, मकर, मछली, सिह, हाथी, नदी-प्रवाह और घडियाल के अभिनय मे **मकर हस्त** का विनियोग होता है।

१३. वर्धमान हस्त और उसका विनियोग

मृगशीर्षौ हंसपक्षौ करौ वा सर्पशीर्षकौ।
पराड्मुखौ स्वस्तिकौ चेद्वर्धमानस्तदा करः ।।२५३।। 260

यदि दोनो मृगशीर्ष या हंसपक्ष अथवा सर्पशीर्ष हस्तो को पराड्मुख (उलटा) करके स्वस्तिकाकार बना दिया जाय तो उसे **वर्धमान हस्त** कहते है।

कपाटोद्घाटने त्वेष च्युतस्वस्तिक इष्यते ।
तादृगेव भवेदेष वक्षस. प्र(विदारणे) ।।२५४।। 261

किवाड खोलने के अभिनय मे इस हाथ की स्वस्तिक मुद्रा को खोल कर प्रयुक्त करना चाहिए। छाती फाडने के अभिनय मे भी उसे उसी रूप मे प्रदर्शित करना चाहिए।

विना कृतं स्वस्तिकेन केचिदिच्छन्ति तं बुधाः ।
सीमन्ताभिनये योज्यः स्त्रीभिस्तद्देशगः करः ।।२५५।। 262

कुछ विद्वानो का अभिमत है कि **वर्धमान हस्त** को स्वस्तिक मुद्रा की सहायता के विना ही प्रदर्शित करना चाहिए। सिर की माँग (सीमन्त) के अभिनय मे स्त्रियो को चाहिए कि **वर्धमान हस्त** को वे सीमन्त पर अवस्थित करे।

तेरह सयुन हस्तो का निरूपण समाप्त



नृत्तहस्त और उनका विनियोग

१ चतुरस्र हस्त और उसका विनियोग

समांसकूर्परौ वक्षःस्थलादष्टाङ्गुलान्तरौ ।
स्थितावुरः पुरस्ताच्चेत्प्राङ्मुखौ खटकामुखौ। 263
चतुरस्रो तदा–

यदि दोनो मासल कुहनियाँ छाती से आठ अँगुल की दूरी पर अवस्थित रहे और दोनो **खटकामुख हस्त** छाती के सामने पूर्वमुख होकर रहे तब उस मुद्रा को **चतुरस्र हस्त** कहते है।

—हारमौलाद्याकर्षणे करौ ॥२५६॥

हार और मुकुट आदि के उनारने मे **चतुरस्र हस्त** का विनियोग होता है।

२. उद्वृत्त हस्त और उसका विनियोग

चतुरस्रौ विधायादावथोद्वेष्टितकर्मणा । 264
हंसपक्षावुरोदेशे कृतावेकस्तयोः करः ॥२५७॥
व्यावृत्तिक्रिययोर्ध्वं तु गत्वोत्तानो व्रजेदधः । 265
अथान्यः परिवृत्याधोमुखो वक्षो व्रजेद्यदि ॥२५८॥
तद्वृत्तौ करौ स्याता—

पहले दोनो हाथो को उद्वेष्टित मुद्रा के द्वारा चतुरस्र बना दिया जाय, तदनन्तर उन्हे हसपक्ष मुद्रा मे करके हृदय पर रख दिया जाय। उनमे से एक को व्यावृत्त क्रिया द्वारा ऊपर ले जाकर उत्तानावस्था मे नीचे कर दिया जाय। दूसरे **हसपक्ष हस्त** को परिवृत्त करके अधोमुख छाती पर रख दिया जाय, तो उस अभिनय मुद्रा को **उद्वृत्त हस्त** कहते हे।

——तालवृन्तनिदर्शने । 266

पखे के अभिनय मे उद्वृत्त हस्तो का विनियोग होता है।

एतावेव परे प्राहुस्तालवृन्ताभिधौ करौ ॥२५९॥

कुछ नाटचाचार्यो ने उक्त उद्वृत्त हस्तो को तालवृन्त नाम मे कहा है।

व्यावृत्तपरिवृत्तौ चेत् हंसपक्षौ पुरोमुखौ । 267
तदोद्वृत्तौ जगु. केचित्—

यदि दोनो हसपक्ष हस्तो को व्यावृत्त तथा परिवृत्त करके पूर्व मुख कर दिया जाय तो, कुछ विद्वानो के मत से, उसे **उद्वृत्त हस्त** कहते है।

—जयशब्दनिरूपणे ॥२६०॥

'जय' शब्द के उच्चारण मे उसका विनियोग होता है।

३. तलमुख हस्त और उसका विनियोग

उद्वृत्तसंज्ञकौ हस्तौ त्र्यस्रो भूत्वा स्वपार्श्वयोः । 268
मिथोऽभिमुखतां यातौ हंसपक्षौ यदा करौ ।

तदा तलमुखौ स्यातां–

जब दोनो हस्त उद्वृत्त मे स्थित होकर हसपक्ष की मुद्रा बनाते है ओर अपने पार्श्वो मे तिरछे (न्यस्र) होकर आमने-सामने अवस्थित किये जाते है, तब उन्हे **तलमुख हस्त** कहते हैं ।

–मधुरे मर्द्दलध्वनौ ।।२६१। 269

मर्द्दल (मृदग के समान वाद्ययत्र) की मधुर ध्वनि के अभिनय मे तलमुख हस्तो का विनियोग होता है ।

४. नितम्ब हस्त

उत्तानोऽधो मुखीभूय क्रमादंसप्रदेशतः ।
करौ पताकौ निर्गम्य नितम्बक्षेत्रमागतौ । 270
रेचक विदधाते च नितम्बौ कथितौ तदा ।।२६२।।

जब पताक की मुद्रा मे दोनो हस्त उत्तान तथा अधोमुख होकर क्रमश दोनो कन्धो से बाहर की ओर निकल कर नितम्ब तक आ जॉय और नितम्ब रेचक मे हो, तब उन्हे **नितम्ब हस्त** कहते हे ।

५ केशबन्ध हस्त

पताकौ त्रिपताकौ वा केशदेशाद्विनिर्गतौ ।।२६३।। 271
अस्पृशन्तौ करौ पार्श्वौ पार्श्वदेशसमुत्थितौ ।
उत्तानाऽधोमुखौ शश्वन्निक्षिप्योपशिरः स्थितौ । 272
पृथगुत्तानितौ चेत् सः (? तौ) केशबन्धौ तदोदितौ ।२६४।।

जब पताक या त्रिपताक मुद्रा मे दोनो हस्त पार्श्वदेश से उठकर, दोनो पार्श्वो से विलग होकर, उत्तान एव अधोमुखावस्था मे शिर पर पहुँच जॉय, फिर वहाँ से निकल कर उन्हे अलग-अलग उत्तान करके बार-बार गतिशील करके शिर के समीप अवस्थित किया जाय, तब उन्हे **केशबन्ध हस्त** कहते है ।

६. उत्तानवञ्चित हस्त

अंसभालकपोलानां मध्येऽन्यतमदेशगौ । 273
अन्योन्याभिमुखावीषत्तिर्यञ्चौ कूर्परासयोः ।।२६५।।
मनाक्कलितयोरूर्ध्वतलौ स्थित्वा क्षणं करौ । 274
त्रिपताकौ प्रचलितौ प्रोक्तावुत्तानवञ्चितौ ।।२६६।।

जब दोनो **त्रिपताक हस्त** कन्धा, ललाट तथा कपोल (गाल) मे से किसी एक पर ले जा कर परस्पर आमने-सामने कुछ तिरछे होकर किञ्चिन्मात्र पकड़ी हुई कुहनी तथा कन्धे के ऊपर क्षण भर ठहर कर चलायमान हो जॉय, तब उन्हे **उत्तानवञ्चित हस्त** कहते है।

७ लताकर हस्त

पार्श्वयोर्दोलितौ तिर्यक् प्रसृतौ च यदा करौ। 275
पताकौ त्रिपताकौ वा तदा हस्तौ लताकरौ ॥२६७॥

जब दोनो पताक या त्रिपताक हस्त दोनो पार्श्वो (अगल-बगल) मे तिरछे फैले तथा थिरकते रहे, तब उन्हे **लताकर हस्त** कहते है।

८ करिहस्त

दोलितोऽथो लताहस्तः दोलावत्पार्श्वयोर्यदि। 276
अन्यः कर्णस्थितो यत्र खटकास्योऽथवा करः ॥२६८॥
त्रिपताकस्तदा प्राहुः करिहस्तमिमं बुधाः। 277
इहैकवचने मानं मुनेर्वचनमेव हि ॥२६९॥

जब ऊपर उठा हुआ एक **लता हस्त** दोनो पार्श्वो मे झूले की तरह झूले और दूसरा हाथ खटकास्य या त्रिपताक मुद्रा मे कान पर रहे, तब बुधजन उसे **करिहस्त** कहते है। यहाँ एकवचन (अर्थात् एक ही हस्त के प्रयोग) मे भरत मुनि का वचन प्रमाण है।

९ रेचित हस्त

प्रसारितौ तथौत्तानतलौ हस्तौ तु रेचितौ। 278
द्रुतभ्रान्तौ हसपक्षावथवा रेचितौ मतौ ॥२७०॥
यद्वानयोर्मिलित्वामू लक्ष्मणी लक्ष्म सम्मतम्। 279
हिरण्यकशिपोर्वक्षो दारणे नृहरेर्मतौ ॥२७१॥

जब दोनो करतलो को उत्तान कर फैला दिया जाय तो उन्हे **रेचित हस्त** कहते है। अथवा हसपक्ष हस्तो को द्रुत गति से घुमाने पर वे **रेचित हस्त** बन जाते है। अथवा इन दोनो हस्तो को मिला कर प्रयोग करने मे वे **लक्ष्मण हस्त** कहलाते है, जो लक्ष्मण को, और हिरण्यकशिपु के वक्ष स्थल को विदीर्ण करने मे नृसिह भगवान् को अभीष्ट थे।

१०. अर्धरेचित हस्त

चतुरस्रस्तयोरेकश्चेत्तदा त्वर्धरेचितौ ॥२७२॥ 280

(उक्त रेचित हस्तो मे) एक (बॉया) हाथ चतुरस्र मे और दूसरा (दॉया) रेचित मुद्रा मे हो तो उन्हे **अर्धरेचित हस्त** कहते है।

११ पल्लव हस्त

व्यावृत्त्या तु भुजावूर्ध्वं प्रसार्य परिवृत्तितः ।
अधोमुखौ पताकौ चेत्स्वस्तिकौ पल्लवौ तदा ॥२७३॥ 281

जब दोनो भुजाओ को ऊपर पीछे की ओर घुमाकर फैला दिया जाय और फिर दोनो हस्तो को पताक मुद्रा मे घुमाते हुए अधोमुख करके स्वस्तिक बना दिया जाय, तब उन्हे **पल्लव हस्त** कहते है।

शिथिलौ मेनिरे केचित् त्रिपताकौ कराविह ।
यदा नतोन्नतौ स्यातां पद्मकोशाभिधौ करौ ॥२७४॥ 282
शिथिलौ मणिबन्धस्थौ पुरो यद्वा स्वपार्श्वयोः ।
तदाहुः पल्लवौ केचित् नृत्तविद्याविशारदाः । 283
पताकौ तु बुधाः प्राहुः स्थाने तौ पद्मकोशयोः ॥२७५॥

कुछ नाटयाचार्यो के मत से यदि त्रिपताक हस्तो को शिथिल कर दिया जाय तो उन्हे **पल्लव हस्त** कहते है। कुछ नृत्तविद्याविशारदो का कहना है कि यदि पद्कोश दोनो हस्तो को नतोन्नत कर दिया जाय और वे सामने कलाइयो पर या दोनो पार्श्वो मे शिथिल रहे तो वे **पल्लव हस्त** कहलाते है। किन्तु कुछ विद्वानो ने पद्मकोश हस्तो के स्थान पर पताक हस्तो को **पल्लव हस्त** कहा है।

१२ ललित हस्त

शिरःक्षेत्रे यदा प्राप्तौ पल्लवौ ललितौ तदा । 284
चतुरस्रक्रियोपेतौ शीर्षस्थावचलौ परे ॥२७६॥
जगुरेतावथान्ये तु करौ तौ खटकामुखौ । 285
शनैर्गत्वा शिरोदेशं लग्नाग्राविति मेनिरे ॥२७७॥

जब दोनो पल्लव हस्तो को शिर पर रख दिया जाय, तब उस मुद्रा को **ललित हस्त** कहते है। दूसरे आचार्यो का कहना है कि जब दोनो **चतुरस्र हस्त** निश्चल हो कर शिर पर अवस्थित रहे, तब उन्हे **ललित हस्त** कहा

जाता है। किन्तु अन्य आचार्यों का अभिमत है कि जब दोनो खटकामुख हस्तो को धीरे मे ले जाकर उनके अग्रभाग को शिर पर सलग्न कर दिया जाय तब उन्हे **पल्लव हस्त** कहते हं।

१३ **पक्षवञ्चितक हस्त**

त्रिपताकौ कटीमूर्ध्नि धृताग्रौ पक्षवञ्चितौ ॥२७८॥ 286

जब दोनो हाथ त्रिपताक मुद्रा मे, अग्रभाग मे एक कमर पर ओर दूसरा शिर पर रखा हुआ हो, तब उन्हे **पक्षवञ्चितक हस्त** कहते हं।

१४ **पक्षप्रद्योतक हस्त**

एतावेव परावृत्तौ पक्षप्रद्योतकौ करौ ।
उत्तानितौ केचिदिमौ परे तूर्ध्वगताङ्गुली । 287
पराङ्मुखौ च पूर्वाभ्यां प्राहुरेतावनन्तरम् ॥२७९॥

यदि पक्षवञ्चितक हस्तो को उलटा कर दिया जाय तो उन्हे **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते है। कुछ आचार्य दोनो पक्षवञ्चित हस्तो को उत्तान कर देने पर **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते है। अन्य आचार्यो का मत है कि उक्त पक्षवञ्चितक उत्तान हस्तो के विपरीत यदि उनकी उँगलियो को ऊर्ध्वमुख कर दिया जाय तो उन्हे **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते है।

१५ **ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त**

व्यावृत्तिक्रियया वक्ष.स्थलात्प्राप्य ललाटकम् । 288
तत्पार्श्वमागतौ हस्तौ विततौ मण्डलभ्रमात् ॥२८०॥
ऊर्ध्वमण्डलिनौ प्रोक्तावथ लक्ष्मापरे जगुः । 289
ललाटप्राप्तिमर्यादमथैतौ नृतकोविदाः ।
चक्रवर्तिनिकेत्याहुर्लोकशास्त्रानुसारतः ॥२८१॥ 290

जब दोनो हाथो को घुमाते हुए वक्ष स्थल मे ललाट पर और फिर बगल मे आ जॉय तथा मण्डलकार मे घूमते हुए फैल जॉय, तब उन्हे **ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है। दूसरे आचार्यो का कहना है कि उनका ललाट तक पहुँचना ही पर्याप्त है। किन्तु नृत्तविद्याविशारदो का अभिमत है कि लोक और शास्त्र के अनुसार (चक्राकृत होने के कारण) उन्हे **चक्रवर्तिनिका** नाम से भी कहा जाता है।

१६. पार्श्वमण्डलिन् हस्त

पताकीकृत्यतावेव यदा पार्श्वस्थितौ करौ ।
मिथः सम्मुखतां प्राप्तौ पार्श्वमण्डलिनौ तदा ॥२८२॥ 291
केचिदावेष्टिताख्येन कर्मणा निजपार्श्वयोः ।
आविद्धभ्रामितभुजौ पार्श्वमण्डलिनौ जगुः ॥२८३॥ 292

जब दोनो ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्तो को पताक मुद्रा मे करके उन्हे परस्पर सम्मुख करके पार्श्व मे रख दिया जाय, तब उन्हे **पार्श्वमण्डलिन् हस्त** कहा जाता हे। कुछ आचार्यो का मत है कि यदि वेष्टित क्रिया के द्वारा दोनो भुजाओ को कुटिल गति से घुमाया (आबिद्धभ्रमित) जाय, तब उन्हे **पार्श्वमण्डलिन् हस्त** कहते है।

१७ उरोमण्डलिन् हस्त

उद्वेष्टितं विधायापवेष्टितं चैकदा करौ ।
स्वपार्श्वे वक्षसो जातौ क्रमान्मण्डलवद् भ्रमात् ॥२८४॥ 293
व्युत्क्रमाच्चेदुरः प्राप्तावुरोमण्डलिनौ तदा ।
एतयोर्भ्रमणं वक्षःस्थयोः केचन मन्वते ॥२८५॥ 294
उरोवर्त्तनिकात्वेन प्रसिद्धौ नृत्तधीमताम् ।
पताकौ हंसपक्षौ वा ज्ञेयौ मण्डलिषु त्रिषु ॥२८६॥ 295

जब एक हाथ उदवेष्टित और दूसरा अपवेष्टित हो, उन्हे अपने पार्श्व मे वक्ष पर क्रमश मण्डलाकार मे घुमाते हुए फिर वक्ष पर रख दिया जाय तब उन्हे **उरोमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है। कुछ आचार्यो का कहना है कि दोनो हाथो को छाती पर ही घुमाया जाय। किन्तु नृत्तविदो का अभिमत हे कि तीनो प्रकार के उरोमण्डलिन् हस्तो मे पताक या हसपक्ष हस्त **उरोवर्त्तनिका** रूप मे प्रसिद्ध हे।

१८. उर पार्श्वार्धमण्डल हस्त

पार्श्वे प्रसारितस्त्वेको वक्षस्युत्तानितोऽपरः ।
व्यावृत्त्योरःस्थलायातः स्वपार्श्वमलपल्लवः ॥२८७॥ 296
एवं यदा तदैवान्यः क्रिययावेष्ठिताख्यया ।
संप्राप्यारालतां याति वक्षस्येवं परः करः । 297
अभ्यासात्कथितावेवमुरःपार्श्वार्धमण्डलः ॥२८८॥

जब एक हाथ पार्श्व मे फैला दिया जाय ओर दूसरा उत्तान करके छाती पर रख दिया जाय, फिर **अलपल्लव हस्त** को व्यावृत करके छाती से अपने पार्श्व मे ले आया जाय, इस प्रकार जब एक हाथ आवेष्टित क्रिया द्वारा अराल मुद्रा धारण कर वक्ष पर ओर दूसरा भी आवृत्ति द्वारा इसी स्थिति मे पहुच जाय, तव उन्हे **उर पार्श्वार्धमण्डल हस्त** कहा जाता है। (इसमे एक हाथ अलपल्लव मे छाती पर और दूसरा अराल मे पार्श्व पर अवस्थित होता है)।

१९ नलिनीपद्मकोश हस्त

व्यावृत्तिक्रियया यत्र पद्मकोशौ करौ यदा । 298
अश्लिष्टस्वस्तिकीभूय मिथः स्याता पराङ्मुखौ ॥२८९॥
तदा स्तो नलिनीपद्मकोशावथ परेऽन्यथा । 299
पद्मकोशाभिधौ हस्तावितरेतरसम्मुखौ ॥२९०॥
मणिबन्धसमायुक्तौ भूत्वा प्राप्तौ पृथग्यदा । 300
व्यावृत्तौ परिवृत्तौ च तदैताविति मेनिरे ॥२९१॥
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां करौ चेत्पद्मकोशकौ । 301
जानुनोर्निकटं प्राप्ताविमौ केचित्तदा जगुः ॥२९२॥
अंसयोः कुचयोर्वापि निकटस्थौ विवर्त्तितौ । 302
इमौ कीर्तिधरः प्राह पद्मवर्तनिकामपि ॥२९३॥

जब दोनो **पद्मकोश हस्त** व्यावृत्ति क्रिया द्वारा स्वस्तिक मुद्रा मे परस्पर पृथक् होकर विमुख स्थिति मे रहे तब उन्हे **नलिनीपद्मकोश हस्त** कहा जाता है। अन्य आचार्यो का कहना है कि जब दोनो **पद्मकोश हस्त** पृथक्-पृथक् एक-दूसरे के आमने-सामने रहे और मणिबन्ध से युक्त होकर व्यावृत्त तथा परिवृत्त हो, तब उन्हे **नलिनीपद्मकोश** कहा जाता है। कुछ विद्वानो का अभिमत है किजब दोनो **पद्मकोश हस्त** व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया द्वारा घुटनो के निकट पहुँच जाँय, तब उन्हे **नलिनीपद्मकोश** कहा जाता है। आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब दोनो पद्मकोश हस्तो को कन्धो ओर कुचो के समीस्थ करके घुमाया जाता है, तब उन्हे **पद्मवर्तनिका** भी कहा जाता है ।

२० मुष्टिस्वस्तिक हस्त

अरालवर्तनापूर्व करमेकं तदापरम् । 303
कृत्वालपल्लवं शश्वद् बिभृतः स्वस्तिकाकृतिम् ॥२९४॥

खटकास्यौ यदा हस्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा । 304
कपित्थावथवा मुष्टिशिखरौ स्वस्तिकाकृती ॥२९५॥
यदा स्यातां तदा प्रोक्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ करौ । 305
कुञ्चितौ मुष्टिरेकश्चेत् खटकास्यः परोऽञ्चितः ॥२९६॥
मुष्टिकस्वस्तिकावेवं प्राह कीर्तिधरस्तदा । 306
खड्गवर्तनिकेत्याहुरनयोर्नाम पण्डिताः ॥२९७॥

एक हाथ को अराल मुद्रा मे और दूसरे को अलपल्लव मुद्रा मे बनाकर जब दोनो स्वस्तिक का आकार धारण करे, तब वे दोनो हस्त **मुष्टिस्वस्तिक** कहलाते है । अथवा जब दोनो कपित्थ हस्तो को मुष्टि तथा शिखर मुद्राओ मे करके स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, तब उन्हे **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब एक **मुष्टि हस्त** कुञ्चित और दूसरा **खटकास्य हस्त** अंचित हो, तब उन्हे **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । कुछ विद्वानो ने **मुष्टिस्वस्तिक हस्त** को **खड्गवर्तनिका हस्त** नाम से कहा है ।

२१. **वलित हस्त**

कूर्परस्वस्तिकाकारौ लताख्यौ वलितौ करौ । 307
परे तौ विधुतौ मूर्ध्नि मुष्टिकस्वस्तिकौ जगुः ॥२९८॥
केचिदन्योन्यलग्नाग्रौ पृष्ठतो नम्रकूर्परौ । 308
ऊर्ध्वाग्रौ खटकास्यौ च तदाहुर्वलितौ करौ ॥२९९॥

जब दोनो हाथो से कुहनी पर स्वस्तिक से युक्त लता हस्तो का प्रयोग किया जाय, तब उन्हे **वलित हस्त** कहा जाता है । दूसरे आचार्यो का मत है कि जब दोनो वलित हस्तो को शिर पर कम्पित कर दिया जाय तब उन्हे **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । कुछ आचार्यो का कहना है कि जब दोनो खटकास्य हस्तो के अग्रभाग एक-दूसरे से सट जॉय और कुहनियाँ पीछे की ओर झुकी रहे तथा अग्रभाग ऊर्ध्वमुख रहे, तब उन्हे **वलित हस्त** कहा जाता है ।

२२ **दण्डपक्ष हस्त**

यदैको हंसपक्षस्तु व्यावृत्त्या संश्रयेदुरः । 309
बाहुः प्रसारितस्तिर्यक् तदान्यः परिवर्त्तितः ॥३००॥

तद्वदङ्गान्तरेणापि दण्डपक्षौ करौ मतौ । 310
परे प्रसारणं बाह्वोर्युगपत्प्रतिपेदिरे ।।३०१।।

जब एक हंसपक्ष हस्त को व्यावृत्त करके वक्षस्थल पर रख दिया जाय, बाहु को तिरछा करके फैला दिया जाय और दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, तब उन्हे **दण्डपक्ष हस्त** कहते है। कुछ आचार्यो का मत है कि **दण्डपक्ष हस्त** मुद्रा मे दोनो भुजाओ को एक साथ फैलाना चाहिए।

२३. गरुडपक्षक हस्त

कटीदेशे करौ न्यस्तौ पताकौ चेदधोमुखौ । 311
तिर्यश्चावुत्पतन्तौ द्रागतौ गरुडपक्षकौ ।।३०२।।

जब दोनो पताक हस्तो को अधोमुख करके कटि पर रख दिया जाय और फिर वे तिरछे होकर तेजी से ऊपर की ओर उडे या उठे, तब उन्हे **गरुडपक्षक हस्त** कहा जाता है।

२४ अलपद्म हस्त

कर्मणोद्वेष्टिताख्येन वक्षःस्थावलपल्लवौ । 312
अंसान्तिकं ततो गत्वा प्रसृतावलपद्मकौ ।।३०३।।

जब दोनो अलपल्लव हस्तो को उद्वेष्टित क्रिया द्वारा वक्षस्थल पर रख दिया जाय, फिर कन्धे के पास जाकर उन्हे फैला दिया जाय, तब वे **अलपद्म हस्त** कहे जाते है।

२५ उल्वण हस्त

वक्षसः स्कन्धयोरूर्ध्वं प्रसार्य स्कन्धसम्मुखौ । 313
विलोलाङ्गुलिकावेतौ कथिताबुल्वणौ करौ ।।३०४।।

जब दोनो हाथो को छाती और कन्धो के ऊपर फैलाकर कन्धो के सम्मुख उनकी उँगलियो को कम्पित कर दिया जाय, तो उन्हे **उल्वण हस्त** कहते है।

२६. स्वस्तिक हस्त

अश्लिष्टस्वस्तिकौ हंसपक्षौ चेत्स्वस्तिकौ तदा ।।३०५।। 314

आश्लष्ट (पृथक्) होकर जब दोनो **स्वस्तिक हस्त** हसपक्ष मुद्रा मे अवस्थित हो, तब उन्हे कर **स्वस्तिक हस्त** कहते है।

२७. विप्रकीर्ण हस्त

विच्युतौ स्वस्तिकावेतौ विप्रकीर्णौ करौ मतौ ।

नताग्रावथवोच्चाग्रौ कुचयोरग्रतो गतौ । 315
विप्रकीर्णौ केचिदाहुर्हंसपक्षौ पराङ्मुखौ ॥३०६॥

उक्त स्वस्तिक हस्तो को जब विच्युत (गिरा दिया) किया जाय, तब उन्हे **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है। कुछ आचार्यो का मत है कि जब हंसपक्ष दोनो हाथो के अग्रभाग नत या उन्नत हो, और पराङ्मुख होकर कुचो के अग्रभाग मे स्थित हो, तब उन्हे **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है।

२८. आविद्धवक्र हस्त

भुजांसकूर्पराग्रेषु सविलासौ पताककौ । 316
कृत्वा व्यावर्तने स्यातां त्वरितं चेदधोमुखौ ।
तदा त्वाविद्धवक्राख्यौ विक्षेपवलने करौ ॥३०७॥ 317

जब भुजा, कन्धा और कुहनी के अग्रभाग मे दोनो **पताक हस्त** हाव-भाव-पूर्वक व्यावर्त्तित होकर (मुड कर) शीघ्र अधोमुख हो जॉय, तब, वक्रगति वाले उन दोनो हाथो को **आविद्धवक्र** कहा जाता है।

२९. सूच्यास्य हस्त

संलग्नमध्यमांगुष्ठौ चतुरस्राकृती क्रमात् ।
तिर्यक्प्रसारितौ सर्पशीर्षौ चेत्तर्जनीं बहिः ॥३०८॥ 318
प्रसारितां दधानौ यौ सूच्यास्यौ तौ तदा मतौ ।
विधायादौ पताकौ द्वौ व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ॥३०९॥ 319
भ्रान्त्वा प्रसारणं केचिद् विशेषमिह मन्वते ।
परे सर्पशिरोहस्तौ स्वस्तिकाकारतां गतौ । 320
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ जगुः सूच्यास्यलक्षणम् ॥३१०॥

जब दोनो सर्पशीर्ष हस्तो की मध्यमा और अगुष्ठ उँगलियॉ सटी रहे, तर्जनी बाहर की ओर फैली रहे और दोनो हाथ चतुष्कोण के आकार मे क्रमश तिरछे फैले रहे, तब उन्हे **सूच्यास्य** कहा जाता हे। कुछ आचार्यो का कहना है कि पहले दोनो हाथो की पताक मुद्रा बना कर जब उन्हे व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया से घुमाकर विशेष रूप से फैला दिया जाय, तब उन्हे **सूच्यास्य** कहा जाता हे। दूसरे आचार्यो का मत है कि जब दोनो सर्पशीर्ष हस्तो को स्वस्तिक मुद्रा मे बनाकर उनके दोनो अँगूठे को बीच से फैला दिया जाय, तब वे **सूच्यास्य हस्त** कहलाते है।

३० अरालखटकामुख हस्त

पताकौ स्वस्तिकीकृत्य व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ । 321
अलपद्मावथे(? द्मवदे)वाथ पद्मकोशौ करावुभौ ॥३११॥
ऊर्ध्वमुखौ क्रमात् कृत्वा व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ । 322
अथारालं करं वाममुत्तानं रचयेत्ततः ॥३१२॥
यदान्यं खटकावक्र चतुरस्रमधोमुखम् । 323
कुर्यादेवं तदा हस्तावरालखटकामुखौ ॥३१३॥
अथवा स्वस्तिकाकारावरालखटकामुखौ । 324
विधायादावरालौ चेद्रेचितौ खटकामुखौ ॥३१४॥
तदा वा भवतो हस्तावरालखटकामुखो । 325
वितर्के सविवादानां वणिजामेष युज्यते ॥३१५॥
वक्षोग्रस्थः पुरोवक्रः खटकास्याभिधः करः । 326
उन्नताग्रः परोऽरालः तिर्यक्किञ्चित्प्रसारितः ॥३१६॥
पार्श्वव्यत्यासतो यद्वा निजे पार्श्वे करौ यदा । 327
तालान्तरौ स्थितौ स्यातां तदैतावपरे जगु. ॥३१७॥

पहले दोनो पताक हस्तो को स्वस्तिकाकार वना कर पीछे की ओर मोड दिया जाय तथा घुमा दिया जाय। फिर दोनो पद्मकोश हस्तो को अलपद्म की तरह ऊर्ध्वमुख करके उन्हे व्यावृत्त तथा परिवर्त्त कर दिया जाय। तदनन्तर बॉये **अराल हस्त** को उत्तान और दॉये **खटकामुख हस्त** को चतुरस्र तथा अधोमुख कर दिया जाय। इस प्रकार की अभिनय-मुद्रा को **अराल खटकामुख** कहते है। अथवा दोनो स्वस्तिक हस्तो को पहले अराल तथा खटकामुख बना दिया जाय, या पहले दोनो को अराल बना कर रेचित किया जाय अथवा पहले खटकामुख बना कर रेचित किया जाय, तो वे **अरालखटकामुख** कहलाते है। विवाद करते हुए बनियो के आशय मे इन हाथो का प्रयोग होता है।

अन्य आचार्यो का अभिमत है कि जब एक **खटकामुख हस्त** छाती के अग्रभाग मे स्थित हो, वह वक्र होकर पूर्वाभिमुख हो, उसका अग्रभाग उन्नत हो, ओर दूसरा **अराल हस्त** तिरछा करके कुछ फैला हो, अथवा

पार्श्व-परिवर्तन के द्वारा दोनो हाथो को अपने पार्श्व मे ताल-मात्रा के अन्तर पर अवस्थित किया जाय, तो उन्हे **अरालखटकामुख** कहते है ।

तीस नृत्तहस्तो का निरूपण समाप्त



हस्ताभिनय का उपसंहार

हस्ताभिनय विधान

स्थानादिन्यासभेदेन सम्भवन्तोऽप्यनेकधा । 328
कियन्तोऽपि मया प्रोक्ताः करा विस्तरभीरुणा ॥३१८॥

अशोकमल्ल का कहना है कि स्थानादिकृत (स्थान, समय, अवसर, व्यक्ति तथा वस्तु आदि) भेद से हस्ताभिनयो के अनेक प्रकार हो सकते है, किन्तु विस्तार-भय से यहाँ मैने उनमे से कुछ ही निरूपित किये है ।

दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यैरुपाङ्गैरपि पोषिताः । 329
प्रत्यङ्गैश्च करा योज्या रसभावप्रकाशकाः ॥३१९॥

(अभिनेताओ को चाहिए कि वे) दृष्टि, भ्रू और मुख आदि उपागो और (वक्ष, पार्श्व, हाथ आदि) प्रत्यगो से पोषित तथा रसो और भावो के प्रकाशक हाथो का प्रयोग करे ।

अभिनयेषूत्तमेषु भालस्था मध्यमेषु तु[1] । 330

उत्तम अभिनयो मे हाथ भाल पर, मध्यम अभिनयो मे (सभवत हृदय पर) अवस्थित होना चाहिए।

उत्तमे निकटस्थाः स्युर्मध्यस्थाः मध्यमेषु च ॥३२०॥
मध्यमे सात्त्विके प्रोक्तो मध्यमोऽथाल्पसात्त्विके । 331
प्रचुरः स बुधैरेवं प्रचारस्त्रिविधस्मृतः ॥३२१॥

महापुरुषो का अभिनय करने मे हाथो को निकटवर्ती और मध्यम पुरुषो के अभिनय मे मध्य मे होना चाहिए । मध्यम सात्त्विक भावो के प्रदर्शन मे हाथो का मध्यम प्रकार से प्रयोग करना चाहिए । अल्प सात्त्विक

---

१. यहाँ कुछ चरण छूट गये प्रतीत होते है । देखिए—सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक २४९-९२ ।

(अर्थात् अधम लोगो) के अभिनय मे हस्त-प्रचार के विभिन्न रूपो का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार विद्वानो ने हस्ताभिनय के तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) बताये है।

नियोज्यास्तूत्तमैः पात्रैः प्रत्यङ्गाद्युपबृंहिताः। 332
ससौष्ठवाः सुलक्ष्माणः करास्तैर्मध्यमैः पुनः ॥३२२॥
सुव्यक्तलक्षणाः कार्याः सौष्ठवाधिष्ठितास्तथा। 333
नीचैस्तैस्ते प्रयोक्तव्याः लोकवृत्तसमाश्रयाः ॥३२३॥

श्रेष्ठ अभिनेताओ को प्रत्यग आदि से परिपुष्ट, सुन्दर तथा सुलक्षण युक्त हस्तो का प्रयोग करना चाहिए। मध्यम अभिनेताओ को सुलक्षण तथा सुन्दर हस्तो का उपयोग करना चाहिए। इसी प्रकार निकृष्ट अभिनेताओ को लोक-प्रचलित (सामान्य) हस्तो का प्रयोग करना चाहिए।

मूर्च्छिते तन्द्रिते भीते व्याकुले च जुगुप्सिते। 334
ग्लाने जरार्दिते सुप्ते ज्वरिते शोकपीडिते ॥३२४॥
शीतार्ते व्याधिते मत्ते विषण्णोन्मत्तयोरपि। 335
चिन्तान्विते प्रमत्तेऽपि निश्चेष्टे तापसेऽपि च ॥३२५॥
न कराभिनयः कार्य इत्युक्तं पूर्वसूरिभिः। 336

पूर्वाचार्यो का अभिमत है कि मूर्छित, तन्द्रित, भयभीत, व्याकुल ,निन्द्रित, ग्लानि से युक्त, बृद्धावस्था-पीडित, सुप्त, ज्वरग्रस्त, शोकान्वित, शीत-पीडित, रोगग्रस्त, मत्त, दु खी, मदोन्मत्त, चिन्तातुर, पागल, निश्चेष्ट और तपस्वी आदि के भावाभिव्यजन मे हस्ताभिनय नही करना चाहिए (अपितु सात्विक भावो द्वारा ही उनका प्रदर्शन करना चाहिए)।

ये करास्त्वान्तरं भावं सूचयन्तीह ते मताः।
मूर्च्छितादिष्वपि प्रायः कराः कर्कटकादयः ॥३२६॥ 337

जो हस्त आन्तरिक भावो को प्रकट करे वे अभीष्ट एव उचित होते है। प्राय कर्कट आदि हस्त मूर्च्छित आदि के भावाभिव्यजन के लिए उपयुक्त समझे जाते है।

हस्ताभिनय प्रकरण समाप्त



अंग प्रत्यंग प्रकरण / दो

अङ्गाभिनय और उनका विनियोग

पाँच प्रकार का वक्षाभिनय

वक्षाभिनय के भेद

समं निर्भुग्नमाभुग्नं तथा वक्षः प्रकम्पितम् ।
उद्वाहिताभिधं चेति वक्ष. पञ्चविधं स्मृतम् ।।३२७।। 338

वक्ष पाँच प्रकार का कहा गया है १ सम, २ निर्भुग्न, ३ आभुग्न, ४ प्रकम्पित आर ५ उद्वाहित ।

१ सम और उसका विनियोग

यद्वक्षः सौष्ठवोपेतं चतुरस्राङ्गसंयुतम् ।
स्वभावस्थं समं प्रोक्तं स्वभावस्य निरूपणे ।।३२८।। 339

जो वक्ष सुन्दर, सुडौल, सब अगो के विन्याम से युक्त ओर स्वाभाविक या सहज हो, उसे **सम** कहा जाता हैं । स्वभाव के निरूपण मे उसका विनियोग होता हे ।

२ निर्भुग्न और उसका विनियोग

यदुन्नतं पुरःस्तब्धमुरो निर्भुग्नमीरितम् ।
सत्योक्तिस्तम्भमानेषु तथा विस्मयदर्शने । 340
गर्वोत्सेके भाषणे च प्रहर्षादिदमिष्यते ।।३२९।।

जो पीठ स्तब्ध और वक्ष उन्नत हो, उसे **निर्भुग्न** कहा जाता है । सत्यवचन, स्तम्भन, मान, विस्मय, गर्व ओर दर्पोक्ति के अभिनय मे इस वक्ष का अत्यन्त हर्ष से विनियोग होता है ।

३. आभुग्न और उसका विनियोग

यन्निम्नं शिथिलं वक्षस्तदाभुग्नमुदीरितम् । 341
शोकहृच्छल्ययोः शीतमूर्च्छयोर्गर्वहर्षयोः ।।३३०।।
व्याधिभीतिविषादेषु लज्जासम्भ्रमयोरपि । 342

जो वक्ष निम्न और शिथिल हो उसे आभुग्न कहते हे । शोक, हृदय मे शल्य के समान चुभने वाली बात,

शीत, मूर्च्छा, गर्व, हर्ष, व्याधि, भय, विषाद, लज्जा और ससम्भ्रम (उत्तावली) के भाव-प्रदर्शन मे इस वक्ष का विनियोग होता है ।

४. प्रकम्पित और उसका विनियोग

निरन्तरोत्क्षेपणैर्यत्कम्पितं तत्प्रकम्पितम् ।
भीतिकासश्रमश्वासहिक्काहासेषु रोदने ॥३३१॥ 343

जो वक्ष बार-बार ऊपर उठाकर प्रकम्पित किया जाय, उसे **प्रकम्पित** कहते है। भय, खाँसी, श्रम, साँस, हिचकी, हँसी ओर रोने के अभिनय मे इस वक्ष का नियोग होता है ।

५ उद्‌वाहित और उसका विनियोग

यन्निष्कम्पमृजूत्क्षिप्तं तदुद्वाहितमीरितम् ।
जृम्भोच्चवीक्षणे दीर्घोच्छ्‌वासाभिनयने च तत् ॥३३२॥ 344

जो वक्ष कम्पन-रहित हो तथा धीरे से चालित किया जाय, उसे **उद्‌वाहित** कहते है । जम्हाई लेने, ऊपर देखने और लम्बी साँस खीचने के अभिनय मे इस वक्ष का विनियोग होता है ।

पाँच प्रकार का पार्श्वाभिनय

पार्श्वाभिनय के भेद

विवर्तिताभिधमथापसृतं च प्रसारितम् ।
नतं चोन्नतमेवेति पार्श्वं पञ्चविधं भवेत् । 345

पार्श्व के पाँच भेद है १ **विवर्तित**, २ **अपसृत**, ३ **पसारित**, ४ **नत** और ५ **उन्नत** ।

१ विवर्तित और उसका विनियोग

विवर्त्तितं परावृत्तौ भवेत् त्रिकविवर्तनात् ॥३३३॥

यदि कटिदेश को घुमा दिया जाय, तो उसे **विवर्तित पार्श्व** कहते है। पीछे की ओर मुडने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२ अपसृत और उसका विनियोग

अपसृतं तन्निवृत्त्या स्यात्पार्श्वस्य विवर्त्तने ॥३३४॥ 346

यदि कटिदेश की निवृत्ति (अर्थात् उसको विवर्तित मे घुमाकर जहाँ ले जाया गया हो, वहाँ से लौटाने मे) की जाय तो उसे **अपसृत पार्श्व** कहते है। पार्श्व को घुमाने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ प्रसारित और उसका विनियोग

प्रसारितं मुदादौ तत्पार्श्वयोर्यत्प्रसारणात् ।।३३५।।

यदि दोनो पार्श्वो को फैला दिया जाय, तो उसे **प्रसारित पार्श्व** कहते है। हर्ष आदि अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

४ नत और उसका विनियोग

नतं तु न्यञ्चितस्कन्धनितम्बमुपसर्पणे ।।३३६।। 347

यदि कन्धा और नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे **नत पार्श्व** कहते है। किसी के पास (कुछ वस्तु) ले जाने के अभिनय मे इस पार्श्व का विनियोग होता है।

५ उन्नत और उसका विनियोग

उन्नतं तद्विपर्यासात्कथितं त्वपसर्पणे ।।३३७।।

नत के विपरीत यदि कन्धा और नितम्ब को ऊपर उठा दिया जाय तो उसे **उन्नत पार्श्व** कहते है। भागने के अभिनय मे इस पार्श्व का विनियोग होता है।

पाँच प्रकार का कटि अभिनय

कटि अभिनय के भेद

कम्पितोद्वाहिता छिन्ना विवृत्ता रेचतापि च । 348
कटिः पञ्चविधा ज्ञेया वीरसिंहसुतोदिता ।।३३८।।

अशोकमल्ल ने कटि के पाँच प्रकार बताये है १ कम्पिता, २ उद्वाहिता, ३ छिन्ना, ४ **विवृत्ता** और ५ रेचिता।

१ कम्पिता और उसका विनियोग

पार्श्वे गतागते शीघ्रं दधती कम्पिता कटिः । 349
कुब्जादिगमनप्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ।।३३९।।

यदि कटि को शीघ्रता से एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व मे ऊपर-नीचे कर दिया जाय, तो उसे **कम्पिता** कहते है। कुबडे, बौने आदि की गति के अभिनय मे इस कटि का विनियोग होता है।

२ उद्वाहिता और उसका विनियोग

पार्श्वद्वयेन या किञ्चिच्चलता तूपलक्षिता । 350
सोद्वाहिता कटी लीलागतेषु गदिता स्त्रियाः ।।३४०।।

दोनो पार्श्वों से किंचित् चलते हुए लक्षित होने वाली कटि को **उद्वाहिता** कहते है। स्त्री की लीला-गति (विलासपूर्वक चलने) के अभिनय मे इस कटि का विनियोग होता है।

३ छिन्ना और उसका विनियोग

मध्यस्य वलनाच्छिन्ना पात्रे तिर्यङ्मुखे मता। 351
व्यावृत्तप्रेक्षणादौ स्याद् व्यायामे सम्भ्रमेऽपि च ॥३४१॥

मध्य भाग से मुडी या घूमी हुई कटि को **छिन्ना** कहते है। तिरछे मुख वाले अभिनेता, घूमकर देखने आदि, व्यायाम और उत्तावलीपन के अभिनय मे इस कटि का विनियोग होता है।

४ विवृत्ता और उसका विनियोग

परागास्येन पात्रेण सम्मुखं या विवर्तिता। 352
सा विवृत्ता कटी धीरैः प्रयुक्ता विनिवर्त्तने ॥३४२॥

उलटा मुँह किये हुए पात्र द्वारा जो सामने की ओर घुमायी जाय उस कटि को **विवृत्ता** कहते है। धीर पुरष लौटने के अभिनय मे इस कटि का विनियोग करते है।

५ रेचिता और उसका विनियोग

सर्वदिक्भ्रमणात्प्रोक्ता रेचिता भ्रमणे कटिः ॥३४३॥ 353

चारो ओर घूमने वाली कटि को **रेचिता** कहते है। भ्रमण के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

तेरह प्रकार का पदाभिनय

पादाभिनय के भेद

समाञ्चितौ कुञ्चिताख्यः सूच्यग्रतलसञ्चरौ।
उद्घट्टितस्तथा पादः षड्विधो मुनिना मतः ॥३४४॥ 354

भरत मुनि ने पादाभिनय के छह प्रकार बताये है, जिनके नाम है १ **सम**, २ **अञ्चित** ३ **कुञ्चित**, ४ **सूची**, ५ **अग्रतलसचर** और ६ **उद्घट्टित**।

त्रोटितोद्घटितोत्सेको घट्टितो मर्दिताग्रगौ।
पार्ष्णिगः पार्श्वगोऽप्येवं पादोऽन्यैः सप्तधोदितः ॥३४५॥ 355

अन्य आचार्यो ने पादाभिनय के सात भेद वताये है १ **त्रोटित**, २ **उद्घटितोत्सेक**, ३ **घट्टित**, ४ **मर्दित**, ५ **अग्रग**, ६ **पार्ष्णिग** ओर ७ **पार्श्वग**।

अथो तेषां लक्षणानि क्रमेणाहं ब्रुवेऽधुना ।

अब मै क्रमश उनके लक्षण बताता हूँ ।

१. सम पाद और उसका विनियोग

स्थितौ स्थितस्वभावेन समः पादः प्रकीर्तितः । 356

स्थिरः स्वभावाभिनये रेचकेऽसौ चलो मतः ॥३४६॥

प्रकृत रूप से भूमि पर अवस्थित पैरो को **सम पाद** कहा गया हे । उसे स्वाभाविक अभिनय मे स्थिर और रेचक अभिनय मे चलायमान होना चाहिए ।

२ अञ्चित पाद और उसका विनियोग

यो भूमिस्थितपार्ष्णिः सन्नुत्क्षिप्ताग्रतलस्ततः । 357

प्रसृताङ्गुलिकः पादः सोऽञ्चितोऽभिहितस्तदा ।

पादाहतौ तथा नानाभ्रमणादिषु कीर्तितः ॥३४७॥ 358

जिस पैर की एडी (पार्ष्णि) भूमि मे हो, अग्रभाग उत्क्षिप्त हो और उँगुलियाँ फैली रहे, उसे **अञ्चित** कहते है । पैरो से मारने और अनेक प्रकार की भ्रमरी आदि के अभिनय मे इस पाद का विनियोग होता है ।

३ कुञ्चित पाद और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तपार्ष्णिराकुञ्चन् मध्यो यः कुञ्चिताङ्गुलिः ।

कुञ्चितोऽसावतिक्रान्तक्रमे तुङ्गग्रहेऽपि च ॥३४८॥ 359

जिस पैर की एडी (पार्ष्णि) ऊपर को उठी हो और मध्य भाग तथा उँगलियाँ सिकुडी (कुञ्चित) हो, वह **कुञ्चित पाद** कहलाता है। अतिक्रान्त क्रम और उच्च ग्रह के अभिनय मे इस पाद का विनियोग होता है ।

४. सूची पाद और उसका विनियोग

स्वाभाविको यदा वामोऽपरोऽङ्गुष्ठाग्रभूस्थितः ।

समुत्क्षिप्तान्यभागोऽसौ सूची नूपुरबन्धने ॥३४९॥ 360

जब बॉया पैर भूमि पर स्वाभाविक स्थिति मे हो और दाहिना पैर अँगूठे के अग्रभाग मे स्थित हो तथा उसका अन्य भाग ऊपर उठा हो, तब उसे **सूची पाद** कहते है । नूपुर बाँधने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ अग्रतलसचर पाद और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तपार्ष्णिः प्रसृताङ्गुष्ठको न्यञ्चिताङ्गुलिः ।
यः पादोऽसावग्रतलसञ्चरः प्रेरणे भवेत् ।।३५०।। 361
पीडने कुट्टने स्थाने भ्रमणे रेचके मदे ।
भूस्थापसारणे भूमिताडनेऽपि मतः सताम् ।।३५१।। 362

जब पार्ष्णि उठी हो, अँगुष्ठ फैला हो और उँगलियाँ सिकुडी (न्यञ्चित) हो, तब उसे **अग्रतलसञ्चर पाद** कहते है । प्रेरणा, पीडन (पीडा देना), कूटने, स्थान, भ्रमण, रेचक प्राणायाम, मद, भूमि पर से किसी वस्तु को हटाने आर भूमि रोदने के अभिनय मे सज्जनो ने इस पाद का विनियोग बताया है ।

६ उद्घट्टित पाद

स्थित्वा पादतलाग्रेण स्थितौ पार्ष्णिर्निपात्यते ।
असकृद्वा सकृद्वापि तदोद्घट्टित ईरितः ।।३५२।। 363

जब एक बार या बार-बार पैर के अग्रभाग के बल खडा होकर एडी को नीचे गिरा दिया जाता है, तब उस पाद को **उद्घट्टित** कहते है ।

७ त्रोटित पाद और उसका विनियोग

अवष्टभ्य भुवं पार्ष्ण्या यः पादोऽग्रेण हन्ति ताम् ।
स त्रोटिताभिधो योज्यो गर्वे रोषेऽपि सूरिभिः ।।३५३।। 364

जो पैर एडी से भूमि का सहारा लेकर अग्रभाग से भूमि को आहत करता रहता है, तो वह **त्रोटित** कहलाता है । गर्व और क्रोध के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

८ घट्टितोत्सेध पाद और उसका विनियोग

क्रमाद्यो घट्टयत्यग्रपार्ष्णिभ्यामसकृद् भुवम् ।
स पादो घट्टितोत्सेधस्ताण्डवे सद्भिरीरितः ।।३५४।। 365

जो पैर अग्रभाग तथा एडी से बार-बार भूमि को आहत करता है, वह **घट्टितोत्सेध** कहलाता है । सज्जनो के कथनानुसार ताण्डवनृत्य मे उसका विनियोग होता है ।

९ घट्टित पाद और उसका विनियोग

घट्टितो घट्टयन्पार्ष्णिर्भुवं प्रोक्तोऽल्पनोदने ।।३५५।।

जब (केवल) एडी से भूमि को आहत किया जाता है, तब उस पाद को **घट्टित** कहते हे। थोड़ा हटाने या ठेलने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१० मर्दित पाद

तिर्यक् तलेन मृद्नाति भुवं यः स हि मर्दितः ॥३५६॥ 366

जो पैर अपने तिर्यक तल भाग से भूमि का मर्दन करता है उसे **मर्दित** कहा जाता है।

११ अग्रग पाद और उसका विनियोग

चरणोऽग्रे द्रुतं गच्छन् सोऽग्रगः पिच्छिलक्षितौ ॥३५७॥

जो पैर अपने अग्र भाग के बल शीघ्रता से सचालित हो, उसे **अग्रग** कहा जाता है। चिकनी भूमि पर चलने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१२ पार्ष्णिग पाद

पृष्ठतो याति य. पार्ष्ण्या स पाद. पार्ष्णिगो भवेत् ॥३५८॥ 367

जो पेर एडी के सहारे पीछे की ओर चले उसे **पार्ष्णिग** कहा जाता हे।

१३ पार्श्वग पाद

पार्श्व गच्छन् पार्श्वग. स्याद्वा पार्श्वे स्थितो मतः ॥३५९॥

जो पैर बगल के सहारे चले या स्थित हो, उसे **पार्श्वग** कहते हे।

सात प्रकार के अगो का निरूपण समाप्त



प्रत्यगाभिनय और उनका विनियोग

नौ प्रकार का ग्रीवाभिनय

ग्रीवा के भेद

समा नतोन्नता त्र्यस्रा वलिता कुञ्चिता[ञ्चिता] । 368
निवृत्ता रेचिता चेति ग्रीवा नवविधा मता ॥३६०॥

ग्रीवा के नौ भेद कहे गये है, जिनके नाम है १ **समा**, २ **नता**, ३ **उन्नता**, ४ **त्र्यस्रा**, ५ **वलिता**, ६ **कुञ्चिता**, ७ **अञ्चिता**, ८ **निवृत्ता** और ९ **रेचिता** ।

१ समा और उसका विनियोग

स्वाभाविकी समोक्ता सा जपे ध्यानस्वभावयोः ।।३६१।। 369

स्वाभाविक रूप मे समस्थिति मे अवस्थित ग्रीवा **समा** कहलाती है । जप, ध्यान और स्वभाव का भाव प्रदर्शित करने मे उसका विनियोग होता है ।

२ नता और उसका विनियोग

नम्रा ग्रीवा नता प्रोक्ता धीरैः कण्ठावलम्बने ।
हारादिबन्धने चैषा कामिनीभिर्नियुज्यते ।।३६२।। 370

नीचे की ओर झुकी हुई ग्रीवा को **नता** कहते है । धीर पुरुषो के मत से गले का सहारा लेने या गले लगाने और रमणियो द्वारा हार आदि धारण करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे ।

३ उन्नता और उसका विनियोग

ऊर्ध्वगा तून्नता ग्रीवा भवेदूर्ध्वावलोकने ।
नियोज्या सा बुधैस्तद्वत्कण्ठालंकारदर्शने ।।३६३।। 371

ऊपर की ओर उठी हुई ग्रीवा को **उन्नता** कहा जाता है । ऊपर ताकने और गले का आभूषण देखने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४ त्र्यस्रा और उसका विनियोग

पार्श्वनम्रा भवेत् त्र्यस्रा खेदे पार्श्वावलोकने ।।३६४।।

बगल की ओर झुकी हुई ग्रीवा **त्र्यस्रा** कहलाती है । खेद तथा अगल-बगल ताकने के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे ।

५ वलिता और उसका विनियोग

ग्रीवा पार्श्वोन्मुखी या तु सा सद्भिर्वलिता मता । 372
ग्रीवाभङ्गे तथा भर्तुः प्रेक्षाया गुरुसन्निधौ ।।३६५।।

जो ग्रीवा पार्श्व की ओर उन्मुख हो, उसे विद्वानो ने **वलिता** कहा हे । गर्दन के टूटने, स्वामी को देखने और गुरु के समीप (बैठने) के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६ कुञ्चिता और उसका विनियोग

अनम्रा कुञ्चिता ग्रीवा शिरोभारे स्वगोपने ।।३६६।। 373

थोडी-सी झुकी हुई ग्रीवा **कुञ्चिता** कहलाती है। शिर पर बोझा ढोने और अपने को छिपाने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

७ अञ्चिता और उसका विनियोग

चञ्चला प्रसृता यासावञ्चिताऽधोनिरीक्षणे ।
केशपाशाकर्षणेऽपि विनियुक्ता नियोक्तृभि ।।३६७।। 374

जो ग्रीवा कम्पित तथा फैली हुई हो वह **अञ्चिता** कहलाती है। प्रयोक्ताओ को नीचे देखने, और केशो को खीचने के अभिनय मे उसका उपयोग करना चाहिए।

८. निवृत्ता और उसका विनियोग

यदा याभिमुखीभूय विनिवर्त्तेत्तदा तु सा ।
निवृत्ता कथिता स्कन्धभारे सा चकितेक्षणे ।।३६८।। 375

यदि सम्मुख होकर ग्रीवा घूम जाय या लौट जाय तो उसे **निवृत्ता** कहते है। कन्धे पर बोझा ढोने तथा चकित होकर देखने मे उसका विनियोग होता है।

९ रेचिता और उसका विनियोग

या ग्रीवा विधुतभ्रान्ता सा मता रेचिताभिधा ।
वर्तुले मथनेऽप्येषा नियुक्ता नृत्यपण्डितैः ।।३६९।। 376

जो ग्रीवा कॉपती तथा घूमती हो,वह **रेचिता** कही जाती है। नृत्यविशारदो ने गोलाकार वस्तु और मन्थन का भाव प्रदर्शित करने मे उसका विनियोग कहा है।

सोलह प्रकार का बाहु अभिनय

बाहु के भेद

प्रसारितोऽधोमुखाख्य ऊर्ध्वस्थोद्वेष्टिताञ्चिताः ।
स्वस्तिको मण्डलगतिस्तिर्यक्पृष्ठानुसारिणौ ।।३७०।। 377
अपविद्धस्तथेत्युक्तो बाहुर्दशविधो बुधैः ।

विद्वानो ने बाहु के दस भेद बताये हे, जिनके नाम है १ **प्रसारित**, २ **अधोमुख**, ३ **ऊर्ध्वस्थ**, ४ **उद्वेष्टित**, ५ **अञ्चित**, ६ **स्वस्तिक**, ७ **मण्डलगति** ८ **तिर्यक्**, ९ **पृष्ठानुसारी** ओर १० **अपविद्ध** ।

कुञ्चितः सरलो नम्रो दोलितोत्सारितावपि । 378
आविद्धश्चेति षड् बाहूनन्यानन्ये जगुर्बुधाः ॥३७१॥

दूसरे विद्वानो ने बाहु के छह अन्य भेद बताये है । उनके नाम है १ **कुञ्चित**, २ **सरल**, ३ **नम्र**, ४ **दोलित**, ५ **उत्सारित** ओर ६ **आविद्ध** ।

१ प्रसारित और उसका विनियोग

प्रसरत्यग्रदेशे यो बाहुः स स्यात् प्रसारितः । 379
आदानेऽसौ फलादीनां याचनेऽपि नियुज्यते ॥३७२॥

जो बाहु आगे की ओर फैली रहती है वह **प्रसारित** कहलाती है । फल आदि के लेने और माँगने के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता हे ।

२ अधोमुख

आलिङ्गस्तु धरां बाहुरधोमुख उदीरितः ॥३७३॥ 380

पृथ्वी का आलिगन करती हुई बाहु **अधोमुख** कहलाती है ।

३. ऊर्ध्वस्त और उसका विनियोग

शिरोदेशाद् व्रजन्नूर्ध्वमूर्ध्वगस्तुङ्गदर्शने ॥३७४॥

शिर से ऊपर को जाती हुई बाहु **ऊर्ध्वस्थ** कहलाती हे । ऊँची चीज को देखने का भाव प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

४. उद्वेष्टित और उसका विनियोग

निर्गम्य मणिबन्धाद्यो व्यावृत्त पुनराश्रित. । 381
उद्वेष्टितो भुजोऽसौ स्यादभिमाना [दना] दरे ॥३७५॥

जो बाहु कलाई से फैल कर पुन पीछे की ओर मुड कर मणिबन्ध पर ही अवस्थित हो, वह **उद्वेष्टित** कहलाती है । अभिमान से (किसी का) अनादर करने का भाव दर्शाने मे उसका विनियोग होता है ।

५ अञ्चित और उसका विनियोग

उरसः प्राप्य शीर्षं यो वक्षः पुनरुपाश्रितः । 382
स बाहुरञ्चितः खेदे नियोज्यो नृत्यपण्डितैः ॥३७६॥

जो बाहु छाती से शिर पर जाकर पुन छाती पर ही आकर अवस्थित हो जाय, वह **अञ्चित** कहलाती है। नृत्ताचार्यो ने खेद के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

६ स्वस्तिक और उसका विनियोग

पार्श्वव्यत्यासतो लग्नौ बाहू स्वस्तिक ईरितः। 383
रवेर्भवेदुपस्थाने प्रणामे परिरम्भणे ।।३७७।।

यदि दोनो बाहुओ को दोनो विपरीत पार्श्वो (अगल-बगल) मे सटा दिया या अवस्थित किया जाय तो उसे **स्वस्तिक बाहु** कहते है। सूर्योपस्थान, प्रणाम तथा आलिगन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है।

७ मण्डलगति और उसका विनियोग

सर्वतो भ्रमणाद् यः स्यात् स मण्डलगतिर्भुजः। 384
भ्रमणे तु गदाखड्गाद्यायुधानां प्रकीर्तितः ।।३७८।।

यदि बाहु को (वृत्ताकार) चारो ओर घुमाया जाय तो उसे **मण्डलगति** कहते है। गदा तथा तलवार आदि आयुधो को भाँजने (घुमाने) का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

८ तिर्यक् (और उसका विनियोग)

पार्श्वापगमनाद्बाहुस्तिर्यगाख्यो बुधैर्मतः ।।३७९।। 385

विद्वानो का अभिमत है कि यदि बाहु को पार्श्व भाग से हटा या अलग कर दिया जाय तो उसे **तिर्यक्** कहते है। (दूर हट जाने या अलग हो जाने के भाव को प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है)।

९ पृष्ठानुसारी और उसका विनियोग

पृष्ठतः सरणात्पृष्ठानुसारी बाहुरीरितः।
वीटिका ग्रहणे त्वेष तूणाद्बाणग्रहे तथा ।।३८०।। 386

यदि बाहु को पीठ की ओर ले जाया जाय तो उसे **पृष्ठानुसारी** कहते है। पान का बीडा लेने (या चोलि की ग्रन्थि बाँधने) और तूणीर (तरकश) से बाण निकालने का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

१० अपविद्ध और उसका विनियोग

उरसो मण्डलाकारभ्रान्त्या यो निःसृतो भुजः।
सोऽपविद्धो गदाखड्गयुद्धादिषु नियुज्यते ।।३८१।। 387

यदि बाहु को वक्षःस्थल के आगे मण्डलाकार मे चारो ओर घुमाया जाय, तो उसे **अपविद्ध** कहते है। युद्ध आदि मे गदा, खड्ग (तलवार) आदि का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

११ कुञ्चित और उसका विनियोग

सूचीं कुर्वन् कूर्परस्तु वक्रितः कुञ्चितो भवेत् ।
पानभोजनयोरेष प्रहारे खड्गधारणे ।।३८२।। 388

यदि कुहनी को सूची के आकार मे (नोकीली) बनाते हुए टेढा कर दिया जाय तो उस बाहु को **कुञ्चित** कहा जाता है। पीने, भोजन करने, प्रहार करने और खड्ग धारण करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१२ सरल और उसका विनियोग

प्रसारितः पार्श्वयोश्चेद्बाहुरूर्ध्वमधोऽपि यः ।
सरलोऽसौ तदा पूर्वः पक्षानुकरणेऽपरः । 389
माने भवेत्तृतीयस्त भूस्थापौरुषो गतिः(? षयोर्मतः) ।।३८३।।

यदि बाहु को दोनो पार्श्वों, ऊपर तथा नीचे फैला दिया जाय तो उसे **सरल** कहा जाता है। पार्श्व मे फैलायी जाने वाली बाहु के पक्ष का अनुकरण करने मे, ऊपर फैलायी जाने वाली बाहु का मान करने मे, और नीचे फैलायी जाने वाली बाहु का भूमि पर स्थित वस्तु तथा अपौरुषेय वस्तु का भाव दर्शाने मे उसका विनियोग होता है।

१३ नम्र और उसका विनियोग

मनाग्वक्रीकृतो नम्रः स्तोत्रे माल्यादिधारणे ।।३८४।। 390

यदि बाहु को थोडा झुका दिया जाय तो उसे **नम्र** कहा जाता है। स्तोत्रपाठ तथा माल्यादि धारण करने मे उसका विनियोग होता है।

१४ आन्दोलित और उसका विनियोग

बाहुरान्दोलितोऽन्वर्थः सविलासगतादिषु ।।३८५।।

अर्थ का अनुसरण करने वाली (अर्थात् इधर-उधर, ऊपर-नीचे चलायी जाने वाली) बाहु **आन्दोलित** कहलाती है। हाव-भाव के साथ सचालित होने आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१५. उत्सारित और उसका विनियोग

निजं पार्श्वं सरन्नन्यपार्श्वादुत्सारितो भुजः । 391
जनतोत्सारणे प्रोक्ता नियोगोऽस्य मनीषिभिः ।।३८६।।

यदि बाहु को दूसरे के पार्श्व से हटाकर अपने पार्श्व मे लाया जाय तो उसे **उत्सारित** कहते हे। विद्वानो ने जन-समूह को दूर हटाने के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

१६ आविद्ध

बाहुरभ्यन्तराक्षेपाद् बुधैराविद्ध ईरित. ॥३८७॥ 392

भीतर की ओर चलायी जाने वाली बाहु को विद्वानो ने **आविद्ध** कहा है।

चार प्रकार का उदराभिनय

उदर के भेद

क्षामं खल्लं तथा पूर्ण रिक्तपूर्णमिति क्रमात् ।
चतुर्धोदरमाख्यातमेतल्लक्ष्माधुना ब्रुवे ॥३८८॥ 393

उर के चार प्रकार बताये गये हे १ **क्षाम**, २ **खल्ल**, ३ **पूर्ण** और ४ **रिक्तपूर्ण** ।

१ क्षाम और उसका विनियोग

नमनादुदरं क्षामं वीरसिंहसुतोदितम् ।
[भवेत् तज्] जृम्भणे हास्ये निःश्वस्य रुदिते तथा ॥३८९॥ 394

अशोकमल्ल ने पिचके या दबे उदर को **क्षाम** कहा हे। जम्हाई लेने, हँसने, लम्बी साँस लेने और रुदन के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

२ खल्ल और उसका विनियोग

निम्नं खल्लं समाख्यातमातुरे श्रमकर्षिते ।
वेतालभृङ्गिरिट्यादिधारणे च क्षुधादिते ॥३९०॥ 395

धँसे हुए पेट को **खल्ल** कहा जाता है। रोगी, थके-माँदे, पिशाच (वेताल), शिव का गण (भृगी तथा रिटि) आदि का रूप धारण करने और प्यास के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ पूर्ण और उसका विनियोग

आध्मातमुदरं पूर्ण भवेदत्यशिते त्विदम् ।
जलोदराभिधे व्याधौ तुन्दिलाभिनयेऽपि च ॥३९१॥ 396

फूला हुआ पेट **पूर्ण** कहलाता है। अधिक भोजन करने, जलोदर नामक रोग तथा तोद वाले व्यक्ति के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

४ रिक्तपूर्ण और उसका विनियोग

स्यादन्वर्थ रिक्तपूर्ण श्वासरोगे प्रकीर्तितम् ॥३९२॥

अर्थ का अनुसरण करने वाला उदर (अर्थात् ऐसा उदर, जो खाली रहने पर भी भरा मालूम हो रिक्तपूर्ण कहलाता है। श्वास गेग के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

चार प्रकार का पृष्ठाभिनय

क्रियाभिरुदरोक्ताभिर्यतः पृष्ठं विकारवत् । 397
ततः पृथग्मया नास्य लक्षणं प्रतिपादितम् ॥३९३॥

उदराभिनय के जो लक्षण-विनियोग बताये गये है, उन्ही से (स्वभावत) पृष्ठ का भी व्यत्यय हो जाता हे। अत पृष्ठाभिनय का पृथक् रूप से निरूपण नही किया गया। (अर्थात् उदाराभिनय से ही पृष्ठाभिनय की क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिएँ) ।

पॉच प्रकार का उरु अभिनय

उरु (जॉघ) अभिनय के भेद

स्तब्धस्ततः कम्पितश्च वलितोद्वर्तितावपि । 398
निवर्त्तितस्तथेत्यूरोः पञ्चधा लक्षणं मतम् ।

उरु के पॉच भेद कहे गये हे १ **स्तब्ध**, २ **कम्पित**, ३ **वलित**, ४ **उद्वर्तित** और ५ **विवर्तित**।

१ स्तब्ध और उसका विनियोग

यो भवेन्निष्क्रियः स्तब्धः स साध्वसविषादयोः ॥३९४॥ 399

जो उरु निष्क्रिय या निश्चेष्ट हो, वह **स्तब्ध** कहलाता हे। भय और विषाद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

२ कम्पित और उसका विनियोग

नतोन्नतौ मुहुः स्यातां पार्श्वौ यस्य स कम्पितः ।
अधमानां गतौ प्रोक्तो विनियोगोऽस्य सूरिभिः ॥३९५॥ 400

जिस उरु मे दोनो पार्श्व बार-बार झुके और उठे, वह **कम्पित** कहलाता है। विद्वानो ने कहा है कि अधम व्यक्तियो की गति को अभिव्यक्त करने मे उसका विनियोग होता है।

३. वलित और उसका विनियोग

जानुन्यन्तर्गतो यः स्यादूरुः स वलिताभिधः ।
योषितां स्वैरगमने मुनिना स नियोजितः ॥३९६॥ 401

जो उरु घुटने के अन्तर्गत हो वह **वलित** कहलाता है। भरत मुनि ने स्त्रियो की स्वच्छन्द गति का भाव प्रकट करने मे उसका विनियोग बताया है।

४ उद्वर्तित और उसका विनियोग

मुहुरन्तर्बहिःक्षेपात् पार्ष्णेरग्रतलस्य च।
उद्वर्तितस्ताण्डवेऽसौ व्यायामाभिनये तथा ।।३९७।। 402

यदि एडी (पार्ष्णि) के अग्रभाग को बार-बार भीतर और बाहर चलाया जाय तो वह उरु **उद्वर्तित** कहलाता है। ताण्डव तथा नृत्य व्यायाम के प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है।

५ निर्वतित और उसका विनियोग

यो मध्यगतया पार्ष्ण्या भवेत् स तु निर्वर्तितः।
शमसम्भवयोरुक्तो वीरसिह सुसूनुना ।।३९८।। 403

जिस उरु के मध्यभाग मे एडी को रख दिया जाय वह **निर्वतित** कहलाता है। अशोकमल्ल ने शान्ति तथा सभव वस्तु या उत्पत्ति के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग बताया है।

दस प्रकार का जघाभिनय

जघा के भेद

क्षिप्ता नतोद्वाहिताख्यावर्तिता परिवर्तिता।
जङ्घैवं पञ्चधा प्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ।।३९९।। 404
बहिर्गता तिरश्चीना निःसृता कम्पिता तथा।
परावृत्ताभिधा [चासौ] प्रोक्ता पञ्चविधापरैः। 405

अशोकमल्ल ने जघा अभिनय के पाँच भेद बताये हे, जिनके नाम हे १ **क्षिप्ता**, २ **नता**, ३ **उद्वाहिता**, ४ **आर्वतिता** और ५ **परिर्वातता**। दूसरे आचार्यो के मत से उसके पाँच भेद आर होते हैं १ **बहिर्गता** २ **तिरश्चीना**, ३ **नि सृता**, ४ **कम्पिता** और ५, **परावृत्ता**।

१. क्षिप्ता और उसका विनियोग

बहिःक्षेपाद् भवेत् क्षिप्ता व्यायामे ताण्डवेऽपि च ।।४००।।

यदि जघा को बाहर की ओर चलाया जाय तो वह **क्षिप्ता** कहलाती है। व्यायाम आर ताण्डव नृत्य के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

२ नता और उसका विनियोग

नमज्जानुस्तु या जङ्घा सा नता परिकीर्तिता । 406
गतस्थानासनेष्वेषा वीरसिंहसुतोदिता ॥४०१॥

यदि घुटने को मोड दिया जाय तो वह **नता** जघा कहलाती है। अशोकमल्ल ने गमन, स्थान और आसन के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

३ उद्वाहिता और उसका विनियोग

उर्ध्वं गतोद्वाहिता स्यादाविष्टगमनादिषु ॥४०२॥ 407

यदि जघा को ऊपर की ओर उठाया जाय तो वह **उद्वाहिता** कहलाती है। आवेश तथा गमन (या भूत आदि से आविष्ट व्यक्ति) आदि के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है।

४ आर्वातिता और उसका विनियोग

दक्षिणे वामतः पादे वामे दक्षिणतो मुहुः ।
कृते योज्यावर्तिताख्या विदूषकपरिक्रमे ॥४०३॥ 408

यदि दाहिना पैर बाँयी ओर और बाँया पैर दाहिनी ओर बार-बार चलाया जाय तो उसे **आर्वातिता** जघा कहते हे। विदूषक के चक्कर काटने मे उसका विनियोग होता है।

५ परिर्वातिता और उसका विनियोग

प्रतीपं यायिनी जङ्घा कथिता परिर्वातिता ।
ताण्डवेऽशोकमल्लेन नृपाग्रण्या मनीषिणा ॥४०४॥ 409

उक्त **आवर्तिता** जघा के विपरीत क्रिया वाली जघा को **परिवर्तिता** कहते है। मनीषी महाराज अशोकमल्ल ने ताण्डव नृत्य के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

६ बहिर्गता

पार्श्वप्रसारिता नृत्ये सद्भिरुक्ता बहिर्गता ॥४०५॥

यदि नृत्य मे जघा को वगल की ओर फैलाया जाय तो सज्जनो ने उसे **बहिर्गता** कहा है।

७ कम्पिता और उसका विनियोग

कम्पिता कम्पनादुक्ता भये घर्घरिकाध्वनौ ॥४०६॥ 410

काँपती हुई जघा को **कम्पिता** कहा जाता है। भय और घर्घर ध्वनि का भाव प्रकट करने मे उसका विनियोग होता है।

८ तिरश्चीना और उसका विनियोग

क्षितिश्लिष्टबहिःपार्श्वा तिरश्चीना मतासने ॥४०७॥

जिस जघा का बाह्य पार्श्व भाग भूमि से सटा हो, उसे **तिरश्चीना** कहते हे । आसन के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

९ परावृत्ता और उसका विनियोग

पश्चात्प्राप्ता परावृत्ता धराश्लिष्टेन जानुना । 411

वामेन पितृकार्येऽथ देवकार्येऽपरेण सा ॥४०८॥

यदि घुटने को भूमि से सटा कर (या टिका कर) जघा को पीछे की ओर मोड दिया जाय तो उसे **परावृत्ता** कहते है । पितृ-कार्य का भाव दर्शाने मे **परावृत्ता** के बाँये घुटने को भूमिश्लिष्ट करके और देव-कार्य का भाव दर्शाना हो तो दाहने घुटने को भूमिश्लिष्ट करके उसका विनियोग करना चाहिए ।

१० नि सृता

याग्रे प्रसारिता जङ्घा सा मता निःसृताभिधा ॥४०९॥ 412

जो जघा आगे की ओर फैला दी जाय उसे **नि सृता** कहते हे ।

सात प्रकार के जानु अभिनय

जानु (घुटने) के भेद

नतोन्नते संहतं च विवृतं कुञ्चितं समम् ।

ततोऽर्धकुञ्चितं चेति जानूक्तं सप्तधा बुधैः । 413

विद्वानो ने जानु के सात भेद बताये हे १ नत, २ उन्नत, ३ सहत, ४ विवृत्त, ५ सम, ६ अर्धकुञ्चित और ७ कुञ्चित ।

१ नत और उसका विनियोग

भूमिप्राप्तं जानु नतं प्रोक्तं पातेऽभिवादने ॥४१०॥

भूमि पर अवस्थित जानु को **नत** कहते हे । किसी चीज को गिराने और अभिवादन करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२ उन्नत और उसका विनियोग

कुचदेशागतं जानून्नतमुच्चाधिरोहणे ॥४११॥ 414

यदि जानु को कुच देश तक उठा लिया जाय तो, वह **उन्नत** कहलाता है । ऊपर उठने या ऊँची चीज पर चढने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

३ सहत और उसका विनियोग

लग्नान्तर्जानु यज्जानु सहतं तद् बुधैर्मतम् ।
तदीर्ष्याकोपलज्जादिरतिभावेषु योषिताम् ॥४१२॥ 415

यदि एक जानु को दूसरे जानु के नीचे सटा कर रख दिया जाय तो विद्वानो के कथनानुसार उसे **सहत** जानु कहा जाता हे । ईर्ष्या, कोप, लज्जा ओर स्त्रियो के रति-भावो (कामकेलियो) के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे ।

४. विवृत और उसका विनियोग

जानुद्वयं बहिर्भूतं विवृतं जानु सम्मतम् ।
नियुज्यते वाजिगजारोहणादिषु सूरिभिः ॥४१३॥ 416

यदि दोनो जानुओ को बाहर की ओर फैला दिया जाय तो उसे **विवृत्त** कहते है । हाथी और घोडे आदि पर चढने आदि के अभिनय मे विद्वानो ने उसका विनियोग बताया है ।

५. सम और उसका विनियोग

स्वभाविकं सम जानु स्वभावावस्थितौ मतम् ॥४१४॥

यदि जानु को स्वाभाविक रूप मे रखा जाय तो उसे **सम** कहते है । स्वाभाविक अवस्था का भाव व्यक्त करने मे उसका विनियोग होता हे ।

६. अर्धकुञ्चित

नमनात्तु नितम्बस्य प्रोक्तं जान्वर्धकुञ्चितम् ॥४१५॥ 417

यदि नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे **कुञ्चित** जानु कहते हे ।

७ कुञ्चित और उसका विनियोग

श्लिष्टोरुजङ्घे जानूक्तं कुञ्चितं सद्भिरासने ॥४१६॥

यदि (घुटने को मोड कर) उरु और जघा को सटा दिया जाय तो उस जानु को **कुञ्चित** कहते है । सज्जनो ने आसन के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

पाँच प्रकार का मणिबन्ध अभिनय

मणिबन्ध (कलाई) के भेद

निकुञ्चाकुञ्चितौ स्यातां चलश्च भ्रमितः समः । 418
एवं पञ्चविधो धीरैर्मणिबन्धः प्रकीर्तितः ॥४१७॥

धीर पुरुषो ने मणिबन्ध के पाँच भेद बताये है १ **निकुञ्च**, २ **आकुञ्चित**, ३ **चल**, ४ **भ्रमित** और ५ **सम**।

१ निकुञ्च और उसका विनियोग

बहिर्यो निम्नतां प्राप्तो निकुञ्चोऽसौ मतः सताम् । 419
दाने त्वभयदानेऽपि मुनिना सम्प्रदर्शितः ॥४१८॥

जो कलाई बाहर की ओर झुकी हो उसे सज्जनो ने **निकुञ्च** कहा है। भरत मुनि ने दान तथा अभयदान के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

२ आकुञ्चित और उसका विनियोग

अन्तर्निम्नः समाख्यातो धीरैराकुञ्चिताभिधः । 420
प्रायः प्रयुज्यते धीरैरेष वस्त्वपसारणे ॥४१९॥

भीतर की ओर झुके हुए मणिबन्ध को धीर पुरुषो ने **आकुञ्चित** कहा है। धीरो के मत से वस्तु के हटाने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ चल और उसका विनियोग

अभ्यासाद् रचितौ चेत् स्तो निकुञ्चाकुञ्चिताविमौ । 421
चलस्तदा नियोगोऽस्यावाहने सद्भिरीरितः ॥४२०॥

यदि दोनो मणिबन्धो की निकुञ्च ओर आकुञ्चित मे रचना की जाय तो, वह **चल** कहलाता है। सज्जनो ने आह्वान करने के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

४ भ्रमित और उसका विनियोग

भ्रमणाद् भ्रमितः खड्गच्छुरिकाभ्रमणादिषु ॥४२१॥ 422

यदि मणिबन्ध को घुमाया जाय तो वह **भ्रमित** कहलाता है। तलवार ओर छुरे आदि के घुमाने मे उसका विनियोग होता है।

५. सम और उसका विनियोग

ऋजुः समे धारणे तु पुस्तकस्य प्रतिग्रहे ॥४२२॥

यदि मणिबन्ध को (स्वाभाविक रूप मे) सीधा रखा जाय तो वह **सम** कहलाता है। पुस्तक के धारण करने तथा दान लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

प्रत्यंग भूषणो का निरूपण

भूष्यन्तेऽङ्गानि यैस्तानि भूषणानि प्रचक्षते । 433
प्रत्यङ्गत्वं कथं तेषां तन्मतेऽप्युपपद्यते ॥४२३॥
मणिबन्धौ जानुनी च प्रत्यङ्गे स्तो यथाकथम् । 424

आभूषण से अग सुशोभित (विभूषित) होते है। इसलिए उन्हे भूषण कहा गया है। किन्तु जो यथाकथञ्चित् मणिबन्धो ओर जानुओ को प्रत्यग मानते है उनके मत मे भी आभूषणो मे प्रत्यगत्व कैसे सिद्व होता है ?

अत्र प्राह समाधानमशोको विदुषां वरः ॥४२४॥
शक्त्या यदपि बाधःस्याद् दृश्यतेऽत्र तथापि हि । 425
वृत्त्या लक्षणया तेषां तदङ्कृतिहेतुता ।
प्रत्यङ्गत्वं भवेदेवमिति सर्व समञ्जसम् ॥४२५॥ 426

इस समस्या का समाधान विद्वद्वर अशोकमल्ल ने इस प्रकार किया है कि यद्यपि भूषण का प्रत्यगत्व अभिध शक्ति से सिद्ध नही होता, तथापि लक्षणा वृत्ति से सिद्ध हो जाता है, क्योकि वे (मणिबन्ध तथा जानु) शोभा के कारण है। इसलिए प्रत्यग है। इस प्रकार उनका सामजस्य हो जाता है।

नौ प्रकार के प्रत्यगो का निरूपण समाप्त



दृष्टि [illegible]

दृष्टि अभिनय और उनका विनियोग

[अशोकमल्ल ने दृष्टि अभिनय के छत्तीस प्रकार बताये है, जिनमे रसजा दृष्टि के आठ, स्थायी भावजा दृष्टि के आठ ओर सचारी भावजा दृष्टि के बीस भेद होते है।]

रसजा दृष्टि के भेद

> कान्ता हास्या च करुणा रौद्रा वीरा भयानका ।
> बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ विज्ञेया रसदृष्टयः ।।४२६।। 427

रसजा दृष्टि के आठ भेद होते है १ कान्ता, २ हास्या, ३ करुणा, ४ रौद्रा, ५ वीरा, ६ भयानका, ७ बीभत्सा और ८ अद्भुता।

स्थायी भावजा दृष्टि के भेद

> स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दी(? दृ)प्ता भयान्विता ।
> जुगुप्सिता विस्मितेति दृशौऽष्टौ स्थायिभावजाः ।।४२७।।428

स्थायी भावो से उत्पन्न दृष्टि के आठ भेद होते ह १ स्निग्धा, २ हृष्टा, ३ दीना, ४ क्रुद्धा, ५ दृप्ता, ६ भयान्विता, ७ जुगुप्सिता और ८ विस्मिता।

सचारी भावजा दृष्टि के भेद

> शून्या च मलिना श्रान्ता तथान्या लज्जिताभिधा ।
> ग्लाना तथा शङ्किता च विषण्णा मुकुला ततः ।।४२८।।429
> कुञ्चिता चाभितप्ता च जिह्मा च ललिता तथा ।
> वितर्किता ततोऽप्यर्धमुकुलाकेकरा परा ।।४२९।।430
> विभ्रान्ता विप्लुता त्रस्ता विशोका(? कोशा)मदिरा तथा ।
> विंशतिर्व्यभिचारिण्यो दृष्टयो मुनिनोदिताः ।।४३०।।431

भरत मुनि के मतानुसार सचारी भावो या व्यभिचारी भावो से उत्पन्न दृष्टि के बीस भेदो के नाम इस प्रकार है १ शून्या, २ मलिना, ३ श्रान्ता, ४ लज्जिता, ५ ग्लाना, ६ शकिता, ७ विषण्णा, ८ मुकुला, ९ कुञ्चिता, १० अभितप्ता, ११ जिह्मा, १२ ललिता, १३ वितर्किता, १४ अर्धमुकुला, १५ आकेकरा, १६ विभ्रान्ता, १७ विलुप्ता, १८ त्रस्ता, १९ विकोशा और २० मदिरा ।

दृष्टयो मिलिताः सर्वा षट्त्रिंशत् परिकीर्तिताः ।

इस प्रकार दृष्टियो के सभी भेदो को मिलाकर कल छत्तीस दृष्टियाँ होती है ।

आठ रसजा दृष्टियाँ (१)

१ कान्ता

या दृश्यमापिबन्तीव भृशं स्वच्छा विकाशिनी ॥४३१॥ 432
सभ्रूक्षेपकाटाक्षा सा कान्तानङ्गविवर्धिनी ।
यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम् । 433
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते ॥४३२॥

जो दृष्टि मानो दृश्य पदार्थ को पी रही हो, अत्यन्त स्वच्छ एव विकसित हो, भ्रूभग (टेढी भवो वाली) तथा कटाक्ष से युक्त हो और कामोत्पादक (या कामिनियो के शरीर की शोभा का उत्कर्ष वताने वाली) हो, हो, वह कान्ता कहलाती हे ।

२ हास्या और उसका विनियोग

या कुञ्चितपुटा तीव्रमध्यमन्दतया क्रमात् । 434
मनागभ्यन्तराविष्टा चित्रभ्रान्तकनीनिका ।
हास्या दृष्टिरसावुक्ता सद्भिर्विस्मापने मता ॥४३३॥ 435

यदि सिकुडी हुई पलको वाली दृष्टि क्रमश तीव्र, मध्य और मन्द गति से कुछ भीतर की ओर चली जाय ओर पुतलिया आश्चर्यजनक रूप मे घूमती हो, तो वह हास्या कहलाती है । नाट्याचार्यो के मत से आश्चर्यचकित करने वाले भावो के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

३ करुणा और उसका विनियोग

या स्रस्तोर्ध्वपुटा सास्रा नासिकाग्रानुगामिनी ।
शोकमन्थरतारा सा करुणा करुणे मता ॥४३४॥ 436

जो दृष्टि नीचे गिरी हो, पलक ऊपर उठी हो, अश्रु बहा रही हो, नाक के अग्रभाग पर जमी हो और शोक के कारण जिसकी पुतली शिथिल पड गयी हो, वह **करुणा** कहलाती है। करुण रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

४ रौद्री और उसका विनियोग

रूक्षा क्रूरा स्तब्धतारा चकितोभपुटारुणा ।
उग्रा भ्रुकुटिभीष्मा या सा रौद्री दृष्टिरीरिता ।।४३५।। 437

जो दृष्टि रूक्ष, क्रूर, स्थिर पलको वाली, चकित, उग्र पलको वाली, अरुण, तीक्ष्ण और भयानक भृकुटि वाली हो, वह **रौद्री** कहलाती है। रौद्र रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

५. वीरा और उसका विनियोग

अक्षुब्धा समतारा या गम्भीरोत्फुल्लमध्यभाक् ।
दीप्ता विकासिता दृष्टिर्वीरा सा वीरगोचरा ।।४३६।। 438
माधुर्यधैर्यगाम्भीर्यौदार्याणि तु विवृण्वती ।
शोभातेजोविशेषादीन् सत्त्वभेदांश्च सा किल ।।४३७।। 439

जो दृष्टि क्षोभरहित, सम तारो वाली, गभीर, उत्फुल्ल मध्य भाग वाली, दीप्त, विकसित और वीरोचित हो, वह **वीरा** कहलाती है। मधुरता, धीरता, गभीरता, उदारता, शोभा, विशेष तेज और अनेक प्रकार के पराक्रमो की अभिव्यक्ति मे उसका विनियोग होता है।

६ भयानका और उसका विनियोग

विलोलोद्वृत्ततारा या स्तब्धोद्वृत्तपुटोभया ।
दृश्यात्पलायमानेव सोक्ता दृष्टिर्भयानका ।।४३८।। 440

चचल, फडकते हुए तारो वाली, स्तब्ध एव खुले हुए पलको वाली और देखने से मानो पलायन कर देने वाली दृष्टि **भयानका** कहलाती है। भयानक रस के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है।

७. बीभत्सा और उसका विनियोग

घृणयोद्वेगमापन्ना दृश्याद् या लोलतारका ।
निकुञ्चितपुटापाङ्गा संश्लिष्टचलपक्ष्मभाक् । 441
बीभत्सा दृष्टिरुक्ता सा बीभत्सरससंश्रया ।।४३९।।

घृणा के भावो को उद्दीप्त करने वाली, दृश्य से चचल तारो वाली, सिकुटी हुए पलको के कोगे वाली, सटी हुई और घूमते हुए पलको वाली दृष्टि **बीभत्सा** कहलाती है। बीभत्स रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

८. अद्भुता और उसका विनियोग

किञ्चित्कुञ्चितपक्ष्माग्रा याश्चर्योद्वृत्ततारका । 442
सौम्यापाङ्गविकासाढ्याऽद्भुता सा दृष्टिरद्भुते ।।४४०।।

ईषत् सिकुडी हुई बरौनियो के अग्रभाग वाली, अश्चर्य के साथ घूमती हुई पुतली वाली, सोम्य तथा खि ले हुए कोरो (अपागो) से सम्पन्न दृष्टि **अद्भुता** कहलाती है । अद्भुत रस के अभिनय मे उसका **विनियोग** होता है ।

आठ स्थायिभावजा दृष्टियाँ (२)

१ स्निग्धा

स्मिततारा साभिलाषोत्क्षिप्तभ्रूर्या विकाशिनी । 443
कटाक्षिणी सहर्षा सा दृष्टिः स्निग्धोदिता बुधैः ।
उत्क्षेपं केचिदुभयोर्भ्रुवोराहुर्मनीषिणः ।।४४१।। 444

मुस्कराती हुई पुतली वाली, चाहभरी, ऊपर फेकी हुई भवो वाली, खिली हुई, कटाक्ष करने वाली और हर्षित दृष्टि **स्निग्धा** कहलाती है । कुछ विद्वानो का कहना हे कि उसमे दोनो भवो को ऊपर फेकना चाहिए ।

२ हृष्टा और उसका विनियोग

स्मिताकृतिर्विशदतारा फुल्लगल्लयुगा चला ।
मनागाकुञ्चितप्रान्ता दृष्टिर्या च निमेषिणी । 445
सा हृष्टा दृष्टिरादिष्टा हासे नृत्तविचक्षणैः ।।४४२।।

हास्ययुक्त आकृति वाली, विशद तारो वाली, दोनो कपोलो को उत्फुल्ल करने वाली , चचल, कुछ सिकडी हुई कोरो वाली निमेष दृष्टि **हृष्टा** कहलाती हे । नाट्यशास्त्रियो ने हास्य रस के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

३. दीना

मनाक्स्रस्तोर्ध्वपुटा किञ्चिदावृत्ततारका । 446
बाष्पाविलाल्पसञ्चारा दृष्टिर्दीनोदिता बुधैः ।।४४३।।

गिरी हुई, ऊपर उठे हुए पलको वाली, कछ खुली हुई पुतलियो वाली, आँसुओ से भरी आर **मन्द-मन्द** सचरण करने वाली दृष्टि को विद्वानो ने **दीना** कहा ह ।

४ क्रुद्धा और उसका विनियोग

कुटिल भ्रुकुटी रूक्षा [किञ्चित्तरलतारका] । 447
स्तब्धोद्वृत्तपुटा दृष्टिः क्रुद्धा क्रोधे निरूपिता ॥४४४॥

टेढी भवो वाली, रूखी, कुछ चचल तारो वाली स्थिर और उठे हुए पलको वाली दृष्टि **क्रुद्धा** कहलाती है । क्रोध के भावो को व्यक्त करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

५ दृप्ता और उसका विनियोग

उद्गिरन्तीव या धैर्य स्थिरा चोत्साहिनी तथा । 448
दृष्टिर्दृप्ताभिधोत्साहे सा योज्या नृत्तकोविदैः ॥४४५॥

धैर्य को उगलति हुई-सी स्थिर तथा उत्साहयुक्त दृष्टि को नाटयाचार्यो ने **दृप्ता** कहा है । उत्साह के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६ भयान्विता

त्रासान्निष्क्रान्तमध्येव विस्तारितपुटोभया । 449
विलोलतारका भीत्या दृष्टिस्त्रस्ता भयान्विता ॥४४६॥

मानो भय से बाहर निकली मध्यभाग वाली, दोनो खुली हुई पलको वाली, भय से काँपती हुई तारो वाली भयग्रस्त दृष्टि **भयान्विता** कहलाती है ।

७ जुगुप्सिता

योद्विग्ना दृश्यमालोक्य सकुचत्पुटतारका । 450
अव्यक्तालोकिनी धीरैरसावुक्ता जुगुप्सिता ॥४४७॥

दृश्य को देखकर उदविग्न (व्याकुल) हुई, सकुचित पलको एव पुतलियो वाली और साफ न दिखायी देने वाली दृष्टि को धीर पुरुषो ने **जुगुप्सिता** कहा है ।

८ विस्मिता और उसका विनियोग

विस्तारितपुटद्वन्द्वातिशयोद्भ्रान्ततारका । 451
विकाशिनी समा दृष्टिर्विस्मिता विस्मयोद्भवा ।

फैली हुई, दोनो पलको वाली, अत्यन्त घूमने वाले तारो वाली, खिली हुई और सम दृष्टि को **विस्मिता** कहते है । विस्मय के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है ।

दृशोऽनूक्ताभिनयना ज्ञेयाः - ˎ ... ॥४४८॥ 452

जिन दृष्टियो के यहाँ अभिनय-विनियोग नही बताये गये है, अपने-अपने रसो के अभिनय मे उनका विनियोग समझना चाहिए ।

सचारी भावजा दृष्टियाँ (३)

१ शून्या और उसका विनियोग

निष्कम्पा समतारा या मलिना शून्यदर्शना ।
तथा समपुटा बाह्यविषयेषु गतस्पृहा । 453
सा दृष्टिः कथिता शून्या धीरैश्चिन्तानिरूपणे ॥४४९॥

कम्पनरहित, सम तारो वाली, मलिन, शून्य दिखायी पडने वाली, सम पलको वाली और बाह्य विषय को ग्रहण करने मे निस्पृह दृष्टि **शून्या** कहलाती हे । विद्वानो ने चिन्ता का भाव प्रकट करने मे उसका विनियोग बताया है ।

२ मलिना और उसका विनियोग

किञ्चित्कुञ्चत्पुटा लक्ष्याद्व्यावर्तितकनीनिका । 454
प्रस्पन्दमानपक्ष्माग्रा मलिनान्ता च या भवेत् ॥४५०॥
सा दृष्टिर्मलिना प्रोक्ता वैवर्ण्ये विहृते स्त्रियाः । 455
प्रियेण यदसंलापः कालेऽपि विहृतं हि तत् ॥४५१॥

कुछ सिकुडे हुए पलको वाली, लक्ष्य को ग्रहण करने मे असमर्थ पुतलियो वाली, बरोनियो के अग्रभाग से कम्पित और अन्तिम भाग से मलिन (धुँधली) दृष्टि **मलिना** कहलाती हे । मालिन्य तथा स्त्रियो के प्रेम-प्रदर्शन और उचित अवसर पर ही प्रिय के साथ वार्तालाप करने (विहृत-स्त्रियो के दस हावो मे एक) मे उसका विनियोग होता है ।

३ श्रान्ता और उसका विनियोग

श्रमम्लानपुटा सन्ना किञ्चित्कुञ्चदपाङ्गिका । 456
पतत्कनीनिका श्रान्ता दृष्टिः सद्भिः श्रमे मता ॥४५२॥

श्रम से म्लान पलको वाली, स्तब्ध, कुछ सिकुडी हुई कोरो वाली और नीचे गिरती हुई तारो वाली दृष्टि **श्रान्ता** कहलाती हे । श्रम के अभिनय मे विद्वानो ने उसका विनियोग बताया है ।

४ लज्जिता और उसका विनियोग

मनागञ्चितपक्ष्माग्रा त्रपात्रस्तकनीनिका । 457
संत्रस्तोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जिता लज्जिते स्त्रिया. ।।४५३।।

बरौनियो से कुछ सिकुडी हुई अग्रभाग वाली, लज्जा से गिरी हुई पुतलियो वाली, बहुत डरी हुई और ऊपर उठी हुई पलको वाली दृष्टि लज्जिता कहलाती है । स्त्रियो की लज्जा का भाव प्रकट करने मे उसका विनियोग होता है ।

५ ग्लाना और उसका विनियोग

श्लथपक्ष्मपुटा भ्रूर्या मलिना मग्नतारका । 458
अल्पसञ्चारिणी दृष्टिः ग्लानौ [ग्लाना] निरूपिता ।।४५४।।

शिथिल पलको, मलिन भवो, डूबी हुई बरौनियो वाली और मन्द-मन्द चलने वाली दृष्टि **ग्लाना** कहलाती है । ग्लानि के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है ।

६ शकिता और उसका विनियोग

दृश्याद् द्रुतनिवृत्ता च मुहुर्लोलस्थिरोन्नता । 459
तिरश्चीना यथा गूढा तथा चकिततारका ।
सा दृष्टिः शङ्किता प्रोक्ता शङ्कायां पूर्वसूरिभिः ।।४५५।। 460

दृश्य पदार्थ से तुरन्त लोट आने वाली, बार-बार चचल, स्थिर, ऊपर उठी हुई, तिरछी, गूढ और चकित तारो वाली दृष्टि **शकिता** कहलाती है । पूर्वाचार्यो ने शका (द्विविधा, आशका) के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

७ विषण्णा और उसका विनियोग

त्रस्तापाङ्गा स्तब्धतारा विस्फारितपुटोभया ।
निमेषिणी या सा दृष्टिर्विषण्णोक्ता विषादिनी ।।४५६।। 461

गिरी हुई पलको वाली, निश्चल पुतली वाली, फैली हुई दोनो पलको वाली और पलक भाजने वाली दृष्टि **विषण्णा** कहलाती है । विषाद का भाव व्यक्त करने मे उसका विनियोग होता है ।

८ मुकुला और उसका विनियोग

योल्लसल्लग्नपक्ष्माग्रा सुखामीलत्कनीनिका ।
सा दृष्टिर्मुकुलानन्दे मञ्जुलस्पर्शगन्धयोः ।।४५७।। 462

जिसमे बरौनियो के अग्रभाग खिले हुए तथा मिले हुए हो और पुतलियो सुख के कारण उन्मीलित हो वह दृष्टि **मुकुला** कहलाती है। आनन्द, सुन्दर, स्पर्श तथा गन्ध के भावो को अभिव्यक्त करने मे उसका विनियोग होता है।

९ कुञ्चिता और उसका विनियोग

आकुञ्चितपुटपक्ष्माग्रा सम्यक्कुञ्चितकनीनिका।
या दृष्टिः कुञ्चिता सोक्ता तेजोदुष्प्रेक्षव[स्तु]नि। 463
असूयिते तथानिष्टे नेत्रसंव्यथनेऽपि च ॥४५८॥

यदि पलक और बरौनियो के अग्रभाग सिकुडे हुए हो और तारे भी अच्छी तरह सिकुडे हुए हो, तो उसे **कुञ्चिता** दृष्टि कहते है। तेज, कठिनाई से दिखायी देने वाली वस्तु को देखने, ईर्ष्या, अनिष्ट और नेत्र-पीडा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१० अभितप्ता और उसका विनियोग

निरीक्षणालसे तारे व्यथया चलितौ पुटौ। 464
यत्र सन्तापलग्नान्ता साभितप्ता दृगीरिता।
उपतापेऽभिघातेऽपि निर्वेदाभिनये तथा ॥४५९॥ 465

जिसकी पुतलियाँ देखने मे आलस्ययुक्त हो, व्यथा के कारण दोनो पलके चलायमान हो और कोरे सन्ताप मे डूबी हुई हो, वह दृष्टि **अभितप्ता** कहलाती है। रोग, चोट और अवसाद के अभिनय मे उसका निवियोग होता है।

११ जिह्मा

निगूढस्रस्ततारा या शनैस्तिर्यग्निरीक्षणा।
आकूणितपुटा गूढा जिह्मा दृष्टिरुदीरिता ॥४६०॥ 466

जिसकी पुतलियाँ छिपी एव गिरी या लटकी हुई हो, धीरे-धीरे तिरछी चितवन डालती हो, जिसकी पलके कुछ सकुचित हो और जो गूढ हो, वह दृष्टि **जिह्मा** कहलाती है।

१२ ललिता और उसका विनियोग

सस्मिता कुञ्चितप्रान्ता मधुरा भ्रूविकारयुक्।
विकाशिता मनोजन्मविस्तारसहिता च या। 467
सा दृष्टिर्ललिता धीरैर्ललिते सम्प्रयुज्यते ॥४६१॥

मुसकुराती हुई, सिकुडी हुई कोरो वाली, मधुर, भ्रू-भगिमा से युक्त, विकसित, कामभाव प्रकट करने वाली और लम्बी दृष्टि **ललिता** कहलाती है। ललित भावो के अभिव्यजन मे वीर पुम्पो ने उसका विनियोग बताया है।

१३ वितर्किता और उसका विनियोग

तर्केऽद्भुते पुटद्वन्द्वा या विकाशिततारका । 468
अधस्तात्सञ्चरन्ती सा दृष्टिरुक्ता वितर्किता ॥४६२॥

अद्भुत तर्क मे लगी हुई दोनो पलको वाली, खिले हुए तारे वाली और नीचे की ओर सचरण करने वाली दृष्टि **वितर्किता** कहलाती है। (अद्भुत रस को उपस्थित करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है)।

१४ अर्धमुकुला और उसका विनियोग

स्तोकोन्मीलिततारारव्या मानाकुञ्चत्पुटद्वया । 469
किञ्चिदुत्फुल्लपक्ष्माग्रा दृक् सार्धमुकुला सुखे ॥४६३॥

अर्ध मुकुलित तारो वाली, कुछ कुञ्चित हुई दोनो पलको वाली और ईषत् खिली हुई बरानियो के अग्रभाग वाली दृष्टि **अर्धमुकुला** कहलाती है। सुख के भावो के अभिव्यजन म उसका विनियोग होता है।

१५ आकेकरा और उसका विनियोग

आकुणितपुटापाङ्गा मुहुस्तरलतारका । 470
तिर्यग्निवेशिता यार्धनिमेषसहिता च दृक् ॥४६४॥
साकेकरा दुर्निरीक्ष्ये विच्छेदप्रेक्षितेऽपि च । 471
स्नेहविच्छेदतः कान्ते सापराधे यदीक्षणम् ।
वीरसिंहसुतेनोक्तं विच्छेदप्रेक्षितं हि तत् ॥४६५॥ 472

जिसकी पलके तथा कोरे कुछ सिकुडी हुई हो, पुतलियाँ बार-बार घूमती हो, जो तिरछी चितवन से युक्त हो और आधी खुली हुई हो, वह दृष्टि **आकेकरा** कहलाती है। कठिनाई से देखने और स्नेहभगपूर्वक दृष्टिपात करने मे उसका विनियोग होता है। प्रिय के अपराधी होने पर स्नेहविच्छेदपूर्वक जो दृष्टि उस पर डाली जाती है, उसको अशोकमल्ल ने **विच्छेदप्रेक्षित** कहा है।

१६ विभ्रान्ता और उसका विनियोग

या विश्रान्तिं क्वचिन्नैति लोलोत्फुल्लकनीनिका ।

विस्तीर्णा च बुधैः सोक्ता दृष्टिर्विभ्रान्तसंज्ञिका । 473
विभ्रमे सा तथा वेगे विरामेऽपि नियुज्यते ॥४६६॥

जो कही विश्राम नही पाती तथा चचल रहती है, जिसकी पुतलियाँ खिली हुई हो और जो फैली हुई हो, उसे विद्वानो ने **विभ्रान्ता** दृष्टि कहा है। भ्रान्ति (बेचैनी), आवेग और विराम के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है ।

१७ विलुप्ता और उसका विनियोग

स्फुरितौ या पुटौ स्तब्धौ पतितावपि चेत्क्रमात् । 474
धत्ते सा विप्लुता दृष्टिर्गदिता चापले बुधैः ।
उन्मादे च तथार्त्तौ च दुखादावपि युज्यते ॥४६७॥ 475

जो दृष्टि क्रमश क्षुब्ध, स्थिर तथा गिरी हुई दोनो पलको को धारण करती हे (अर्थात् इन स्थितियो मे वर्तमान रहती है) उसे **विलुप्ता** कहते हे। चपलता, उन्माद, पीडा तथा दुख आदि के अभिनय मे विद्वानो ने उसका विनियोग बताया है ।

१८ त्रस्ता और उसका विनियोग

त्रासोद्भ्रमत्पुटद्वन्द्वा या कम्पितकनीनिका ।
उत्फुल्लमध्यमा त्रस्ता सा दृष्टिस्त्रासगोचरा ॥४६८॥ 476

जिसकी दोनो पलके भय से घूमती हो, पुतलियाँ कापती हो ओर जिसका मध्य भाग विकसित हो उसे त्रस्ता दृष्टि कहा जाता हे। त्रास के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१९ विकोशा और उसका विनियोग

उत्फुल्लपुटयुग्माग्रा यानवस्थिततारका ।
निर्निमेषा समुत्फुल्ला विकोशा सा दृगीरिता । 477
उग्रदर्शनविज्ञानक्रोधेषु ज्ञानगर्वयोः ॥४६९॥

जिसकी दोनो पलको के अग्रभाग खिले हो, पुतलियाँ घूमती हो, पलके निर्निमेष (अपलक) हो और जो अत्यन्त विकसित हो, वह दृष्टि **विकोशा** कहलाती है। भयकर दर्शन, विज्ञान, क्रोध, पाण्डित्य और गर्व के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है।

२० त्रिविधा मदिरा और उसका विनियोग

आघूर्णितान्तरा क्षामा किञ्चिदञ्चिततारका । 478

विक[illegible] चला दृष्टिर्मदिरा तरुणे मदे [१] ॥४७०॥

मनाक्स्रस्तपुटा दृष्टिर्या किञ्चिद्भ्रान्ततारका । 479

अनवस्थितसंचारा मुहु: पक्ष्माग्रपीडिता ॥४७१॥

मदिरा सा मदे धीरैर्मध्यमे परिकीर्तिता [२] । 480

अधस्तात्सञ्चरन्ती या किञ्चिल्लक्षिततारका ।

सनिमेषा च सा धीरैर्मदिरोक्ताऽधमे मदे [३] ॥४७२॥ 481

मदिरा दृष्टि के तीन भेद कहे गये ह, जिनका लक्षण-विनियोग इस प्रकार है (१) जिस दृष्टि का भीतरी भाग घमता हो, जो क्षीण हो, जिसकी पुतली कुछ झुकी हो और जो खिली हुई तथा चचल हो, उसे **मदिरा** कहते है। पर्ण मद के अभिनय म उसका विनियोग होना है। (१) जिस दृष्टि की पलक कुछ गिरी हुई हो, पुतली कुछ घम रही हो, गति अस्थिर हो और जो वरानी के अग्रभाग से बार-बार पीडित हो, उसे भी **मदिरा** कहते है। धीर पुरुषो ने मध्यम मद के अभिव्यजन मे उसका विनियोग बताया है। (३) जो दृष्टि नीचे की ओर सचरण करती हो, जिसकी पुतली कम दिखायी पडती हो और जो पलक मारती हो, उसे भी **मदिरा** कहते है। धीर पुरुषो ने अधम मद के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

दृष्टि के अनन्त भेद

षट्त्रिंशद् दृष्टयस्त्वेता दिङ्मात्रेण मयोदिता: ।

अनन्ता भ्रूपुटादीना सन्दर्भात् सन्ति दृष्टय: ॥४७३॥ 482

स्फुटयन्त्यो रसादीन् या: करैरपि निवेदिता: ।

चतुर्मुखोऽपि ता वक्तुं समर्थो नेतर: कथम् ॥४७४॥ 483

उक्त छत्तीस प्रकार की दृष्टियाँ मैंने केवल दिग्दर्शन के लिए बतायी हे। भवो तथा पलको आदि के सयोग से उनके अनन्त भेद हो जाते हे। विभिन्न रसो के अनुसार उनका अभिव्यजन होता है, जो कि हस्ताभिनयो के सन्दर्भ मे यथास्थान निरूपित की गयी है। स्वय ब्रह्मा भी उन समस्त भेदो का वर्णन करने मे असमर्थ है, फिर दूसरे की बात का तो कहना ही क्या ?

छत्तीस प्रकार की दृष्टियो का निरूपण समाप्त

●

सात प्रकार की भ्रू (भौ) का अभिनय

भ्रू के भेद

सहजा रेचितोत्क्षिप्ता कुञ्चिता पतिता तथा ।
चतुरा भ्रुकुटी चेति सद्भिर्भ्रूः सप्तधोदिता । 484

सज्जनो ने भौ के सात भेद बताये है १ सहजा, २ रेचिता, ३ उत्क्षिप्ता, ४ कुञ्चिता, ५ पतिता, ६ चतुरा ओर ७ भ्रुकुटी ।

१ सहजा और उसका विनियोग

सहजा तु स्वभावस्था भावेषु सहजेषु सा ।।४७५।।

स्वाभाविक स्थिति मे रहने वाली भौ **सहजा** कहलाती है । सहज भावो के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२. रेचिता और उसका विनियोग

भ्रूरेका ललितोत्क्षिप्ता रेचिता नृत्तसंश्रया ।।४७६।। 485

एक ही भौ को सुन्दरता के साथ ऊपर उठाने को **रचिता** कहते है । ललित भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है ।

३ उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग

अन्वर्थलक्षणोत्क्षिप्ता क्रमाद्वाथान्यया सह ।
कोपे स्त्रीणा वितर्के च श्रवणे दर्शने निजे । 486
लीलादावपि हेलायां नियोज्यैषा मनीषिभिः ।।४७७।।

यदि भौवो को क्रमश अथवा एक के साथ दूसरी को (अर्थात एक साथ) ऊपर उठाया जाय तो उसे **उत्क्षिप्ता** कहा जाता है । स्त्रियो के कोप, तर्क-वितर्क, श्रवण, आत्मदर्शन, लीला और अवज्ञा के भावो के अभिव्यजन मे मनीषियो ने उसका विनियोग बताया है ।

४ कुञ्चिता और उसका विनियोग

मृदुभङ्गा तु यैकाभ्रूर्यद्वा सार्धद्वितीयया । 487
भ्रुवा सा कुञ्चिता प्रोक्ता विलासे किलकिञ्चिते ।
मोट्टायिते कुट्टमिते नियुक्ता सा प्रयोक्तृभिः ।।४७८।। 488

यदि एक या दोनो भौहो को मृदुता के साथ टेढा कर दिया जाय या झुका दिया जाय तो उसे **कुञ्चिता** भौ कहते है। विलास (क्रीडा-खेल-मनोरंजन) किलकिजित, मोट्टायित और कुट्टमित के अभिनय मे नाट्याचार्यो ने उसका विनियोग बताया है। (किलकिजित एक हाव है, जिसमे नायिका एक साथ कई भाव प्रकट करती है। मोट्टायित भी एक हाव है, जिसमे नायिका का अनुराग छिपाने की चेष्टा करने पर भी प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार कुट्टमित भी एक हाव है, जिसमे नायिका सुखानुभव के समय बनावटी दुखचेष्टा प्रकट करती है)।

५ पतिता और उसका विनियोग

पतिता भ्रूरधः प्राप्ता सद्वितीया क्रमेण वा ।
हासे घ्राणे विस्मये च रोषे हर्षजुगुप्सयोः । 489
असूयोत्क्षेपयोश्चोभे पतिते गदिते भ्रुवौ ॥४७९॥

यदि दोनो भौ एक साथ या क्रमश एक-एक करके नीचे झुका दी जाय तो उन्हे **पतिता** कहा जाता है। हास, घ्राण, विस्मय, क्रोध, हर्ष और घृणा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है। ईर्ष्या और फेंकने के भावो के अभिव्यजन मे दोनो **पतिता** भौहो का प्रयोग करना चाहिए।

६ चतुरा और उसका विनियोग

स्तोकस्पन्दाऽलसा या भ्रूरायता स्याद् द्वितीयया । 490
चतुरा सा भवेत्सौम्यसस्पर्शे ललितेऽपि च ।
शृङ्गाराभिनयेऽप्येव ज्ञेया अभिनयाः परे ॥४८०॥ 491

जो भौ किञ्चित् चलती हो, आलस्ययुक्त हो और दूसरी भौ के साथ फैली हुई हो उसे **चतुरा** कहते है। कोमल स्पर्श, ललित वस्तु ओर शृगारिक अभिनय मे उसका विनियोग होता है। अन्य अभिनयो मे भी इसी प्रकार उसका विनियोग समझ लेना चाहिए।

७ भृकुटि और उसका विनियोग

द्वितीयया सहामूलोत्क्षिप्ता भ्रूकुटिना(?भ्रूर्भ्रुकुटी)रुषि ॥४८१॥

यदि एक भौ दूसरी भौ के साथ जड के ऊपर उठा दी जाय (अर्थात खूब तान दी जाय) तो उसे **भ्रुकुटी** कहते है। क्रोध के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

नौ प्रकार की पलको का अभिनय

पलको के भेद

समौ विवर्तितौ स्याता प्रसृतौ कुञ्चितौ तथा । 492

पिहितौ स्फुरितौ स्यातामुन्मेषितनिमेषितौ ॥४८२॥
वितालिताभिधौ चैव नवधेति पुटौ मतौ । 493

पलको के नौ भेद बताये गये है १ सम, २ विवर्तित, ३ प्रसृत, ४ कुञ्चित, ५ पिहित, ६ स्फुरित, ७ उन्मेषित, ८ निमेषित और ९ वितालित ।

१ सम और उसका विनियोग

पुटौ साहजिकौ स्यातां समौ सहजगोचरौ ॥४८३॥

स्वाभाविक स्थिति मे विद्यमान पलके **सम** कही जाती है । स्वाभाविक स्थिति के प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है ।

२. विवर्तित और उसका विनियोग

विवर्तितौ समुद्भ्रान्तौ क्रोधे प्रोक्तौ मनीषिभिः ॥४८४॥ 494

भ्रमित या अस्तव्यस्त पलके **विवर्तित** कहलाती है । क्रोध के अभिनय मे उनका विनियोग होता है ।

३. प्रसृत और उसका विनियोग

प्रसृतौ त्वायतावुक्तौ विस्मये हर्षवीरयोः ॥४८५॥

फैली या लम्बायमान पलके **प्रसृत** कहलाती है । विस्मय, हर्ष, तथा वीरता के अभिनय मे उनका विनियोग होता है ।

४ कुञ्चित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ कुञ्चितौ स्यातामनिष्टे प्रेक्षणे रसे । 495
गन्धे स्पर्शे तथा प्रोक्तौ वीरसिंहक्षुसूनुना ॥४८६॥

सिकुडी हुई पलके **कुञ्चित** कहलाती है । अनिष्ट, निरीक्षण, रस, गन्ध तथा स्पर्श के अभिनय मे उनका विनियोग होता है ।

५ पिहित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ पिहितौ प्रोक्तौ सुप्तेऽक्षिव्यथनेऽपि च । 496
मूर्च्छातिवर्षयोरुष्णवातधूमाञ्चनार्तिषु ॥४८७॥

बन्द की हुई दोनो पलके पिहित कहलाती है । शमन, नेत्रपीडा, मूर्च्छा, अतिवृष्टि, उष्णवात (लू), धुआँ, आँजन और पीडा के अभिनय मे उनका विनियोग होता है ।

६ स्फुरित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ स्फुरितौ ज्ञेयौ धीरैरीर्ष्यास्विमौ मतौ ॥४८८॥ 497

फडकने वाली दोनो पलके **स्फुरित** कहलाती है। ईर्ष्या के अभिनय मे धीर पुरुषो ने उनका विनियोग बताया है।

७. उन्मेषित और ८ निमेषित तथा उनका विनियोग

उन्मेषितावलग्नौ स्तः संलग्नौ तु निमेषितौ ।
इमावुभावपि ज्ञेयौ क्रोधाभिनयने बुधैः ॥४८६॥ 498

यदि दोनो पलको को खोल दिया जाय तो वे **उन्मेषित** और बन्द कर दिया जाय तो **निमेषित** कहलाती है। विद्वानो ने क्रोध के अभिनय मे इन दोनो पलको का विनियोग बताया है।

९ वितालित और उसका विनियोग

वितालितावुत्तरेण पुटेनाध स्थिताहतेः ।
प्राहुः परे त्वलक्ष्ये तावतिविस्तारितौ पुटौ ॥४६०॥ 499

यदि ऊपर की पलक से नीचे की पलक पर चोट की जाय तो वे **वितालित** कहलाती है। दूसरे आचार्यो के मत से अत्यन्त फैली हुई पलके **वितालित** कहलाती है। अदृश्य वस्तु के अभिनय मे उनका विनियोग होता है।

तारो (आँखो की पुतलियो) का निरूपण

तारो के भेद

ब्रुवेऽहं तानि कर्माणि ताराभेदा भवन्ति ये ।
द्विधा तान्यात्मनिष्ठानि विषयाभिमुखानि च ॥४६१॥ 500

अब तारा भेदो तथा उनके कार्यो का निरूपण किया जा रहा है। उनके कार्य दो प्रकार के होते हे एक आत्मनिष्ठ और दूसरे विषयाभिमुख।

आत्मनिष्ठ ताराकर्म (१)

प्राकृतं भ्रमणं पातो वलनं चलनं तथा ।
प्रवेशनं समुद्वृत्तं निष्क्रामश्च विवर्तनम् ॥४६२॥ 501
नवोक्तान्यात्मनिष्ठानि ताराकर्माणि कोविदैः ।

विद्वानो ने आत्मनिष्ठ ताराकार्यो के नौ भेद बताये है १ **प्राकृत**, २ **भ्रमण**, ३ **पात**, ४ **वलन**, ५. **चलन**, ६ **प्रवेशन**, ७ **समुद्वृत्त**, ८ **निष्काम** और ९ **विवर्तन**।

१ प्राकृत

तारयो: समवस्थानं प्रकृत्या प्राकृतं मतम् ।।४६३।। 502

तारो (पुतलियो) की समवस्थित स्वाभाविक स्थिति **प्राकृत** कहलाती है ।

२ भ्रमण

पुटान्तर्मण्डलावृत्तिस्तारयोर्भ्रमणं मतम् ।।४६४।।

पलकों के भीतर तारो को मण्डलाकार मे घुमाना **भ्रमण** कर्म कहलाता है ।

३ पात

पातोऽधोगमनम्–

तारो का नीचे गिराना **पात** कहलाता है ।

४ वलन

–तिर्यग्गमनं वलनं मतम् । 503

तारो का तिरछा घुमाना **वलन** कहलाता हे ।

५ चलन

कम्पनं चलनं ज्ञेयम्–

तारो का काँपना **चलन** कहलाता है ।

६ प्रवेशन

–अथ तत् स्यात् प्रवेशनम् ।।४६५।।

पुटान्तरे प्रवेशो यः–

तारो का पलको के भीतर प्रवेश करना **प्रवेशन** कहलाता है ।

७ समुद्वृत्त

–समुद्वृतं समुन्नतम् । 504

तारो को ऊपर की ओर घुमाना या उन्नत करना **समुद्वृत्त** कहलाता है ।

८ निष्क्राम

निष्क्रामो निर्गमः प्रोक्तः–

तारो का बाहर निकलना **निष्क्राम** कर्म कहलाता है ।

९ विवर्तन

–कटाक्षः स्याद् विवर्तनम् ।।४६६।।

तारो का कटाक्ष करना **विवर्तन** कहलाता है ।

प्राकृतं समभावेषु भ्रमणं वीररौद्रयो. । 505
पातस्तु करुणे योज्यो वलनं वीररौद्रयोः ॥४९७॥

प्राकृत ताराकर्म का समभाव मे, **भ्रमण** का वीर तथा रौद्र रस मे, **पात** का करुण रस मे और **वलन** का वीर तथा रौद्र रस के अभिनय मे प्रयोग होता है।

भयानके तु चलनं युज्यते तु प्रवेशनम् । 506
हास्यबीभत्सयोर्धीरैः समुद्वृतं सता मतम् ॥४९८॥

भयानक रस के अभिनय मे **चलन** तथा **प्रवेशन** ताराकर्मो का विनियोग होता है। वीर पुरुषो का कहना है कि हास्य तथा बीभत्स रस के अभिनय मे **समुद्वृत्त** ताराकर्म का विनियोग करना चाहिए।

वीरे रौद्रेऽथ निष्कामो वीरे रौद्रे भयानके । 507
अद्भुतेऽप्यथ कर्तव्य शृङ्गारे तु विवर्तनम् ॥४९९॥

वीर तथा रौद्र रस के अभिनय मे **निष्काम** का ओर वीर, रौद्र, अद्भुत तथा शृगार रस के अभिनय मे **विवर्तन** तारा कर्म का विनियोग होता हैं।

विषयाभिमुख ताराकर्म (८)

समं साच्यनुवृत्तं चावलोकितविलोकिते । 508
आलोकितोल्लोकिते च प्रविलोकितमित्यपि ॥५००॥
विषयाभिमुखान्याहुर्दर्शनानीति सूरयः । 509

विद्वानो ने तारो (पुतलियो) के विषयाभिमुखदर्शनो के आठ भेद बताये है १ **सम**, २ **साचि**, ३ **अनुवृत्त**, ४ **अवलोकित**, ५ **विलोकित**, ६ **आलोकित**, ७ **उल्लोकित** ओर ८ **प्रविलोकित**।

१ सम

मध्यस्थतारक सौम्यं दर्शनं सममीरितम् ॥५०१॥

यदि तारो को बीच मे अवस्थित करके सौम्य दृष्टि से देखा जाय तो उसे **सम** कहते है।

२ साचि

तत् साचि यत् तिरश्चीनं पक्ष्मप्राप्तकनीनिकम् ॥५०२॥ 510

यदि बरौनियो की ओर तारो को घुमाकर तिरछी चितवन से देखा जाय तो उसे **साचि** कहते है।

३ अनुवृत्त

कार्त्स्न्यादन्तश्चिरस्था या दिदृक्षा सा बुधैर्मता ।
निर्वर्णना तया युक्तमनुवृत्तमुदीरितम् ॥५०३॥ 511

विद्वानो का मत है कि सम्पूर्ण रूप से चिरकाल तक रहकर भीतर देखने की जो इच्छा होती है वह निर्वर्णना कहलाती है और उस (निर्वर्णना) से युक्त दर्शन **अनुवृत्त** कहलाता है ।

४ अवलोकित

अधस्ताद्दर्शनं यत् स्यादवलोकितमीरितम् ।।५०४।।

नीचे पृथिवी की ओर तारना **अवलोकित** कहलाता हे ।

५ विलोकित

तद् विलोकितमाख्यातं पृष्ठतो यन्निरीक्षणम् ।।५०५।। 512

पृष्ठभाग से निरीक्षण करना या तारो को घुमाकर पीछे देखना **विलोकित** कहलाता है ।

६ आलोकित

यदीक्षणं स्वभावस्थमुक्तमालोकितं हि तत् ।।५०६।।

स्वाभाविक स्थिति मे रहकर दृष्टिपात करना **आलोकित** कहलाता है ।

७ उल्लोकित

यदूर्ध्वं दर्शनं सद्भिस्तदुल्लोकितमीरितम् ।।५०७।। 513

ऊपर की ओर जो दृष्टिपात किया जाता हे, सज्जनो ने उसे **उल्लोकित** कहा है ।

८ प्रविलोकित

पार्श्वतः प्रेक्षणं धीरैर्गदितं प्रविलोकितम् ।।५०८।।

पार्श्व देश से दृष्टिपात करने को विद्वानो ने **प्रविलोकित** कहा है ।

विनियोग

रसभावेषु तान्याहुः साधारण्येन सूरयः ।।५०९।। 514

विद्वानो ने सामान्यत रस-भावो के प्रदर्शन मे **विषयाभिमुखदर्शनो** का विनियोग बताया है ।

दृष्टि निरूपण समाप्त



उपांग प्रकरण / चार

उपांगाभिनय और उनका विनियोग

छह् प्रकार का नासाभिनय

अशोकमल्ल ने नासाभिनय के छह् भेदो का उल्लेख किया है । उनके नाम है १ **स्वाभाविकी,** २ **विकृष्टा,** ३ **सोच्छ्वासा,** ४ **विकूणिता,** ५ **नता** और ६ **मन्दा** ।

१ स्वाभाविकी और उसका विनियोग

स्वाभाविकी स्वभावस्था स्वाभावाभिनये मता ।।५१०।।

स्वाभाविक रूप मे अवस्थित नासिका को **स्वाभाविकी** कह्ते है। स्वभाव के अभिनय मे उसका विनियोग ह्रोता है ।

२ विकृष्टा और उसका विनियोग

ग्रत्युत्फुल्लपुटा नासा विकृष्टा भीतिरोषयोः । 515
ग्रार्तौ तथोर्ध्वश्वासे च तीव्रगन्धेऽप्युदाहृता ।।५११।।

यदि नासिका के नथुनो को अत्यधिक रूप से फुला दिया जाय, तो उसे **विकृष्टा** कह्ते है । भय, रोष, पीडा, ऊर्ध्वश्वास और तीव्र गन्ध के अभिनय मे उसका विनियोग ह्रोता है ।

३ सोच्छ्वासा और उसका विनियोग

योत्कृष्टमारुता नासा सा सोच्छ्वासोदिता बुधैः । 516
उच्छ्वासे सौरभेऽप्येषा दीर्घोच्छ्वासविधायिषु ।
निर्वेदादिष्विपि च या भावेषु विनियुज्यते ।।५१२।। 517

विद्वानो का कहना है कि यथेष्ट वायु से भरी (अर्थात् तेजी से ऊपर साँस खिचती) हुई नासिका **सोच्छ्वासा** कह्लाती है । साँस को ऊपर खीचने, सुगन्ध ग्रहण करने, उच्छ्वास लेने और वैराग्य या दुख आदि के भावो को अभिव्यजित करने मे उसका विनियोग होता है ।

४. विकूणिता और उसका विनियोग

नासा संकुचिता या स्यात् सोक्ता धीरैर्विकूणिता ।
आर्तौ हास्ये जुगुप्सायामसूयायामपि सा स्मृता ।।५१३।। 518

जिस नासिका के नथुने सिकोड लिये जायँ उसे **विकूणिता** कहते है। विद्वानो ने पीडा, हास्य, जुगुप्सा और असूया के भावो मे उसका विनियोग वताया है ।

५ नता और उसका विनियोग

मुहुर्लग्नपुटा या तु सा नता सद्भिरीरिता ।
विच्छिन्नमन्दरुदिते सोच्छ्वासे सा निरूपिता ।।५१४।। 519

यदि नथुनो को बार-बार सटाया या हिलाया जाय तो, विद्वानो ने उस नासिका को **नता** कहा है। सिसकने और साँस को ऊपर खीचने मे उसका विनियोग होता है ।

६ मन्दा और उसका विनियोग

ईषच्छ्वासोच्छ्वासयुक्ता नासा मन्दोदिता बुधैः ।
चिन्तानिर्वेदयोः शोके तथौत्सुक्ये नियुज्यते ।।५१५।। 520

मन्द श्वास एव उच्छ्वास से युक्त नासिका को विद्वानो ने **मन्दा** कहा है। चिन्ता, निर्वेद (वैराग्य), शोक और उत्सुकता का भाव प्रदर्शित करने मे उसका विनियोग होता है ।

उन्नीस प्रकार का वायु अभिनय

वायु के भेद (ऊर्ध्वश्वास अध श्वास)

स्वस्थौ चलौ विमुक्तश्च प्रवृद्धोल्लासितौ तथा ।
निरस्तस्खलितौ श्वासः प्रसृतो विस्मितस्तथा ।।५१६।। 521
नवधोच्छ्वासनिःश्वासावेवं कोहलकीर्त्तितौ ।

आचार्य कोहल के मत से उच्छवास (साँस खीचने) ओर नि श्वास (साँस छोडने) के नो भेद होते है। **१ स्वस्थ २. चल, ३ विमुक्त, ४ प्रबृद्ध, ५ उल्लासित, ६. निरस्त, ७ स्खलित, ८ प्रसृत** और **९ विस्मित** ।

समो भ्रान्तः कम्पितश्च विलीनान्दोलितौ नतः ।।५१७।। 522
स्तम्भितश्च तथोच्छ्वासनिःश्वासौ सूत्कृतं तथा ।
सीत्कृतं चेति स प्रोक्तो दशधा लक्ष्मवेदिभिः ।।५१८।। 523

शास्त्रकारो ने वायु के दस भेदो का उल्लेख किया है, जिनके नाम है १ सम २ भ्रान्त, ३ कम्पित, ४ बिलीन, ५ आन्दोलित, ६ स्तम्भित, ७ उच्छ्वास, ८ नि श्वास, ९ सूत्कृत और १० सीत्कृत ।

१ स्वस्थ और उसका विनियोग

स्वभावजौ यावुच्छ्वासनि.श्वासाख्यौ तु मारुतौ ।
तौ स्वस्थौ स्वस्वकार्येषु विन्नियुक्तौ नियोक्तृभि. ॥५१९॥ 524

उच्छ्वास ओर नि श्वास नामक स्वाभाविक रूप से गृहीत एव नि सृत वायु **स्वस्थ** कहलाता है । नृत्ताचार्यो ने सामान्यत सभी अभिनयो के भावो मे उसका विनियोग बताया है ।

२ चल और उसका विनियोग

उष्णावुच्छ्वासनिःश्वासौ सशब्दौ वक्त्रनिर्गतौ ।
यौ तौ चलौ शोकचिन्तासमौत्सुक्येषु कीर्तितौ ॥५२०॥ 525

जो उच्छवास तथा नि श्वास गर्म, शब्दयुक्त तथा मुख से निकले वे **चल** कहलाते है । शोक चिन्ता तथा तत्सम उत्सुकता के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

३ विमुक्त और उसका विनियोग

चिर निरुध्य यो मुक्तो विमुक्तः सोऽनिलो मतः ।
ध्याने योगे सद्भिरेष प्राणायामे च युज्यते ॥५२१॥ 526

जिस वायु को चिरकाल तक रोक कर छोड दिया जाय उसे **विमुक्त** कहा जाता है । सज्जनो ने ध्यान, योग तथा प्राणायाम के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

४ प्रवृद्ध और उसका नियोग

यो निःश्वासः प्रवृद्धः सन् सशब्दः स्याद् विनिर्गतः ।
प्रवृद्धनामासौ वायुः क्षयव्याध्यादिसंश्रयः ॥५२२॥ 527

जो नि श्वास-वायु बहुत बढ कर या (अवरुद्ध होकर) शब्द के साथ बाहर निकलता है, उसे **प्रबृद्ध** कहते है । क्षय रोग आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ उल्लासित और उसका विनियोग

यो नासया शनैः पीतश्चिरादुल्लासितस्तु सः ।
हृद्यगन्धे च सन्दिग्धे नियुक्तः पूर्वसूरिभिः ॥५२३॥ 528

जिस वायु को चिरकाल तक धीरे-धीरे नासिका द्वारा पिया (अर्थात् खीचा) जाय, उसे **उल्लासित** कहा जाता है। सुगन्ध और सन्दिग्ध वस्तु के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

६ निरस्त और उसका विनियोग

क्षिप्तः सकृत् सशब्दो यो निरस्तः सोऽभिधीयते ।
स रोगे दुःखसंयुक्ते श्रान्तेऽप्येष नियुज्यते ।।५२४।। 529

जिस वायु को एक ही वार शब्द के साथ छोड दिया जाय, वह **निरस्त** कहलाता है। रोग, दुःख, सतप्त और थके हुए के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

७ स्खलित और उसका विनियोग

यो निष्क्रान्तोऽतिदुःखेन स वायुः स्खलिताभिधः ।
दशायामन्तिमायां स व्याधिस्खलितयोरपि ।।५२५।। 530

जो वायु अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलता है, उसे **स्खलित** कहा जाता है। अन्तिम दशा, व्याधि तथा पतन के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

८ प्रसृत और उसका विनियोग

मुखाद् यो निर्गतो दीर्घः सशब्दः प्रसृतस्तु सः ।
प्रसुप्ताभिनये प्रोक्तोऽशोकमल्लेन धीमता ।।५२६।। 531

जो दीर्घ श्वास शब्द के साथ मुख से निकलता है, वह **प्रसृत** कहा जाता है। धीमान् अशोकमल्ल ने सोये हुए के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

९ विस्मित और उसका विनियोग

प्रयत्नेन विना यः स्याच्चित्तस्यान्यप्रसक्तितः ।
स विस्मितोऽद्भुते कार्यश्चिन्ताविस्मययोरपि ।।५२७।। 532

अन्यमनस्कावस्था मे, विना प्रयत्न के (स्वभावत) जो वायु मुख से निकलता है वह **विस्मित** कहा जाता है। आश्चर्य, चिन्ता और विस्मय के अभिनय मे उसका विनियोग करना चाहिए।

दसविध वायु के विनियोग

दश त्वन्वर्थलक्ष्माणो विज्ञातव्याः समादयः ।

(श्लोक ५१७ और ५१८ मे) वायु के **सम** आदि जो दस भेद बताये गये है उनके लक्षणो के अनुरूप ही विनियोग भी समझने चाहिएँ।

समः सहजकार्येषु भ्रान्तो वल्लभसंगमे ।।५२८।। 533
प्रथमेऽथ बुधैरुक्तः कम्पितः सुरतेऽनिल. ।
मूर्च्छिते तु विलीनोऽथ मरुदान्दोलितो भवेत् ।।५२९।। 534
पर्वतारोहणेऽथ स्यात् स्तम्भितः शस्त्रमोक्षणे ।
आघ्राणे कुसुमादीनामुच्छ्वासः परिकीर्तितः ।।५३०।। 535
पश्चात्तापादिषु प्रोक्तो नि.श्वासो नृत्तपण्डितैः ।
वेदनादौ सूत्कृतं स्याच्छीतदुःखे तु सीत्कृतम् ।।५३१।। 536
नखक्षते कामिनीना निर्दयाधरपीडने ।

नृत्तविद्या-विशारदो का कहना है कि **सम** वायु का विनियोग स्वाभाविक कार्यो मे होता है । इसी प्रकार अभिनय मे **भ्रान्त** वायु का प्रिय-समागम मे, **कम्पित** वायु का प्रथम रति-प्रसग मे, **विलीन** वायु का मूर्च्छा मे, **आन्दोलित** वायु का पर्वत पर चढने मे, **स्तम्भित** वायु का शस्त्र-सचालन मे, **उच्छ्वास** वायु का पुष्प आदि सूघने मे, **नि श्वास** वायु का पश्चाताप आदि मे, **सूत्कृत** वायु का वेदना मे, और **सीत्कृत** वायु का शीत, पीडा, नखक्षत तथा कामिनियो के अधरो का कसकर दन्तक्षत करने मे विनियोग होता है ।

एवं लोकाद् बुधैरूह्या नियोगा इतरेऽपि च ।।५३२।। 537
नासानिलप्रसङ्गेन मुखवातोऽपि लक्षितः ।।५३३।।

इसी प्रकार विज्ञ अभिनेताओ को चाहिए कि लोक-परम्परा के द्वारा वे अन्य वायु-भेदो तथा उनके विनियोगो को जान ले । यहाँ नासा-वायु मे मुख-वायु को भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।

दस प्रकार के अधरो का अभिनय

अधर के भेद

विवर्त्तितो विसृष्टश्च कम्पितो विनिगूहितः । 538
सन्दष्टकः समुद्गाख्योऽधरः षोढेति दर्शितः ।।५३४।।

अधरो (नीचे के ओठ) के छह भेद होते हे, जिनके नाम है १ **विवर्त्तित**, २ **विसृष्ट**, ३ **कम्पित** ४ **विनिगूहित**, ५ **सन्दष्टक** और ६ **समुद्गक** ।

विकासिरेचितोद्वृत्तायतानन्यान् परे विदुः । 539

दूसरे आचार्यो ने अधरो के चार भेद और बताये है १ **विकासी**, २ **रेचित**, ३ **उद्वृत्त** और ४ **आयत** ।

१. विवर्त्तित और उसका विनियोग

तिर्तक्संकुचितो यः स्याद्धरः स विवर्तितः । 540
असूयावज्ञयोर्हास्यवेदनादिषु कीर्तितः ॥५३५॥

जो अधर (घृणा से) तिरछा होकर सिकुड जाय वह **विवर्त्तित** कहलाता है। असूया, अवज्ञा (अनादर), हास्य ओर वेदना आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२ विसृष्ट और उसका विनियोग

विनिष्क्रान्तो विसृष्टः स्याद् द्रव्येणालक्तकादिना ।
रञ्जने सविलासेऽपि बिब्बोकेऽपि च सुभ्रुवाम् ॥५३६॥ 541

जो अधर आगे निकला हो वह **विसृष्ट** कहलाता है। सुन्दरियो द्वारा विलासपूर्वक महावर आदि से अधरो को रगने और रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ कम्पित और उसका विनियोग

अन्वर्थः कम्पितः शीतरुड्भीपीडाजपादिषु ॥५३७॥

काँपता हुआ अधर **कम्पित** कहलाता है। शीत, रोग, पीडा, और जप आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४ विनिगूहित और उसका विनियोग

वदनान्तःप्रवेशेनायासे स्याद् विनिगूहितः । 542
स ईर्ष्यारोषयोः स्त्रीणां हठाच्चुम्बति च प्रिये ॥५३८॥

जिस अधर को मुख के भीतर छिपा लेने से कष्ट (आयास) हुआ हो (अर्थात् जिस अधर को आयासपूर्वक मुख के भीतर छिपा लिया जाय), वह **विनिगूहित** कहलाता है। स्त्रियो की ईर्ष्या तथा कोप और उनका वलात् चुम्बन लेते हुए प्रिय के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ सन्दष्टक और उसका विनियोग

योऽधरो दशनैर्दष्टः क्रोधे सन्दष्टकस्तु सः ॥५३९॥ 543

जिस अधर को दाँतो से काटा (या चबाया) जाय, वह **सन्दष्टक** कहलाता है। क्रोध के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है ।

६. समुद्गक और उसका विनियोग

यो दधात्युन्नतावोष्ठसम्पुटौ स समुद्गकः ।
चुम्बनेष्वनुकम्पायां फूत्कारेऽप्यभिनन्दने ॥५४०॥ 544

जिसके दोनो ओष्ठपुट उन्नन हो (अर्थात् जो ओष्ठ अपनी स्वाभाविक स्थिति मे हो) वह अधर **समुद्गक** कहलाता हे। चुम्बन आदि कृपा, फूकने ओर अभिनन्दन करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

७ उद्वृत्त और उसका विनियोग

उद्वृत्तो वदनोत्क्षेपात् सोऽवज्ञापरिहासयोः ।।५४१।।

जिस अधर को मुँह की ओर उठाया गया हो, वह **उद्वृत्त** कहलाता हे। अनादर आर परिहास के अभिनय मे मे उसका विनियोग होता हे।

८ विकासी और उसका विनियोग

किञ्चिल्लक्ष्योर्ध्वदन्तो यः स विकासी स्मिते मतः ।।५४२।। 545

जिस अधर के ऊपर दाँत कुछ दिखायी पडे, वह **विकासी** कहलाता हे। ईषत् हास्य (मुसकुराहट) के अभिनय म उसका विनियोग होता है।

९ रेचित और उसका विनियोग

रेचितोन्वर्थलक्ष्मा स्याद् विलासे स नियुज्यते ।।५४३।।

साफ किया गया अधर **रेचित** कहलाता है। विलास के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१० आयत और उसका विनियोग

ततः सहोत्तरोष्ठेनायतः स्यात् सोऽद्भुते रसे ।।५४४।। 546

ऊपर के ओठ के साथ फैला हुआ अधर **आयत** कहलाता हे। अद्भुत रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

छह प्रकार का जिह्वा अभिनय

जिह्वा के भेद

ऋज्वी लोला लेहिनी च वक्रा सृक्कानुगोन्नता ।
षोढेति रसनां प्राहाऽशोकमल्लो नृपाग्रणीः ।।५४५।। 547

महाराज अशोकमल्ल ने जिह्वा के छह भेद बताये हैं, जिनके नाम हे १ **ऋज्वी**, २ **लोला**, ३ **लेहनी**, ४ **वक्रा**, ५ **सृक्कानुगा** और ६ **उन्नता**।

१. ऋज्वी और उसका विनियोग

ऋज्वी सा व्यात्तवक्त्रे या रसना स्यात् प्रसारिता ।
एषा श्रमे श्वापदानां पिपासायामपि स्मृता ।।५४६।। 548

खोले हुए मुँह मे फैलायी गयी जिह्वा को **ऋज्वी** कहते हे। श्रम ओर हिंस्र पशुओ की प्यास के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२. लोला और उसका विनियोग

व्यात्तास्ये या चला लोला सा वेतालनिरूपणे ।।५४७।।

खोले हुए मुँह मे लपलपाती जिह्वा को **लोला** कहते हे। वेताल के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे।

३ लेहनी

या जिह्वा लेढि दन्तोष्ठं सा सद्भिर्लेहिनी मता ।।५४८।। 549

जो जिह्वा दाँत और ओष्ठ को चाटती हो, सज्जनो ने उमे **लेहनी** कहा हे।

४ वक्रा और उसका विनियोग

प्रसृतास्यान्नताग्रे या सा वक्रा नृहरौ मता ।।५४९।।

जो आगे फैली हुई जिह्वा अग्र भाग से झुकी हो, **वह वक्रा** कहलाती हे। नृसिह के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

५ सृक्कानुगा और उसका विनियोग

या जिह्वा लीढसृक्का सा प्रोक्ता सृक्कानुगा रुषि । 550
स्वादुभक्ष्ये चैवमन्ये ज्ञेया अभिनया अपि ।।५५०।।

जो जिह्वा ओष्ठ के प्रान्त भाग को चाटती हो वह **सृक्कानुगा** कहलाती हे। क्रोध तथा स्वादिष्ट भोजन के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे। इसी प्रकार अन्य अभिनयो मे भी उसका विनियोग समझ लेना चाहिए।

६ उन्नता और उसका विनियोग

प्रसारितमुखे या वोन्नता जिह्वोन्नता मता । 551
सा वक्त्रान्त.स्थवीक्षाया जृम्भाभिनयनेऽपि च ।।५५१।।

फैलाये हुए मुँह मे जो जिह्वा ऊपर की ओर उठी हो, वह **उन्नता** कहलाती हे। मुँह के भीतर देखने तथा जम्हाई लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

आठ प्रकार के दन्तकर्म का निरुपण

दाँतो के भेद

भिद्यन्ते दशना यैस्तु तानि कर्माण्यहं ब्रुवे । 552
समं छिन्नं खण्डनं च चुक्कितं कुट्टनं तथा ।।५५२।।

दष्टनिष्कर्षणे तद्वद् ग्रहण चेति सञ्जगु. । 453
अष्टौ दशनकर्माणि लक्ष्मलक्ष्यविशारदा· ।

जिनमे दाँतो के भेद अवगत होते है उन कार्या का मै यहाँ निरूपण कर रहा हूँ। लक्षण आर लक्ष्य के ज्ञाताओ ने दन्तकर्म के आठ भेद बताये हे। उनके नाम ह **१ सम, २ छिन्न, ३ खण्डन, ४ चुक्कित, ५ कुट्टन, ६ दष्ट, ७ निष्कर्षण** ओर **८ ग्रहण** ।

१ सम और उसका विनियोग

सममुक्त मनाक् श्लेषस्तत् स्यात् सहजकर्मणि ॥५५३॥ 554

जिन दाँतो को किञ्चित् मिला लिया जाय उन्हे **समकर्म** कहत ह। मामान्यत मभी प्रकार के अभिनयो मे उसका विनियोग होता हे ।

२ छिन्न और उसका विनियोग

छिन्नं तु दृढसंश्लेषो रोदने व्याधिशीतयोः ।
वीटिकाछेदने भीतौ व्यायामादिष्वपि स्मृतम् ॥५५४॥ 555

दाँतो को दृढता से मिलाना **छिन्न कर्म** कहलाता ह। रुदन, व्याधि, शीत, कपडे की गाँठ काटने, भय ओर व्यायाम आदि के अभिनय मे उसका विनियाग होता ह ।

३ खण्डन और उसका विनियोग

मुहुर्दशनसंश्लेषविश्लेषः खण्डनं मतम् ।
संलापेऽध्ययने तत् स्याज्जपभक्षणयोरपि ॥५५५॥ 556

दाँतो को वार-वार मिलाना ओर अलग करना **खण्डन कर्म** कहलाता है। वार्तालाप, अध्ययन जप ओर भक्षण आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४ चुक्कित और उसका विनियोग

दूरे स्थितिर्दन्तपङ्क्त्योः चुक्कितं तच्च जृम्भणे ॥५५६॥

दोनो दन्त-पक्तियो को दूरी मे रखना **चुक्कित कर्म** कहलाता हे। जम्हाई लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ कुट्टन और उसका विनियोग

कुट्टनं दन्तसघर्षः शीते भीरुग्जरास्विदम् ॥५५७॥ 557

दाँतो को रगडना या किटकिटाना **कुट्टन कर्म** कहलाता ह। ठडक भय, रोग और बुढापे के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६. दष्ट और उसका विनियोग

अधरे दशनैर्दशो दष्टं क्रोधे निरूपितम् ।।५५८।।

दाँतो से अधर (नीचे का ओठ) को काटना **दष्ट कर्म** कहलाता है। क्रोध के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

७ निष्कर्षण और उसका विनियोग

निष्कर्षणं स्यान्निष्कासो मतं मर्कटरोदने ।।५५९।। 558

दाँतो को बाहर निकालना **निष्कर्षण कर्म** कहलाता है। बन्दर के चिचियाने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

८ ग्रहण और उसका विनियोग

तृणादेर्धारणं दन्तैर्ग्रहणं परिकीर्तितम् ।
लेहनं जिह्वया लेहस्तल्लौल्याभिनये मतम् । 559
इत्याह ग्रहणस्थाने भरतो मुनिसत्तमः ।।५६०।।

दान्तो से तृण आदि पकडना **ग्रहण कर्म** कहलाता है। मुनिश्रेष्ठ भरत ने ग्रहण कर्म के स्थान पर **लेहन कर्म** वताया है और जिह्वा से चाटने को **लेहन कर्म** कहा है। चचलता या लोभ के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

छह प्रकार के कपोलो का अभिनय

कपोलो के भेद

समौ क्षामौ कम्पितौ च फुल्लाख्यौ कुञ्चितावपि । 560
पूर्णौ कपोलौ षोढेति तल्लक्ष्माद्यधुना ब्रुवे ।

दोनो कपोलो के छह भेदो के नाम है **१ सम, २ क्षाम, ३ कम्पित, ४ फुल्ल, ५ कुञ्चित** और **६ पूर्ण**। अब उनके लक्षणो का निरूपण किया जाता है ।

समादि और उनका विनियोग

अन्वर्थलक्षणाः पञ्च ज्ञेयास्तत्र समादयः ।।५६१।। 561

सम आदि पाँच भेदो के लक्षण (अपने-अपने) अर्थ के अनुरूप समझने चाहिएँ। (अर्थात जो कपोल स्वाभाविक सम स्थिति मे हो उन्हे **सम**, जो क्षीण या पिचके हुए हो वे **क्षाम**, जो कम्पनयुक्त हो वे **कम्पित**, जो प्रफुल्लित हो उन्हे **फुल्ल**, और जो सिकुडे हुए हो उन्हे **कुञ्चित** कहते है) ।

पूर्ण

यावुन्नतौ कपोलौ तौ पूर्णौ धीरैरुदीरितौ ।।५६२।।

जो कपोल उन्नत हो, उन्हे धीर पुरुषो ने **पूर्ण** कहा है ।

समौ सहजभावेषु क्षामौ दु.खे निरूपितौ । 562
कम्पितौ रोमहर्षेषु फुल्लौ प्रीतौ बुधैर्मतौ ।।५६३।।
कुञ्चितौ साध्वसे स्पर्शे शीते रोमाञ्चितेऽपि च । 563
पूर्णाविशोकमल्लेन प्रोक्तावुत्साहगर्वयोः ।।५६४।।

विद्वानो का कहना है कि स्वाभाविक भावो के अभिनय मे **सम** कपोलो का, दु ख के अभिनय मे **क्षाम** कपोलो का, रोमाच के अभिनय मे **कम्पित** कपोलो का, प्रीति के अभिनय मे **फुल्ल** कपोलो का और भय, स्पर्श, शीत तथा रोमाच के अभिनय मे **कुञ्चित** कपोलो का विनियोग होता है। अशोकमल्ल का कहना है कि उत्साह तथा गर्व के अभिनय मे **पूर्ण** कपोलो का प्रदर्शन करना चाहिए ।

आठ प्रकार के चिबुक का अभिनय

चिबुक (ठोढी) के भेद

चिबुकं लक्षितप्रायं यद्यप्योष्ठादिकर्मणा । 564
तथाप्यहं सुबोधाय तल्लक्ष्म व्याहरेऽधुना ।।५६५।।

यद्यपि ओष्ठ आदि के लक्षण-विनियोग से चिबुक के अभिनय का भी बोध हो जाता है, फिर भी (उनकी) सहज जानकारी (स्पष्टीकरण) के लिए यहाँ (पृथक् रूप से) उनका निरूपण किया जा रहा है।

व्यादीर्णं चलितं लोलं श्वसितं चलसंहतम् । 565
संहतं स्फुरितं वक्रं चैवं चिबुकमष्टधा ।।

चिबुक के आठ भेदो के नाम इस प्रकार है १ **व्यादीर्ण**, २ **चलित**, ३ **लोल**, ४ **श्वसित**, ५ **चलसहत**, ६ **सहत**, ७ **स्फुरित** और ८ **वक्र** ।

१. व्यादीर्ण और उसका विनियोग

चिबुकं दूरनिष्क्रान्तं व्यादीर्णं जृम्भणादिषु ।।५६६।। 566

दूर तक बाहर निकला हुआ चिबुक **व्यादीर्ण** कहलाता है। जम्हाई लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२. चलित और उसका विनियोग

चलितं श्लेषविश्लेषे क्षोभवावस्तम्भयो रुषि ।।५६७।।

चिबुक को सयुक्त-वियुक्त करना **चलित** कहलाता है। क्षोभ, वाणी के स्तम्भन और क्रोध के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ लोलित और उसका विनियोग

तिर्यग्गतागते विभ्रल्लोलं चर्वितचर्वणे ॥५६८॥ 567

तिरछे गमनागमन को धारण करने वाला चिबुक **लोल** कहलाता है। चबाये हुए को चबाने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

४ श्वसित और उसका विनियोग

एकाङ्गुलादधःपाति श्वसितं प्रेक्षितेऽद्भुते ॥५६९॥

एक अगुल नीचे गिरने वाला चिबुक **श्वसित** कहलाता है। आश्चर्यजनक वस्तु के देखने के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है।

५. चलसहत और उसका विनियोग

चलसंहतमन्वर्थं कामिनीचुम्बने मतम् ॥५७०॥ 568

अपने अर्थ के अनुरूप (अर्थात् चचल और सयुक्त) चिबुक **चलसहत** कहलाता है। कामिनियो के चुम्बन के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है।

६ सहत और उसका विनियोग

निश्चलं मीलितास्यं यत् तन्मौने संहतं मतम् ॥५७१॥

जो चिबुक निश्चल तथा सकुचित मुख वाला हो, उसे **सहत** कहा जाता है। मौन के भावाभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है।

७ स्फुरित और उसका विनियोग

स्फुरित कम्पनादुक्तं शीते शीतज्वरेऽपि च ॥५७२॥ 569

जो चिबुक काँपता हो उसे **स्फुरित** कहते है। शीत तथा शीतज्वर के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

८ वक्र और उसका विनियोग

तिर्यग्गतं यत् तद् वक्रं ग्रहावेशादिषु स्मृतम् ॥५७३॥

जो चिबुक तिरछा चलाया जाय, वह **वक्र** कहलाता है। ग्रहो के आवेश आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

छह प्रकार का मुख का अभिनय

मुख के भेद

भुग्नमुद्वाहि विवृतं विधुत विनिवृत्तकम् । 570
व्याभुग्नं चेति षोढोक्तं मुख तल्लक्ष्म चोच्यते ।

मुख के छह भेद होते है, १ भुग्न, २ उद्वाहि, ३ विवृत, ४ विधुत, ५ विनिवृत्त आर ६ व्याभुग्न। अब उनके लक्षण बताये जाते हे।

१ भुग्न और उसका विनियोग

तद्भुग्नं यदधोवक्त्रं यतिप्रकृतिलज्जयो ।।५७४।। 571

नीचे झुका या लटका हुआ मुख **भुग्न** कहलाता है। यतियों के स्वभाव ओर लज्जा का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

२ उद्वाहि और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तमास्यमुद्वाहि लीलानादरयानयो. ।।५७५।।

ऊपर को खुले या उठे हुए मुख को **उद्वाहि** कहते है। स्त्रियों की लीला, अनादर और वाहन के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ विवृत और उसका विनियोग

विवृतं त्वोष्ठविश्लेऽपि शोके हास्ये भयादिषु ।।५७६।। 572

अलग-अलग ओठों से युक्त खुले हुए मुख को **विवृत** कहा जाता है। शोक, हास्य ओर भय आदि के भाव-प्रदर्शन मे उसका विनियोग होता है।

४ विधुत और उसका विनियोग

विधुतं तिर्यगायामि नैवमित्यादिवारणे ।।५७७।।

तिरछे फैलाये हुए मुख को **विधुत** कहते है। **'ऐसा नहीं'** इस प्रकार रोकने या मना करने के भाव मे उसका विनियोग होता है।

५ विनिवृत्त और उसका विनियोग

व्यावृत्तं विनिवृत्तं तद् रुषीर्ष्यासूययोरपि । 573
विहृतावज्ञया चैतत् कामिनीनामपि स्मृतम् ।।५७८।।

खुले हुए मुख को **विनिवृत्त** कहते है। क्रोध, ईर्ष्या, असूया, विहृत (भावविशेष) और कामिनियो की अवज्ञा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

६ व्याभुग्न और उसका विनियोग

यन्मनागायतं वक्त्रं तद् व्याभुग्नमितीरितम्। 574
औत्सुक्यचिन्तानिर्वेदगम्भीरालोकनादिषु ॥५७९॥

(दोनो पार्श्वों मे) किञ्चित् फैले हुए मुख को **व्याभुग्न** कहते है। उत्सुकता, चिन्ता, विरक्ति और गभीरतापूर्वक अवलोकन आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

चार प्रकार के मुखराग का निरूपण

मुखराग (मुख के भाव)

येनाभिव्यज्यते चित्तवृत्तिर्धीरै रसात्मिका। 575
रसाभिव्यक्तिहेतुत्वात् मुखरागः स उच्यते ॥५८०॥

जिस (भाव) के द्वारा धीर पुरुष रसात्मक चित्तवृत्ति को अभिव्यक्त करते है, वह (भाव) रसाभिव्यक्ति का हेतु होने से **मुखराग** कहलाता है।

मुखराग के भेद

स्वाभाविकः प्रसन्नश्च रक्तः श्यामो बुधैरिति। 576
मुखरागश्चतुर्धोक्तस्तल्लक्षणमथोच्यते ॥५८१॥

विद्वानो ने उसके चार भेद बताये है १ **स्वाभाविक**, २ **प्रसन्न**, ३ **रक्त** और ४ **श्याम**। अब उनके लक्षणो का निरूपण किया जाता है।

१ स्वाभाविक और उसका विनियोग

तत्र स्वाभाविकोऽन्वर्थः स्वभावाभिनये मतः। 577

स्वाभाविक रूप से किये जाने वाले मुखराग को **स्वाभाविक** कहते है। स्वाभाविक अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

२ प्रसन्न और उसका विनियोग

स्वच्छः प्रसन्नः शृङ्गारेऽद्भुते हास्येऽपि जायते ॥५८२॥

स्वच्छ (सुन्दर-निर्मल) मुखराग **प्रसन्न** कहलाता है। शृगार, अद्भुत तथा हास्य रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३. रक्त और उसका विनियोग

रक्तोऽन्वर्थोऽद्भुते वीरे रौद्रे च करुणे तथा ।।५८३।। 578

लाल मुखराग **रक्त** कहलाता है। अद्भुत, वीर, रौद्र और करुण रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे।

४. श्याम और उसका विनियोग

भयानके सबीभत्से श्यामोऽन्वर्थो निरूपितः ।।५८४।।

काला मुखराग **श्याम** कहलाता है। भयानक तथा वीभत्स रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

एवमेव विशेषज्ञैर्यथाभावं यथारसम् । 579
मुखरागो नियुक्तोऽसौ रसभावप्रकाशकः ।।५८५।।

इस प्रकार नाटचाचार्यो ने निर्देश किया है कि भाव और रस के अनुरूप, रस तथा भाव के प्रकाशक मुखराग का प्रयोग करना चाहिए ।

कृतोऽप्यभिनयस्तावच्छाखाङ्गोपाङ्गसंयुतः । 580
न भाति यावन्नोपैति मुखरागं यथारसम् ।।५८६।।

(भरत आदि नाटचाचार्यो का यह भी कहना है कि) **शाखा, अग** ओर **उपाग** के सहित किया गया अभिनय तब तक शोभा नही देता, जब तक वह रस के अनुरूप मुखराग से समन्वित नही होता ।

आङ्गिकाभिनयोऽल्पोऽपि मुखरागेण संयुतः । 581
शोभां द्विगुणितां धत्ते शशाङ्केनेव शर्वरी ।।५८७।।

थोडा भी आगिक चेष्ठाओ द्वारा किया गया अभिनय मुखराग से समन्वित होने पर उसी प्रकार द्विगुणित शोभा को धारण करता है, जेसे चन्द्रमा से युक्त होने पर रात्रि ।

रसभावसमाकीर्णदृष्टिभ्रूवदनान्वितम् । 582
प्रतिक्षणं तथा नेत्रमन्यदन्यत् प्रवर्तते ।।५८८।।
तथोचितं प्रकुर्वीत मुखरागं प्रयोगवित् । 583
यथारसं यथाभावमिति नृत्यविदां मतम् ।।५८९।।

नाटचाचार्यो का अभिमत है कि रस तथा भाव से समाकीर्ण दृष्टि और भ्रू तथा मुख से सयुक्त होकर प्रतिक्षण जैसे-जैसे नेत्रो का अन्यान्य रूप मे प्रसार हो, प्रयोगवेत्ताओ (अभिनेताओ) को चाहिए कि, उसी प्रकार रस तथा भाव के अनुरूप मुखराग का भी उचित रीति से प्रयोग करे ।

बीस प्रकार के पार्ष्णि, गुल्फ और हस्तागुलि निरूपण

पार्ष्णि (एडी) के भेद

बहिर्गता मिथोयुक्ता वियुक्ताङ्गुलिसङ्गता । 584
उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्ता पतितान्तर्गता तथा ।
पार्ष्णिरष्टविधा ज्ञेया नाम्नैव व्यक्तलक्षणा ।।५९०।। 585

एडी (पार्ष्णि) के आठ भेद होते है १ **बहिर्गता** (बाहर की ओर निकली हुई), २ **मिथोयुक्ता** (परस्पर मिली हुई), ३ **वियुक्ता** (अलग-अलग हुई), ४ **अगुलिसगता** (उँगलियो से मिली हुई), ५ **उत्क्षिप्ता** (ऊपर को उठी हुई), ६ **पतितोक्षिप्ता** (गिर कर उठी हुई), ७ **पतिता** (गिरी हुई) ओर ८ **अन्तर्गता** (भीतर की ओर गयी हुई) । इन आठो भेदो के लक्षण उनके नामो से ही स्पष्ट हे ।

गुल्फ (टखनो या घुट्टी) के भेद

मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च श्लिष्टाङ्गुष्ठौ बहिर्गतौ ।
अन्तर्यातौ चेति गुल्फौ स्थानकादिषु पञ्चधा ।।५९१।। 586

टखनों (गुल्फ) के पॉच भेद होते है १ **मिथोयुक्त** (परस्पर सटे हुए), २ **वियुक्त** (अलग हुए), ३ **श्लिष्टागुष्ठ** (सटे हुए अगूठो वाले), ४ **बहिर्गत** (बाहर किये हुए) और ५ **अन्तर्यात** (भीतर किये हुए) । बाण साधते समय शरीर की मुद्रा आदि के अभिनय मे उनका विनियोग होता है ।

कराङ्गुलि (हाथ की उँगलियो) के भेद

वियुक्ताः संहता वक्राः पतिता वलितास्तथा ।
प्रसृताश्च तथा कुञ्चन्मूलाः सप्तविधा मताः । 587
कराङ्गुल्यो बुधैरुक्ता नामतो ज्ञातलक्षणाः ।।५९२।।

विद्वानो ने हाथ की उँगलियो के सात भेद बताये है १ **वियुक्ता** (अलग हुई), २ **सहता** (मिली हुई), ३ **वक्रा** (टेढी), ४ **पतिता** (गिरी हुई), ५ **वलिता** (मुडी हुई), ६ **प्रसृता** (फैली हुई) ओर ७ **कुञ्चन्मूला** (सिकुडे हुए मूलभाग वाली) । इनके लक्षण उनके नामो से ही स्पष्ट हे ।

पॉच प्रकार की चरणागुलि निरूपण

चरणागुलि (पैरो की उँगलियो के) भेद

प्रसारिता अधःक्षिप्ता उत्क्षिप्ता कुञ्चितास्तथा । 588
संलग्नाश्चेति पदयोरङ्गुल्यः पञ्चधा क्रमात् ।।५९३।।

पैरो की उँगलियो के पाँच भेद होते है। १ प्रसारिता, २ अध क्षिप्ता ३ उत्क्षिप्ता, ४ कुञ्चिता और ५ सलग्ना ।

१ प्रसारिता और उसका विनियोग

अड्गुल्यः सरला.स्तब्धा यास्ता उक्ता प्रसारिताः । 589
नियुज्यन्ते बुधैरेताः स्वापे स्तम्भेऽङ्गमोटने ।।५६४।।

जो उँगलियाँ सीधी (स्वाभाविक स्थिति मे) तथा स्थिर हो वे **प्रसारित** कहलाती है। विद्वानो ने निद्रा, स्तम्भन और अगो को फोडने या चटकाने के अभिनय मे उनका विनियोग बताया है।

२ अध क्षिप्ता और उसका विनियोग

अध. क्षिप्ता मुहुः पाताद् बिब्बोकादिषु ता मताः ।।५६५।। 590

जिन उँगलियो को बार-बार गिराया जाय, उन्हे **अध क्षिप्ता** कहते है। रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा (बिब्बोक) आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

३ उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग

उच्चैर्या मुहुरुत्क्षिप्ता नवोढायास्त्रपाभरैः ।।५६६।।

जो उँगलियाँ बार-बार ऊपर की ओर चलायी या फेकी जाँय, उन्हे **उत्क्षिप्ता** कहते है। नव विवाहिता की लज्जा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

४ कुञ्चिता और उसका विनियोग

अन्वर्थाः कुञ्चितास्त्रासमूर्छाशीतग्रहार्दिते ।।५६७।। 591

सिकुडी हुई उँगलियाँ **कुञ्चिता** कहलाती है। त्रास, मूर्च्छा, ठडक और ग्रहपीडा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

५ सलग्ना और उसका विनियोग

मिथःश्लिष्टास्तु साङ्गुष्ठाः संलग्नाः कर्षणे मताः ।।५६८।।

अगुष्ठ सहित परस्पर सटी हुई उँगलियाँ **सलग्ना** कहलाती है। खीचने के अभिनय मे उनका विनियोग होता है।

अंगुष्ठ के लक्षण-विनियोग

अङ्गुष्ठस्यापि भेदाः स्युरेत एवोक्तलक्षणाः । 592

उक्त उँगलि-भेदो के ही अनुरूप अगुष्ठ के भी लक्षण-विनियोग होते है ।

छह प्रकार के पादतल का निरूपण

तल (पादतल) के भेद

कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनं पतिताग्रमधोगतम् ।
उद्वृत्ताग्रं भूमिलग्नं षोढान्वर्थ तलं मतम् ॥५९३॥ 593

अर्थ के अनुरूप पादतल के छह भेद होते है १ **कुञ्चिन्मध्य** (सिकुडे हुए मध्य भाग वाला), २ **तिरश्चीन** (तिरछा), ३ **पतिताग्र** (गिरे हुए अग्रभाग वाला), ४ **अधोगत** (नीचे की ओर गया हुआ), ५ **उद्वृत्ताग्र** (उठे हुए अग्रभाग वाला) और ६ **भूमिलग्न** (भूमि से सटा हुआ) ।

उपाग निरूपण समाप्त



हस्तप्रचार प्रकरण / पाँच

पन्द्रह हस्तप्रचार का निरूपण

हस्तप्रचार (सचालन) के भेद

उत्तानोऽधोमुखः पार्श्वगत एवं त्रिधोदितः ।
करप्रचारोऽशोकेनापरे तं पञ्चधा जगुः ॥६००॥ 594
अग्रगोऽधस्तलश्चेति द्वौ त्रयः प्रथमोदिताः ।
प्राहोत्तानोऽग्रगं भट्टोऽधोमुखोऽधस्तलं यतः ॥६०१॥ 595
अन्तर्भूतं ततस्त्रित्वं सङ्गतं प्रथमे मते ।
ऊत्तानोऽधस्तलः पार्श्वमुखोऽप्यग्रतलस्तथा ॥६०२॥ 596
स्वसम्मुखतलः पार्श्वतलः पार्श्वगतोऽग्रगः ।
ऊर्ध्वगोऽधोगतश्चाथ सम्मुखः सम्मुखागतः ॥६०३॥ 597
ऊर्ध्वमुखस्तथा चाधोवदनोऽथ पराङ्मुखः ।
एवं पञ्चदश प्राहुः प्रचारान् केऽपि सूरयः ॥६०४॥ 598

अशोकमल्ल ने **हस्तप्रचार** (हस्त-सचालन) के तीन भेद बताये है **१ उत्तान २ अघोमुख** और **३ पार्श्वगत।** दूसरे विद्वानो ने उसके पाँच भेदो का उल्लेख किया है **१ अग्रग, २ अधस्तल, ३, उत्तान, ४ अघोमुख** और **५ पार्श्वगत।** आचार्य भट्ट का कहना है कि **अग्रग** और **उत्तान** तथा **अधोमुख** और **अधस्तल** अभिन्न है। इसलिए प्रथम मत मे ही दूसरे मत का अन्तर्भाव हो जाता है। कुछ विद्वानो ने उसके पन्द्रह भेद बताये है उनके नाम है **१ उत्तान, २ अधस्तल, ३ पार्श्वमुख, ४ अग्रतल, ५ स्वसम्मुखतल, ६ पार्श्वतल, ७ पार्श्वगत, ८ अग्रग, ९ ऊर्ध्वग, १० अघोगत, ११ सम्मुख, १२ सम्मुखागत, १३ ऊर्ध्वमुख, १४. अघोमुख** और **१५ पराङ्मुख।**

तेरह हस्तक्षेत्र का निरूपण

हस्तक्षेत्र (हाथो के स्थानो) के भेद

शिरो ललाटं श्रवणं स्कन्धोरः कटिशीर्षकम् ।
नाभी पार्श्वद्वयं पश्चादूर्ध्वं चाधः पुरस्ततः । 599
ऊरुद्वयं च हस्तानां क्षेत्राणीति त्रयोदश ।।६०५।।

हाथो के तेरह स्थान (क्षेत्र) बताये गये है, जिनके नाम है १ शिर, २ ललाट, ३ कान, ४ कन्धा, ५ वक्षस्थल, ६ कमर, ७ नाभि, ८ दोनो पार्श्व, ९ पीछे, १० ऊपर, ११ नीचे, १२ सामने और १३ दोनो जंघाएँ ।

बीस करकर्मो का निरूपण

करकर्म (हाथो के कार्यो) के भेद

मोक्षणं रक्षणं क्षेपो निग्रहश्च परिग्रहः । 600
धूननं स्फोटनं श्लेषो विश्लेषो मोटनं तथा ।।६०६।।
तोलनं ताडनं छेदोत्कृष्टचाकृष्टिविकृष्टयः । 601
विसर्जनं तथाह्वानं तर्जनं भेद इत्यपि ।
संज्ञया ज्ञातलक्ष्माणि करकर्माणि विंशतिः ।।६०७।। 602

संकेत या इशारे से निष्पादित होने वाले हस्त-कार्यो के बीस भेदो का अर्थ-ग्रहण उनके लक्षणो से ही कर लेना चाहिए । उनके नाम हे १ **मोक्षण** (छुडाना), २ **रक्षण** (रक्षा करना), ३ **क्षेप** (फेकना), ४ **निग्रह** (रोकना), ५ **परिग्रह** (लेना), ६ **धूनन** (कपाना), ७ **स्फोटन** (फोडना), ८ **श्लेष** (मिलाना), ९ **विश्लेष** (अलग करना), १० **मोटन** (चूर्ण करना), ११ **तोलन** (तौलना), १२ **ताडन** (पीटना), १३ **छेद** (काटना), १४ **उत्कृष्टि** (ऊपर उठाना), १५ **आकृष्टि** (खीचना), १६ **विकृष्टि** (हटाना), १७ **विसर्जन** (समाप्ति या विदा करना), १८. **आह्वान** (बुलाना), १९ **तर्जन** (मारना) और २० **भेद** (फोडना) ।

चार हस्तकरणो का निरूपण

हस्तकरण (हस्त चेष्टाएँ)

यथालक्ष्मविनिष्पन्नहस्तस्याभिनयाय या ।
कृतिः क्रियाविशेषस्य तद्धस्तकरणं भवेत् ।।६०८।। 603

शास्त्रीय विधि से निष्पन्न हस्ताभिनय के लिए जो हस्तमुद्रा विशेष रूप से प्रयुक्त होती है उसे **हस्तकरण** कहा जाता है।

हस्तकरण के भेद

आवेष्टिताभिधं पूर्वमुद्वेष्टितमत. परम् ।
व्यावर्तितं तथा ज्ञेयं परिवर्तितमित्यपि ।।६०६।। 604
चतुर्धैवं तदाख्यात तल्लक्ष्म व्याहरे क्रमात् ।

हस्तकरण के चार भेद होते हे १ आवेष्टित, २ उद्वेष्टित ३ व्यावर्तित और ४ परिवर्तित। उनके लक्षण क्रमश निरूपित किये जा रहे है।

१ आवेष्टित

तर्जन्याद्या यदाङ्गुल्यः कुर्वन्त्यावेष्टनं क्रमात् ।।६१०।। 605
तलसम्मुखमावक्ष एति हस्तोऽपि पार्श्वत· ।
आवेष्टितं तदा प्रोक्तं करणं नृत्यकोविदैः ।।६११।। 606

जब (अँगूठे को छोडकर) शेष चारो उँगलियाँ क्रमश मोड ली जाती ह और हथेली को सम्मुख करके हाथ को भी बगल से छाती तक पहुँचा दिया जाता हे, तब नृत्यविशारदो ने उसको **आवेष्टित करण** कहा हे।

२ उद्वेष्टित

तर्जन्याद्यङ्गुलीना चेन्निर्यातं स्यात् तलाद्बहिः ।
क्रमात् पाणेश्च बक्षस्तस्तदोद्वेष्टितमीरितम् ।।६१२।। 607

जब (आवेष्टित मे हथेली की ओर झुकी हुई) उँगलियाँ उसी प्रकार क्रमश हथेली से खोलकर वाहर निकाली जाँय और हाथ को छाती से अलग किया जाय, तब उसे **उद्वेष्टित करण** कहते है।

३ व्यावर्तित

व्यावर्तन्ते कनिष्ठाद्या यत्राङ्गुल्यः क्रमाद्यदि ।
अभ्यन्तरेण तत् प्रोक्तं सद्भिर्व्यावर्तितं तदा ।।६१३।। 608

जब हाथ की उंगलियाँ कनिष्ठिका से लेकर तर्जनी तक क्रमश हथेली की ओर झुकायी जाती है, तब विद्वानो ने उसे **व्यावर्तित करण** कहा हे ।

४ परिवर्तित

कनिष्ठाद्यङ्गुलीना चेन्निष्क्रमो बाह्यत. क्रमात् ।
तदा तत् करणं धीरै· परिवर्तितमीरितम् ।।६१४।। 609

जब कनिष्ठा से लेकर तर्जनी तक की सब उंगलियाँ क्रमश बारी-बारी करके बाहर की ओर खुलती है, तब विद्वानो के मत से, उसे **परिवर्तित करण** कहते है ।

हस्त प्रचार निरूपण समाप्त



विचित्राभिनय प्रकरण/ छह

विचित्राभिनय निरूपण

भावाभिनय (१)

नाट्योपयोगिनः प्रायो विचित्राभिनया मया ।
ते लिख्यन्तेऽभिनेयार्थं व्यञ्जयन्तीव ये स्फुटम् ।।६१५।। 610

जो मानो अभिनय योग्य वस्तु के भावो को अभिव्यक्त करने मे समर्थ नाट्योपयोगी विचित्र अभिनय हैं, (नृत्य-जिज्ञासुओ के) अभिनय के लिए मै प्राय उन (सब का) यहाँ निरूपण कर रहा हूँ ।

सन्निकर्षं विना यस्य न वेत्यर्थं कथञ्चन ।
तस्योक्तो मनसो भावस्त्रिधा यत्प्रतिकोविदैः । 611
इष्टोऽनिष्टस्तथा मध्यस्तस्याभिनयनं यथा ।।६१६।।

जिसके सयोग या सामीप्य के बिना पदार्थ को किसी भी प्रकार नही समझा जा सकता है, उस मन के भाव को विद्वानो ने तीन प्रकार का बताया है १ इष्ट, २ अनिष्ट और ३ मध्य । उस त्रिधा विभक्त भाव का अभिनय जिस प्रकार किया जाता है, उसे बताया जा रहा है ।

मुखस्यातिविकाशेन शरीराल्हादनेऽपि(?नेन) च । 912
तथोल्लुकसितेनेष्टं दर्शयेन्नटाचकोविदः ।।६१७।।
अप्रदानेन नेत्रस्य संकोचादक्षिनासयोः । 613
परावृत्ताख्यशीर्षेणाप्यनिष्टं सम्प्रदर्शयेत् ।।६१८।।
जुगुप्सया न चात्यन्तं मनसा नातिहर्षिणा । 614
मध्यभावेन मध्यस्थं भावं धीमान् निरूपयेत् ।।६१६।।

नाट्यवेत्ता को चाहिए कि वह मुख को अति विकसित करके तथा शरीर को आह्लादित करके स्वच्छता (स्पष्टता) से इष्ट भाव का प्रदर्शन करे । फिर दृष्टिपात किये बिना आँख और नाक को सकुचित करके

परावृत्त शीर्ष मुद्रा से **अनिष्ट भाव** को प्रदर्शित करे। बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि वह न अत्यन्त घृणा से और न अत्यन्त प्रसन्न मन से, अपितु मध्य भाव से **मध्यस्थ भाव** को अभिव्यक्त करे।

इन्द्रियाभिनय (२)

कर्णदेशस्थतर्जन्या तथा तिर्यग्निरीक्षणात्। 615
पार्श्वानतेन शिरसा सुधीः शब्दं प्रदर्शयेत् ॥६२०॥

सुधीजनो के चाहिए कि कान के पास तर्जनी उँगली को रखकर तिरछी चितवन डालते हुए बगल मे झुके हुए शिर मे वे **शब्द** के भाव को प्रदर्शित करे।

सभ्रूक्षेपेण नेत्रेण मनागाकुञ्चितेन च। 616
तथा गण्डमुखस्पर्शैः स्पर्शो धीरैर्निरूपितः ॥६२१॥

धीर पुरुषो को चाहिए कि भ्रू-भगिमा से युक्त तथा कुछ आकुचित नेत्र से ओर कपोल तथा मुख के स्पर्श से वे **स्पर्श** के भाव को प्रदर्शित करे।

शिरस्थितौ पताकौ द्वौ कृत्वेषद्वलिताननः। 617
दृष्ट्या निर्वर्णयन्त्यापि रूपमेवं विनिर्दिशेत् ॥६२२॥

दोनो पताक हस्तो को शिर पर रखकर और मुख को किञ्चित् झुकाकर गौर से देखते हुए **रूप** के भाव का द्योतन करना चाहिए।

नयने किञ्चिदाकुञ्च्य फुल्लां कृत्वा च नासिकाम्। 618
एकोच्छ्वासेन च प्राज्ञो रसगन्धौ प्रदर्शयेत् ॥६२३॥

नेत्रो को कुछ आकुचित करके, नासिका को फुलाकर और एक ही साँस खीचकर पण्डित जन को **रस** और **गन्ध** के भाव का प्रदर्शन करना चाहिए।

नृत्याय देवरङ्गायाः (?) शब्दाद्यभिनयो मया। 619
निरूपितस्तथा ज्ञेया इन्द्रियाभिनया बुधैः ॥६२४॥

नर्तकी (?) के अभिनय के लिए मैने **शब्द** आदि (इन्द्रिय विषयो) के अभिनय का निरूपण किया हे। किन्तु विद्वानो को चाहिए कि इसी प्रकार वे कर्ण, त्वक्, अक्षि, जिह्वा ओर घ्राण आदि इन्द्रियो का अभिनय भी जान ले।

विचित्राभिनय (३)

विधायोत्तानितौ हस्तौ पताकौ स्वस्तिकच्युतौ । 620
शिरसोद्वाहिताख्येन तथोर्ध्वप्रेक्षणेन च ।।६२५।।
प्रदोषं दिवसं रात्रिं प्रभातं गगनं घनान् । 621
जलाशयान् वनान्तांश्च नक्षत्राणि ग्रहान् दिशः ।
नानादृष्टियुतं धीरोऽभिनयेन्नाट्यनृत्ययोः ।।६२६।। 622

धीर पुरुष को नाटच तथा नृत्य के अवसर पर दोनो पताक हस्तो को उत्तान तथा स्वस्तिक मुद्रा मे च्युत करके उद्वाहित शिर से ऊपर ताकने या देखने के द्वारा प्रदोष, दिन, रात, प्रात काल, आकाश, मेघ, तालाब, वनभूमि, नक्षत्र, ग्रह और दिशाओ का अनेक दृष्टियो से समन्वित होकर अभिनय करना चाहिए ।

[एता]भ्यामेव हस्ताभ्यां तेनैव शिरसा तथा ।
अधस्तात्प्रेक्षणेनापि भूमिस्थं सम्प्रदर्शयेत् ।।६२७।। 623

हाथ की इन्ही मुद्राओ और शिर की इसी मुद्रा से नीचे ताकते हुए भूमि पर रखी हुई वस्तु या (बने हुए स्थानो) का प्रदर्शन करना चाहिए ।

दृष्टया मुकुल [या] किञ्चिन्नतेन शिरसापि च ।
हृदि सन्देशहस्तेन सव्येनैकमना नटः । 624
वितर्कितं तथा ध्यानं निर्दिशेन्नाट्यनृत्ययो. ।।६२८।।

नाटच और नृत्य के समय नट को चाहिए कि वह सावधान होकर मुकला दृष्टि से और किञ्चित् झुके हुए शिर तथा हृदय पर रखे हुए दाहिने सन्दश हस्त से सन्देह तथा ध्यान का अभिनय करे ।

विधायोद्वाहितं शीर्षं तथोर्ध्वं हंसपक्षकम् । 625
दीर्घं मानं तथोच्चत्वं प्रासादस्य प्रदर्शयेत् ।।६२९।।

उद्वाहित शिर और ऊपर हस्तपक्ष हस्त बनाकर महल की लम्बाई तथा ऊँचाई का प्रदर्शन करना चाहिए ।

अरालेन तथा वामभागोद्वाहितशीर्षतः । 626
नतध्वस्तनिमित्तानि श्रान्तं वाक्यं च दर्शयेत् ।।६३०।।

अराल हस्त तथा वाम भाग मे उद्वाहित शिर से झुके हुए, नष्ट हुए, निमित्त, श्रान्त और वाक्य का अभिनय करना चाहिए ।

गन्धघ्राणैः प्रसूनानामृतुजाना तथा बुधः ।
संस्पर्शाद् रूक्षवातस्य शिशिरं सुनिरूपयेत् ॥६३७॥ 634

विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह ऋतुजनित पुष्पों की गन्ध को सूँघ कर तथा रुक्ष वायु के स्पर्श से शिशिर ऋतु का अभिनय करे।

सहर्षोत्पादकारम्भैरुपभोगैर्विचित्रितैः ।
अभिनेयो वसन्तस्तु नानापुष्पप्रदर्शनात् ॥६३८॥ 635

हर्षोत्पादक कार्यों सहित विचित्र प्रकार के उपभोगों और नाना प्रकार के पुष्पों के प्रदर्शन से वसन्त ऋतु का अभिनय करना चाहिए।

सुवीजनैर्भूमितापैस्तथा स्वेदापमार्जनात् ।
संस्पर्शाच्चोष्णवातस्य धीरो ग्रीष्मं विनिर्दिशेत् ॥६३९॥ 636

अच्छी तरह पखा झेल कर, भूमि का ताप दिखा कर, पसीना पोंछ कर ओर गर्म वायु का स्पर्श करके धीर पुरुष ग्रीष्म ऋतु का भाव प्रदर्शित करे।

हस्तौ सिरस्तथा दृष्टिं शरदीव विनिर्दिशेत् ।
शिशिरर्तौ वसन्ते च ग्रीष्मेऽपि निपुणौ नटः ॥६४०॥ 637

निपुण अभिनेता को, शरद् ऋतु की तरह, दोनो हाथों, शिर ओर दृष्टि को शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं मे भी प्रयुक्त करना चाहिए।

शिखिनां रम्यवाणीभिरिन्द्रगोपैः सशाद्वलैः ।
अधोमुखपताकाभ्यां शिरसोद्वाहितेन च । 638
तथोर्ध्वप्रेक्षणादेवं प्रावृषं सन्निरूपयेत् ॥६४१॥

मयूरो की रमणीय वाणी, हरितभूमि सहित वीरवहूटी (इन्द्रगोप) और अधोमुख दोनो पताक हस्तो, उद्वाहित शिर तथा ऊपर निरीक्षण द्वारा वर्षा ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए।

चिह्नं यद्यच्च रूपं च कर्म वा वेष एव च । 639
निर्दिशेत् तमृतुं तेन यथेष्टानिष्टदर्शनात् ॥६४२॥

इष्ट और अनिष्ट का भाव (जहाँ जो उचित हो) दिखाते हुए जिस ऋतु के लिए जो चिह्न या लक्षण, जो रूप, जो कार्य या जो वेष उचित हो, उसी से उस ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए।

ऋतूनिमानर्थवशात् प्रयुञ्जीत यथारसम् । 640
सुखितः सुखितेष्वेव दुःखितो दुःखितेषु च ।।६४३।।

इन ऋतुओ को (उनके) प्रयोजनवश रस के अनुरूप प्रकट करना चाहिए । सुखी होकर सुखित वस्तुओ का और दुखी होकर दु खित वस्तुओ का भाव अभिव्यक्त करना चाहिए ।

आविष्टो येन भावेन यः सुखेनापरेण वा । 641
स तज्जनितसंस्कारस्तन्मयं वीक्षतेऽखिलम् ।।६४४।।

जो व्यक्ति जिस भाव से, चाहे दु ख से या सुख से आविष्ट रहता हे, उसमे उसका सस्कार निहित रहता है । अत वह सब वस्तुओ को उसी रूप मे देखता हे ।

प्रह्लादनेन गात्रस्य स्पर्शस्य ग्रहणात् तथा । 642
सुखं गन्धं रस वायु चन्द्रं ज्योत्स्नां निरूपयेत् ।।६४५।।

शरीर के आह्लादन और स्पर्श-ग्रहण से सुख, गन्ध, रस, वायु, चन्द्रमा तथा चाँदनी का अभिनय करना चाहिए ।

वासोवगुण्ठनाद् भानुं धूलिं धूमधनञ्जयौ । 643
उष्णं च भूमिसन्तापं दिशेच्छायाभिवाञ्छया ।।६४६।।

वस्त्र का घूँघट काढकर या ओट लगाकर सूर्य, धूल, धूम, अग्नि, गर्मी, भूमि-ताप तथा छाया का प्रदर्शन करना चाहिए ।

दृष्ट्योर्ध्वयाकेकरया मध्याह्ने दर्शयेद् रविम् ।।६४७।। 644

आकेकरा दृष्टि को ऊपर की ओर करके दोपहर-सूर्य का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

सौम्यानि यानि वस्तूनि सुखभावोद्भवान्यपि ।
निर्दिशेत् तानि रोमाञ्चैर्गात्रस्पर्शैश्च नाट्यवित् ।।६४८।। 645

जो वस्तुएँ सुखपूर्ण तथा अच्छे भावो से उत्पन्न हो उन्हे नाटचवेत्ता को रोमाच तथा शरीर-स्पर्श से प्रकट करना चाहिए ।

उद्वेगैरास्यसकोचैरसंस्पर्शैश्च नाट्यवित् ।
दर्शयेत् तीक्ष्णरूपाणि वस्त्वयोग्यकृतानि च ।।६४९।। 646

नाटचवेता को अयोग्य व्यक्ति द्वारा निर्मित तीक्ष्ण रूपवाली वस्तुओ का अभिनय विना स्पर्श किये, उद्वेग के साथ तथा मुख सिकोड कर करना चाहिए ।

ससौष्ठवैः साभिमानैर्गात्रैराटोपसयुतै. ।
गम्भीरार्थानुदात्तार्थान् नाट्यज्ञ सन्निदर्शयेत् ॥६५०॥ 647

नाटचवेत्ता को सुन्दरता, गर्व तथा सौष्ठव से युक्त अगो को फैलाकर गम्भीर तथा उदात्त भावो वाली वस्तुओ का अभिनय करना चाहिए ।

ध्वजच्छत्रपताकादीन् दर्शयेद् दण्डधारणैः ।
प्रहारान् विविधाश्चैव नानाशस्त्रग्रहैर्दिशेत् ॥६५१॥ 648

दण्ड-धारण द्वारा ध्वज, छत्र तथा पताका का और अनेक शस्त्रो के ग्रहण द्वारा विभिन्न प्रकार के आयुधो का प्रदर्शन करना चाहिए ।

विस्फुलिङ्गान् घनरवान् विद्युदुल्कार्चिषस्तथा ।
त्रस्तैरङ्गैस्तद्वदक्षिनिमेषैर्निर्दिशेद् बुध. ॥६५२॥ 649

विद्वान् व्यक्ति को शरीर कम्पाकर और उसी प्रकार आँख मीच कर आग की चिनगारियो, मेघ गर्जनो, बिजली, उल्का और लपटो का अभिनय करना चाहिए ।

उद्वेष्टितौ परावृत्तौ कृत्वा हस्तौ शिरो नतम् ।
जिह्मदृष्ट्याङ्गसंकोचादास्यप्रच्छादनेन च ॥६५३॥ 650
अलिरेणुपतङ्गाना तोयस्य च निवारणम् ।
नभस्तेजोऽनिलं चोष्णं नाट्यज्ञ सन्निरूपयेत् ॥६५४॥ 651

दोनो हाथो को उद्वेष्टित और परावृत्त मे करके, शिर झुकाकर, कुटिल दृष्टि से, अगो को सिकोड कर और मुख को ढक कर नाटचवेत्ता को भ्रमर, धूल, पतग, जल-निवारण, आकाश, तेज तथा गर्म वायु (लू) का अभिनय करना चाहिए ।

अथ पुंसां तथा स्त्रीणामखिलाभिनयं पृथक् ।
भावानुभावसंयुक्तं कथयाम्यधुना क्रमात् ॥६५५॥ 652

अब पुरुषो तथा स्त्रियो के भावो तथा अनुभावो से युक्त समस्त अभिनय को पृथक्-पृथक् रूप मे क्रमश निरूपित किया जा रहा है ।

हर्ष

आश्लेषणाच्छरीराणां सस्मितान्नयनादपि ।
तथोल्लुकसनेनापि पुमान् हर्ष विनिर्दिशेत् ॥६५६॥ 653

शरीर के आलिगन और मुस्कराहट भरे नेत्र तथा उलूक गति (उद्विकसन) से पुरुष **हर्ष** का अभिनय करें।

शीघ्रमुत्पन्नरोमाञ्चवाष्पसंरुद्धलोचना ।

भावं विनिर्दिशेत् त्वेव नर्तकी स्मितसंयुता ॥६५७॥ 654

तत्काल उत्पन्न हुए रोमाच, (हर्ष के) आँसुओ से अवरुद्ध दृष्टि ओर मुसकराहट द्वारा नर्तकी **हर्ष** के भाव को प्रकट करे।

क्रोध

निःश्वासेनाङ्गकम्पेन दशनेनाधरस्य च ।

क्रोधं निरूपयेद् धीमानुद्वृत्तारुणलोचनः ॥६५८॥ 655

उठे हुए लाल नेत्रो से, लम्बी साँस लेते हुए, शरीर को थर-थर कम्पाते हुए, दाँतो से अधरो को चबाते हुए, पुरुष **क्रोध** का अभिनय करे।

चिबुकोष्ठप्रकम्पेन बाष्पपूर्णेक्षणेन च ।

शीर्षस्य कम्पनेनापि भ्रुकुटीरचनेन च ॥६५९॥ 656

अङ्गुलिस्फोटनान्मौनात् स्रगालङ्कारवर्जनात् ।

आयतस्थानकस्था च रोषेर्ष्ये निर्दिशेत् स्त्रियाः ॥६६०॥ 657

ठोडी तथा ओठो को कम्पाते हुए, आखो को साँसू से भरकर, शिर को कम्पाते हुए, भौ सिकोडते हुए, उँगलियो को चटकाते हुए, मौन होकर, माला और आभूषण उतार कर, आयतस्थानक मुद्रा धारण कर स्त्रियाँ **क्रोध** तथा **ईर्ष्या** का अभिनय करे।

दुःख

अधिकोछ्वासनिःश्वसैरधोमुखविलोकनैः ।

विहायःप्रेक्षणाच्चापि नृणां दुःखं निदर्शयेत् ॥६६१॥ 658

अत्यधिक नि श्वास और उच्छ्वास से युक्त मुख नीचा करके देखने और आकाश की ओर ताकने से पुरुष **दुःख** का भाव प्रकट करे।

शिरोभिघातात् सध्वानै रौदनैरभिपाततः ।

भूमिघातादपि स्त्रीणां दुःखं धीमान् नियोजयेत् ॥६६२॥ 659

सिर पीटने, चिल्लाकर रोने, धरती पर गिरने और भूमि पर चोट करने से धीमान् पुरुष स्त्रियो के **दुःख** को प्रकट करे।

भय

उद्वेगसम्भ्रमैः शस्त्रसम्पातेनापि साध्वसम् ।
पुंसामभिनयेद् धीमान् धैर्याद्वेगादिभिस्तथा ॥६६३॥ 660

उद्वेगजन्य हडबडी, शस्त्रपात, धैर्य और उद्वेग आदि से बुद्धिमान् पुरुष को पुरुषो का **भय** प्रदर्शित करना चाहिए ।

लोलतारकनेत्राभ्यामङ्गस्फुरितकम्पितैः ।
पार्श्वावलोकनैश्चित्रशब्दादाक्रन्दितेन च । 661
आलिङ्गनेन पुंसोऽपि स्त्रिया भीति प्रदर्शयेत् ॥६६४॥

आँखो के तारे चलाने, अग-स्फुरण, शरीर को कम्पाने, बगल की ओर देखने, हाय-हाय करके चिल्लाने और आलिगन के द्वारा पुरुषो को स्त्रियो का **भय** प्रदर्शित करना चाहिए ।

पुंस्कृतः स्त्रीकृतो भावो द्विधेत्यभिनय प्रति । 662
तत्राद्यो धैर्यमाधुर्यसपन्नौ ललितोऽपरः ॥६६५॥

अभिनय-योजना मे पुरष तथा स्त्री द्वारा प्रकट किया जाने वाला भाव दो प्रकार का होता है। पुरुषो के अभिनय मे धैर्य तथा माधुर्य से सयुक्त भावो और स्त्रियो के अभिनय मे लालित्यपूर्ण भावो का प्रदर्शन करना चाहिए।

शब्द

कम्पनेन शरीरस्य घूर्णनान्नेत्रयोरपि । 663
आकाशवीक्षणात् पादस्खलितैःकौमलैस्तथा ।
विलोमवचनैर्धीमान् नादं स्त्रीणां विनिर्दिशेत् ॥६६६॥ 664

शरीर के कम्पन, नेत्रो के घूमने, आकाश की ओर ताकने, पैरो के लडखडाने और कोमल तथा विपरीत वचनो द्वारा धीमान् पुरुष स्त्रियो के **शब्द** का अभिनय करे ।

उक्ता येऽभिनयास्तेऽमी प्रायः स्त्रीनीचसंश्रयाः ॥६६७॥

ऊपर जो अभिनय बताये गये है, वे प्राय स्त्रियो और निकृष्ट पुरुषो के लिए है ।

पक्षियो का अभिनय (५)

सारसान् केकिहंसौ च स्थूलानन्यांश्च पक्षिणः । 665
रेचकैरङ्गहारैश्च निर्दिशेन्नाटचकोविदः ॥६६८॥

नाट्यवेत्ता को **रेचिको** तथा **अगहारो** के द्वारा सारस, मोर, हस तथा अन्य बडे पक्षियो का अभिनय करना चाहिए।

अश्वेभोष्ट्रखरव्याघ्रसिहांश्च महिषादिकान् । 666
अङ्गैर्गतिप्रकारैश्चाभिनयेन्निपुणो नटः ॥६६६॥

निपुण अभिनेता को घोडा, हाथी, ऊँट, गधा, बाघ, सिह तथा भैसा आदि का अभिनय गति-प्रचार के अगो से करना चाहिए ।

यक्षो तथा देवताओ आदि का अभिनय (६)

ये यक्षा राक्षसा दैत्याः पिशाचाद्यास्तथापरे । 667
परोक्षास्तेऽभिनेतव्या अङ्गहारैः प्रयोक्तृभिः ॥६७०॥
प्रत्यक्षा येऽभिनेयास्ते भयोद्वेगैः सविस्मयैः ॥६७१॥ 668

अभिनेताओ को यक्षो, राक्षसो, दैत्यो, पिशाचो और परोक्ष प्राणियो या वस्तुओ को **अगहारो** द्वारा अभिनीत करना चाहिए । प्रत्यक्ष यक्ष आदियो का अभिनय भय, उद्वेग तथा आश्चर्य के भावो द्वारा करना चाहिए ।

सभावैश्चेष्टितैर्देवाः प्रणामकरणादिभिः ।
अप्रत्यक्षा विनिर्देश्याः प्रयोगनिपुणैर्नटैः ॥६७२॥ 669
प्रत्यक्षाः देवताः साक्षात्पूजोपकरणादिभिः ॥६७३॥

नाट्य-प्रयोग मे निपुण अभिनेताओ को भावपूर्ण चेष्ठाओ और प्रणाम आदि के द्वारा अप्रत्यक्ष देवताओ का अभिनय करना चाहिए । किन्तु प्रत्यक्ष देवताओ का अभिनय साक्षात् पूजन-सामग्री आदि के द्वारा करना चाहिए ।

निर्दिशेदथ वृक्षादीनचलांश्च समुच्छ्रितान् । 670
ऊर्ध्वप्रसारणाद् बाह्वोर्दर्शयेल्लोकयुक्तितः ॥६७४॥

ऊँचे वृक्षो और पर्वतो का भाव बाहुओ को ऊपर फैला कर लोक-रीति के अनुसार प्रदर्शित करना चाहिए ।

मञ्जुलैरुज्ज्वलैर्वेषैर्निर्निमेषैः सुलोचनैः । 671
मुदितेनापि मनसा दर्शयेद् दिव्ययोषितः ॥६७५॥

सुन्दर तथा उज्ज्वल वेशो, अपलक नेत्रो और प्रसन्न मन से दिव्य स्त्रियो (देवागनाओ तथा अप्सराओ) का अभिनय करना चाहिए ।

चमूं समूहमम्भोधिं विस्तीर्णं वनमेव च । 672
विक्षिप्ताभ्यां पता[का]भ्यांनिर्दिशेन्नाट्यनृत्तयोः ।।६७६।।

नाट्य तथा नृत्त के समय सेना, समूह, समुद्र तथा विस्तृत वन का भाव दोनों पताक हस्तों को फैला कर प्रदर्शित करना चाहिए ।

कामेन ग्रहपाशाभ्या ज्वरेणापि च येऽर्दिताः । 673
तेषामभिनयं कुर्याच्छिथिलाङ्गविचेष्टितैः ।।६७७।।

जो काम, ग्रह, बन्धन तथा ज्वर से पीडित हो, उनका अभिनय शिथिल अग-चेष्टाओं द्वारा करना चाहिए ।

अङ्गैर्लीनैरिवाङ्गेषु तथा वासोवगुण्ठनात् । 674
दृष्ट्याधोगतया धीरैर्निर्देश्या कुलजाङ्गना ।।६७८।।

अगो को मानो अगो मे लीन करके, वस्त्र का घूँघट काढ कर और दृष्टि को नीचे करके धीर पुरुषों को कुलीन स्त्री का अभिनय करना चाहिए ।

नानालंकृतिचिन्नाङ्गैः समदैर्बहुचेष्टितैः । 675
नि.शङ्कगमनेनापि नटो वेश्या प्रदर्शयेत् ।।६७९।।

नाना अलकारो से सज्जित अगो, मदयुक्त चेष्टाओं और नि शक गमन के द्वारा अभिनेता को वेश्या का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

खेदनिःश्वासचिन्ताभिस्तथा हृदयतापतः । 676
सम्प्रलापैस्तथालीनामात्मावस्थानिदर्शनैः ।।६८०।।

खेद, नि श्वास, चिन्ता, हृदय-ताप, प्रलाप तथा व्याकुल चित्त वालों का अभिनय तदनुसार आगिक अभिनय द्वारा करना चाहिए ।

ग्लान्यश्रुपातदैन्यैश्च सरोषवदनैरपि । 677
अङ्गैर्निर्भूषणैर्दु खै रोदनैरपि नाट्यवित् ।।६८१।।
विप्रलब्धाः खण्डिताश्च कलहान्तरिता अपि । 678
इत्थं प्रदर्शयेन्नाट्ये तथा प्रोषितभर्तृकाः ।।६८२।।

नाटचनिपुण अभिनेता को, **विप्रलब्धा** (सकेत-स्थल मे प्रिय के न मिलने से दु खी नायिका), **खण्डिता** (नायक मे अन्य स्त्री के सयोग-चिह्न देखकर कुपित हुई नायिका), **कलहान्तरिता** (पति या नायक का अपमान कर पीछे पछताने वाली नायिका) और **प्रोषितभर्तृका** (वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो) नायिकाओं का भाव (क्रमश) ग्लानि, अश्रुपात, दीनता, क्रोधयुक्त मुख, आभूषणरहित अग, दु ख और रोदन के द्वारा प्रदर्शित करना चाहिए ।

विचित्रमण्डनैर्हर्षैर्वेषैर्नानाविधैरपि । 679
तथातिशयशोभाभिर्दिशेत् स्वाधीनभर्तृकाः ।।६८३।।

स्वाधीनभर्तृका (पति को अपने वश मे रखने वाली) नायिकाओं का विचित्र प्रकार के आभूषण, नाना प्रकार के वेश तथा प्रचुर अगराग-प्रसाधनों द्वारा अभिनय करना चाहिए ।

एवं वासकसज्जापि निर्देश्या नाटचकोविदैः ।।६८४।। 680

इसी प्रकार नाटचनिपुण अभिनेताओं को **वासकसज्जा** (शृगार करके नायक की प्रतीक्षा करने वाली) नायिका का भी अभिनय करना चाहिए ।

नियुज्यन्ते बुधैरेतेऽभिनया भावसंयुताः ।।६८५।।

विद्वानो को चाहिए कि उक्त अभिनयो को वे भावसयुक्त होकर सम्पन्न करे ।

अभिनेताओ को नाट्य-निर्देश

या यस्य नियता लीला गतिश्च स्थितिरेव च । 681
तस्य रङ्गप्रविष्टस्तां नटस्तावद् विनिर्दिशेत् ।
यावन्न निर्गतो रङ्गादिति सामान्यतो विधिः ।।६८६।। 682

रगमच पर प्रवेश करने वाले अभिनेता को चाहिए कि जिस अभिनेय वस्तु की जो लीला, गति तथा स्थिति निश्चित हो, उसको तब तक प्रदर्शित करे, जब तक वह रगमच पर अवस्थित रहे, यह सामान्य विधान है ।

दक्षिणेनालपद्मेन वामेन चतुरेण च ।
परिमण्डलितेनाथ मयूरललितेन च ।।६८७।। 683
वीराख्यया तथा दृष्टचा शिरसोद्वाहितेन च ।
एवं विनिर्दिशेत् षड्जं कोविदो नाटचनृत्ययोः ।।६८८।। 684

नाट्य तथा नृत्य मे निपुण अभिनेता को चाहिए कि रगमच पर वह दक्षिण अलपद्म हस्त, बाम चतुर हस्त, परिमण्डल हस्त, मयूरललित हस्त, वीरा दृष्टि और उद्वाहित शिर मे **षड्ज स्वर** (सगीत के सात स्वरो मे प्रथम) का अभिनय प्रस्तुत करे।

हंसास्याभिधहस्तेन दक्षिणेनेतरेण तु।
कटिस्थेनार्धचन्द्रेण समेन शिरसा तथा। 685
ब्राह्माख्यस्थानकेनापि धीमानृषभमादिशेत् ।।६८९।।

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दक्षिण हसास्य हस्त, कटि पर अवस्थित बाम अर्धचन्द्र हस्त, सम शिर और ब्राह्म नामक स्थानक के द्वारा वह **ऋषभ स्वर** (सगीत के सात स्वरो मे द्वितीय) का अभिनय प्रस्तुत करे।

शुकतुण्डेन हस्तेन दृष्टचा करुणया तथा। 686
अधोमुखेन शीर्षेणाश्वक्रान्तस्थानकेन च।
चार्याप्यञ्चितया धीमान् गान्धारं स्वरमादिशेत् ।।६९०।। 687

धीमान् अभिनेता को चाहिए कि शुकतुण्ड हस्त, करुणा दृष्टि, अधोमुख शिर, अश्वक्रान्त स्थानक और अचिता चारी की रचना द्वारा वह **गान्धार स्वर** (सगीत के सात स्वरो मे तृतीय) का अभिनय प्रस्तुत करे।

पताकौ स्वस्तिकौ कृत्वा शिरसा विधुतेन च।
शैवाख्यस्थानकेनापि कटीच्छिन्नेन वा पुनः। 688
दृष्टचा सहास्यया धीरोऽभिनयेन्मध्यग स्वरम् ।।६९१।।

नाटचनृतज्ञ अभिनेता को चाहिए कि दोनो पताक हस्तो को स्वस्तिकाकार करके, विधुत शिर, शैव स्थानक या कटिच्छिन्न स्थानक और हास्ययुक्त दृष्टि की रचना द्वारा वह **मध्यम स्वर** (सगीत के सात स्वरो मे चतुर्थ) का अभिनय प्रस्तुत करे।

कृत्वालपल्लवौ हस्तौ धुतेन शिरसा तथा। 689
वैष्णवस्थानकेनापि दृष्टचा कान्ताख्यया तथा।
एवं विनिर्दिशेद् धीमान् स्वरं पञ्चमसंज्ञितम् ।।६९२।। 690

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दोनो अलपल्लव हस्तो, धुत शिर, वैष्णव स्थानक और कान्ता दृष्टि की रचना करके वह **पचम स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करे।

काङ्गू[ल]हस्तकौ कृत्वा दृष्टचा बीभत्सया तथा ।
परावृत्ताख्यमूर्ध्ना च प्रत्यालीढाभिधेन च । 691
स्थानकेन विनिर्देश्यो धैवतौ निपुणैर्नटैः ।।६६३।।

निपुण अभिताओं को चाहिए कि दोनो कागूल हस्तो, बीमत्सा दृष्टि, परावृत्त शिर आर प्रत्यालीढ स्थानक की रचना करके वे **धैवत स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करे ।

हस्तेन करिहस्तेन करिहस्तेन दीनया । 692
दृष्टचावधूतशिरसा निषादं सन्निरूपयेत् ।।६६४।।

(अभिनेता को चाहिए कि) करिहस्त, दीना दृष्टि आर अवधूत शिर की रचना करके वह **निषाद स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करे ।

सुधाब्धिमतामाश्रित्याशोकमल्लेन भूभुजा । 693
अभिनीताः स्वरा. सप्त षड्जाद्याः नाटचवेदिना ।।६६५।।

नाटचशास्त्रवेत्ता राजा अशोकमल्ल ने सुधाब्धि (?सभवत भरत) के मत का अनुसरण करके **षड्ज** आदि सात स्वरो के अभिनय का निरूपण किया है ।

विभिन्न अभिनय प्रयोग

तं निर्दिशेत् पताकेन धिकार चतुरेण च । 694
तो(?थो) शब्द त्वर्धचन्द्रेण तथा टे त्रिपताकतः ।।६६६।।

पताक हस्त मुद्रा से **त** शब्द का, चतुर हस्त मुदा से **धिकार** शब्द का, अर्धचन्द हस्त मुद्रा से, (? **थो**) शब्द का ओर त्रिपताक हस्त मुद्रा से **टे** शब्द का अभिनय करना चाहिए ।

कर्तर्योऽस्य ततं(?ते) पञ्च वर्णा वाद्योद्भवा मया । 695
अभिनीता यथौचित्यमभिनेयाः परे बुधैः ।।६६७।।

कर्तरीमुख हस्त मुद्रा से वाद्य के पाँचो वर्णो का अभिनय करना चाहिए । अन्य वर्णो के अभिनय के लिए विद्वान् जैसा उचित समझे, वैसा करें ।

ध्यानस्थः शुकतुण्डेन वामेनान्येन पाणिना । 696
तिर्यक् स्थितेनोपलाभं सूच्यास्येन विनिर्दिशेत् ।।६६८।।

ध्यानस्थ होकर वाम शुकतुण्ड हस्त तथा तिर्यक स्थित दक्षिण सूचीमुख हस्त से पकडने का अभिनय करना चाहिए ।

तेन शब्दं सुधीरेवमन्यं च विरुतादिकम् । 697
यथौचित्य हस्तकाद्यै रम्यैरभिनयेदिति ।।६९९।।

इसी प्रकार निपुण अभिनेता उक्त (वाम मुकुल तथा नियत् स्थित दक्षिण सूचास्य) हस्त से शब्द का और अन्य हस्तमुद्रा से गुजन का भाव प्रकट करे। उन्हे चाहिए कि अन्यान्य के भावों के प्रदर्शन के लिए वे यथोचित रीति से रमणीय हस्तमुद्राओ का प्रयोग करे।

प्रसारितभुजो मुष्टिर्वामोऽन्यः खटकामुखः । 698
कर्णस्थो धनुराकर्षे नियुक्तो नृत्यपण्डितै ।।७००।।

नृत्यवेत्ता लोगो को फैली हुई भुजा वाले वाम मुष्टि हस्त तथा कान पर स्थित दक्षिण खटकामुख हस्त को धनुष खीचने के अभिनय मे प्रयुक्त करना चाहिए।

खटकास्यकरस्थाने करः सूचीमुखो यदा । 699
तदासौ बाणसन्धाने विद्वद्भिः परिकीर्तित. ।।७०१।।

जब उक्त मुद्रा मे खटकास्य हस्त के स्थान पर सूचीमुख हस्त को प्रयुक्त किया जाता है, तब विद्वानो ने वाण-सन्धान के अभिनय मे उसका विनियोग वताया है।

श्रव्यं श्रवणयोगेन मुखयोगेन वाचिकम् । 700
स्पृश्यमङ्गादियोगेन चक्षुर्योगेन चाक्षुषम् ।।७०२।।
गन्धं घ्राणस्य योगेन स्वादं जिह्वाभियोगतः । 701
एवं योग्येन हस्तेनाभिनयेन्नृत्यकोविदः ।।७०३।।

इस प्रकार नृत्यनिपुण अभिनेता को चाहिए कि वह कान के योग से सुनने योग्य विषय का, मुख के योग से वाचिक विषय का ,अग आदि के योग से स्पर्श करने योग्य विषय का, नेत्र के योग से चाक्षुष विषय का, नाक के योग से गन्ध विषय का ओर जिह्वा के योग से स्वाद विषय का अभिनय करे।

मयैवमेते सम्प्रोक्ता भावा अभिनयं प्रति । 702
सम्प्रोक्ता ये न ते ज्ञेयाः प्रायशो लोकतो बुधैः ।।७०४।।

इस प्रकार मैने विभिन्न अभिनयो से सम्बद्ध भावो का निरूपण कर दिया है, किन्तु जिनके सम्वन्ध मे नही कहा गया है, विज्ञ अभिनेताओ को चाहिए उन्हे लोक-व्यवहार द्वारा अवगत या ग्रहण करे।

लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् । 703
तस्मान्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ।
इत्युक्तं मुनिना सर्वदर्शिना भरतेन हि ॥७०५॥ 704

सर्वदर्शी भरत मुनि ने तीन प्रकार के प्रमाण बताये है लोक, वेद ओर अध्यात्म (धर्म) । इसलिए नाटच-प्रयोग मे लोक-प्रमाण को मानना चाहिए ।

स्वस्वचेष्टासमुद्भूतै रसभावैः पृथक् पृथक् ।
ज्येष्ठमध्यमनीचेषु नाटयं प्रीतिकरं भवेत् ॥७०६॥ 705

उत्तम मध्यम और अधम वस्तुओ या व्यक्तियो के अभिनय उनकी चेष्ठाओ (प्रकृति) से उत्पन्न रस-भावो द्वारा पथक्-पथक् रूप मे प्रदर्शित नाटच-प्रयोग हृदयग्राही होता है ।

संग्रामधीरधुर्येण नृपाग्रण्या मनीषिणा ।
अशोकेन समादिष्टा विचित्राभिनया इमे ॥७०७॥ 706

सग्राम मे धैर्य धारण करने वाले पुरुषो मे श्रेष्ठ, भूपतियो मे अग्रणी ओर मनीषी (बुद्धिमान्) राजा अशोकमल्ल ने उक्त विचित्र अभिनयो का निरूपण किया ।

विचित्राभिनय निरूपण समाप्त



वर्तना प्रकरण / सात

वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण

करामिनयशोभा या विचित्रा रचयन्ति हि ।
ततो मयेह लिख्यन्ते वर्तनास्ता मनोहरा. ॥७०८॥ 707

विचित्र प्रकार की मनोहर वर्तनाएँ हस्ताभिनय की शोभा मे चारुता उत्पन्न करती है। इसलिए यहाँ उनका निरूपण किया जा रहा है।

वर्तना के भेद

वर्तनाद्या पताकाख्यालपद्मारालयोः परे ।
वर्तने शुकतुण्डाख्याबहित्थाख्ये च वर्तने ॥७०९॥ 708
मकराख्या ततो ज्ञेया खटकामुखवर्तना ।
अन्योर्ध्ववर्तना तद्वद् रेचिताभिधवर्तना ॥७१०॥ 709
आविद्धवर्तना केशबन्धाख्या वर्तना तत ।
भालवर्तनिकोरःस्थवर्तना कक्षवर्तना ॥७११॥ 710
खड्गवर्तनिका दण्डवर्तना पद्मवर्तना ।
नितम्बपल्लवाख्ये द्वे तथा ललितवर्तना ॥७१२॥ 711
अर्धमण्डलपूर्वा च वर्तना वलिताभिधा ।
घातवर्तनिका गात्रवर्तना प्रतिवर्तना ॥७१३॥ 712
पञ्चविंशतिरित्युक्ता वर्तना वायुसूनुना ॥७१४॥

हनुमान जी ने पच्चीस प्रकार की वर्तनाएँ बतायी है। उनके नाम है १ **पताकवर्तना, २** अल्पद्मवर्तना, **३ अरालवर्तना, ४ शुकतुण्डवर्तना, ५ अबहित्थवर्तना, ५ मकरवर्तना ७ खटकामुखवर्तना, ८ ऊर्ध्ववर्तना,**

९ रेचितवर्तना, १० आविद्धवर्तना, ११ केशबन्धवर्तना, १२ भालवर्तना, १३ उरस्थवर्तना, १४ कक्षवर्तना, १५ खड्गवर्तना, १६ दण्डवर्तना, १७ पद्मवर्तना, १८ नितम्बवर्तना, १९ पल्लवर्तना, २० ललित-वर्तना, २१ अर्धमण्डलवर्तना, २२ वलितवर्तना, २३ घातवर्तना, २४ गात्रवर्तना और २५ प्रतिवर्तना।

१ पताकवर्तना

मणिबन्धावधिभ्रान्तिः पताकस्य मुहुर्भवेत् । 713
सव्यापसव्यतो यत्र सा पताकाख्यवर्तना ॥७१५॥

यदि पताक हस्त को दाये-बाये क्रम से बार-बार मणिबन्ध (कलाई) तक घुमाया जाय तो वह **पताकवर्तना** कहलाती है ।

२ अलपद्मवर्तना

अलपद्मकरे यत्र व्यावृत्तिक्रियया यदा । 714
वर्तितः सालपद्माख्या वर्तना गदिता बुधैः ॥७१६॥

यदि दोनो अलपद्म हस्तो को घुमा कर रख दिया जाय तो विद्वानो ने उसे **अलपद्मवर्तना** कहा है ।

३ अरालवर्तना

कर्मणा वेष्टिताख्येन रचयित्वा यदा करः । 715
अरालो वर्तितः पश्चाद् यत्रोद्वेष्टितकर्मणा ।
प्रत्यपादि तदा धीरैररालकरवर्तना ॥७१७॥ 716

यदि पहले वेष्टित (घेरने) क्रिया के द्वारा अराल हस्त की रचना करके तत्पश्चात् उदवेष्टित (चारो ओर घरने की) क्रिया द्वारा उसे अवस्थित किया जाय, तो विद्वानो ने उसे **अरालहस्तवर्तना** कहा है ।

४. शुकतुण्डवर्तना

आविद्धाधोमुखो यत्र वक्षसः शुकतुण्डकः ।
वर्तितश्चोरुपृष्ठे सा शुकतुण्डाख्यवर्तना ॥७१८॥ 717

यदि शुकतुण्ड हस्त को छाती के सामने टेढा तथा अधोमुख करके जाँघ पर रख दिया जाय तो उसे **शुकतुण्डवर्तना** कहते है ।

५ अवहित्थवर्तना

करावेवमुभौ यत्र सावहित्थाख्यवर्तना ॥७१९॥

यदि दोनो शुकतुण्ड हस्तो को शुकतुण्डवर्तना मे अवस्थित किया जाय तो उसे **अवहित्थवर्तना** कहते है ।

६. **मकरवर्तना**

करो मकरनामा चेत् पुरतः पार्श्वयोस्तथा । 718
व्यावर्तितो बहिश्चान्तस्तदा मकरवर्तना ॥७२०॥

यदि मकर हस्त को सामने तथा दोनो पार्श्वो मे बाहर आर भीतर व्यावर्तित (घुमा) दिया जाय तो उसे **मकरवर्तना** कहते है ।

७. **खटकामुखवर्तना**

सव्यापसव्यतो नाभिदेशे या खटकास्ययोः । 719
भ्रान्तिरामणिबन्धं सा खटकामुखवर्तना ॥७२१॥

यदि दोनो खटकामुख हस्तो को नाभि के पास बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे **खटकामुखवर्तना** कहते है ।

८ **ऊर्ध्ववर्तना**

वर्त्तितावूर्ध्वदेशे चेदुद्वृत्ताभिधहस्तकौ । 720
तदोर्ध्ववर्तना प्रोक्ता कोहलेन मनीषिणा ॥७२२॥

यदि उदवृत्त दोनो हस्तो को ऊपर उठा कर अवस्थित किया जाय तो आचार्य कोहल ने उसे **ऊर्ध्ववर्तना** कहा हे ।

९. **रेचितवर्तना**

हंसपक्षौ स्वस्तिकाच्चेद्विच्युतौ त्वरितभ्रमौ । 721
रच्येते रेचितौ यत्र सोक्ता रेचितवर्तना ॥७२३॥

यदि हसपक्ष दोनो हस्तो को स्वस्तिक मुद्रा से हटाकर शीघ्रतापूर्वक घुमाया जाय और फिर रेचित हस्तो की रचना की जाय, तो उसे **रेचितवर्तना** कहते है ।

१०. **आविद्धवर्तना**

आविद्धवक्रयोर्यत्र बाहू व्यावर्तितौ क्रमात् । 722
आविद्धौ चेत् तदा सोक्ता धीरैराविद्धवर्तना ॥७२४॥

यदि आविद्धवक्र दोनो हाथो की बॉहो को क्रमश घुमाकर मोड लिया जाय तो धीर पुरुषो ने उसे **आविद्धवर्तना** कहा है ।

११. **केशबन्धवर्तना**

केशबन्धाभिधौ हस्तौ निर्गतौ केशदेशतः । 723

विचित्रवर्तनायोगादेकदाथ क्रमाहृतौ ।
वर्तितौ यत्र तत्रासौ केशबन्धाख्यवर्तना ॥७२५॥ 724

यदि केशबन्ध दोनो हस्तो को केशो के पास से निकाल कर विचित्रवर्तना के योग से एक-एक बार क्रमश दोनो को आहृत किया जाय तो उसे **केशबन्धवर्तना** कहा जाता है ।

१२ भालवर्तना

ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ वर्तितौ भालवर्तना ।
चक्रवर्तनिकेत्यस्या नामान्तरमुदीरितम् ॥७२६॥ 725

यदि दोनो ऊर्ध्वमण्डली हस्तो की रचना की जाय तो उसे **भालवर्तना** कहते है । उसका अपर नाम **चक्रवर्तनिका** भी कहा गया है ।

१३ उर स्थवर्तना

उरःस्थवर्तनां विद्यादुरोमण्डलिनोः क्रियाम् ॥७२७॥

दोनो उरोमण्डली हस्तो की रचना को ही **उर स्थवर्तना** कहा जाता है ।

१४. कक्षवर्तनिका

पार्श्वमण्डलिनोः स्वस्वपार्श्वयोर्भ्रमणं यदा । 726
युगपत् क्रमतो वा स्यात् कक्षवर्तनिका तदा ॥७२८॥

यदि दोनो पार्श्वमण्डली हस्तो को अपने-अपने पार्श्वो मे एक साथ या क्रमश एक-एक करके घुमाया जाय तो उसे **कक्षवर्तनिका** कहते है ।

१५ खड्गवर्तना

कुञ्चितो मुष्टिरेकोऽन्योऽञ्चितः स्यात् खटकामुखः । 727
इमौ कीर्त्तिधरः प्राह खड्गवर्तनिकाख्यया ॥७२९॥

यदि एक मुष्टि हस्त कुञ्चित (सिकुडा हुआ) आर दूसरा खटकामुख हस्त अञ्चित (झुका हुआ) हो, तो उसे **खड्गवर्तना** कहते है ।

१६. दण्डवर्तना

वर्तितौ दण्डपक्षौ चेत् तदा स्याद् दण्डवर्तना ॥७३०॥ 728

यदि दोनो हाथो की दण्डपक्ष मुद्रा मे रचना की जाय तो उसे **दण्डवर्तना** कहते है ।

१७ पद्मवर्तना

नलिनीपद्मकोशौ चेत् सविलासं लुठन्ति तौ ।
पूर्वसूरिभिरादिष्टा पद्मवर्तनिका तदा ।।७३१।। 729

यदि नलिनीपद्मकोश नामक दोनो हस्त हाव-भाव के साथ लुटके तो पूर्वाचार्यो ने उसे **पद्मवर्तना** कहा है ।

१८ नितम्बवर्तना

नितम्बौ तु यदा हस्तौ विश्लिष्टाङ्गुलिपल्लवौ ।
मणिबन्धावधि भ्रान्तौ वर्तित्वा स्कन्धदेशयोः ।।७३२।। 730
पुनर्नितम्बदेशस्थौ वर्तितौ क्रमशस्तदा ।
नितम्बवर्तना सोक्ता लक्ष्यलक्ष्मविशारदैः ।।७३३।। 731

यदि नितम्ब मुद्रा मे दोनो हाथो को, जिनकी उँगलियाँ अलग-अलग रहे, कलाई तक घुमाते हुए कन्धे तक ले जाया जाय और फिर क्रमश लाकर नितम्बो पर रख दिया जाय तो अभिनेताओ और नाटयाचार्यो ने उसे **नितम्बवर्तना** कहा है ।

१९ पल्लववर्तना

पल्लवौ वर्तितौ चेत् सा सविलासमनोहरौ ।
निरवादि तदा धीरैः पल्लवाभिधवर्तना ।।७३४।। 732

यदि दोनो पल्लव हस्तो को हाव-भाव तथा सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया जाय तो उसे धीर पुरुषो ने **पल्लववर्तना** कहा है ।

२० ललितवर्तना

लीलया ललितौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
यदा स्यातां तदा प्रोक्ता ललिताभिधवर्तना ।।७३५।। 733

यदि दोनो ललित हस्तो को लीलापूर्वक हाव-भाव तथा सुन्दरता के साथ अवस्थित किया जाय तो उसे **ललितवर्तना** कहते है ।

२१ अर्धमण्डलवर्तना

सविलासं यदा स्यातामुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।
वर्तितौ स्वोक्तरीत्यैव त्वर्धमण्डलवर्तना ।।७३६।। 734

यदि उर पार्श्वार्धमण्डल दोनो हस्तो को हाव-भाव के साथ अपने उक्त प्रकार से ही अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे **अर्धमण्डलवर्तना** कहते है ।

२२ वलितवर्तना

वलिताभिधहस्तौ चेद्वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
सौष्ठवेन तदा सोक्ता धीरैर्वलितवर्तना ।।७३७।। 735

यदि दोनो वलित हस्त चारुतापूर्वक अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किये जाँय तो धीर पुरुषो ने उसे **वलितवर्तना** कहा है ।

२३ घातवर्तना

उल्वणौ वर्तितौ स्वोक्तरीत्योक्ता घातवर्तना ।।७३८।।

यदि दोनो उल्वण हस्तो को अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किया जाय तो उसे **घातवर्तना** कहते ह ।

२४ गात्रवर्तना

अलपल्लवहस्तोऽन्तर्गात्रं व्यावर्तितो यदि । 736
परागास्योऽपविद्धः स्यात् तदोक्ता गात्रवर्तना ।।७३९।।

यदि अलपल्लव हस्त को अन्दर शरीर की ओर घुमाकर पराङमुख (उलटा) करके अपविद्ध किया जाय तो उसे **गात्रवर्तना** कहते हे ।

२५ प्रतिवर्तना

प्रातिलोम्येन गात्रस्य हस्त आक्षिप्य वर्तितः । 737
अलपल्लवनामा चेत् तदोक्ता प्रतिवर्तना ।।७४०।।

यदि अलपल्लव हस्त को शरीर के विपरीत भाव से (बाहर की ओर) आक्षिप्त करके अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे **प्रतिवर्तना** कहते है ।

वर्तना के अन्य भेद

वर्तना चतुरस्राख्यापरा तलमुखाह्वया । 738
वर्तना स्वस्तिकाख्यान्या विप्रकीर्णाभिधा परा ।।७४१।।
तथा पुष्पपुटाख्यान्या त्रिपताकाह्वया परा । 739
कर्तर्यास्याभिधा मुष्टिवर्तना (ख्या ततः) परा ।।७४२।।

शिखराख्या कपित्थाख्या तथा सूचीमुखाह्वया । 740
एवमेकादश ज्ञेया वर्तनाश्च मतान्तरे ॥७४३॥

अन्य आचार्यो के मत से वर्तना के ग्यारह भेद बताये गये है, जिनके नाम है १ चतुरस्रवर्तना, २ तलमुखवर्तना, ३ स्वास्तिकवर्तना, ४ विप्रकीर्णवर्तना, ५ पुष्पपुटवर्तना, ६ त्रिपताकवर्तना, ७ कर्तरीमुखवर्तना, ८ मष्टि-वर्तना, ९ शिखरवर्तना, १० कपित्थवर्तना और ११ सूचीमुखवर्तना ।

१ चतुरस्रवर्तना

चतुरस्रौ यदा हस्तौ चलितौ सांसकूर्परौ । 741
उद्वेष्टितक्रियापूर्वौ पश्चाद् वक्षः समाश्रितौ ।
तदा धीरै. समादिष्टा चतुरस्राख्यवर्तना ॥७४४॥ 742

यदि दोनो चतुरस्र हस्तो को कन्धे तथा कुहनी सहित चलाया जाय ओर उद्वेष्टित (चारो ओर से घेरने की) क्रिया करने के अनन्तर उन्हे छाती पर अवस्थित किया जाय, तो धीर पुरुषो ने उसे **चतुरस्रवर्तना** कहा हे ।

२ तलमुखवर्तना

यदा तलमुखौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
सौष्ठवेन तदा धीरैरुक्ता तलमुखाह्वया ॥७४५॥ 743

यदि दोनो तलमुख हस्तो को अपने उक्त प्रकार से सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया जाय तो धीर पुरुषो ने उसे **तलमुखवर्तना** कहा है ।

३ स्वस्तिकवर्तना

व्यावर्तनक्रियापूर्वं क्रियेते स्वस्तिकौ यदा ।
तदा सद्भिः समादिष्टा वर्तना स्वस्तिकाभिधा ॥७४६॥ 744

यदि दोनो स्वस्तिक हस्तो को व्यावर्तन क्रिया के द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो मज्जनो ने उसे **स्वस्तिकवर्तना** कहा है ।

४ विप्रकीर्णवर्तना

उद्वेष्टितक्रियापूर्वं भ्रमन्तौ विच्युताविमौ ।
स्वस्वपार्श्वगतौ प्रोक्ता विप्रकीर्णाख्यवर्तना ॥७४७॥ 745

यदि उक्त स्वस्तिक हस्तो को चारो ओर घेरते तथा घुमाते हुए अलग-अलग करके अपने-अपने पार्श्व मे अवस्थित कर दिया जाय तो उसे **विप्रकीर्णवर्तना** कहते है ।

५ **पुष्पपुटवर्तना**

परिवृत्त्या पुष्पपुटः करः पार्श्वे व्रजेद् यदि । 746
ततो वक्षःस्थलं प्राप्तो व्यावृत्त्या नेत्रसुन्दरः ।
तदा धीरैः पुष्पपुटवर्तना समुदाहृता ।।७४८।। 747

यदि पुष्पपुट हस्त को घुमाते हुए पार्श्व मे ले जाया जाय और फिर, नेत्रो को अच्छा लगने वाले, उस हस्त को वहाँ से वक्ष स्थल पर पहुँचा दिया जाय तो धीर पुरुषो ने उसे **पुष्पपुटवर्तना** कहा है ।

६ **त्रिपताकवर्तना**

सव्यापसव्यतो भ्रान्तौ त्रिपताकौ मुहुः करौ ।
मणिबन्धावधि प्रोक्ता त्रिपताकाख्यवर्तना ।।७४९।। 748

यदि दोनो त्रिपताक हस्तो को बार-बार बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे **त्रिपताकवर्तना** कहते है ।

७ **कर्तरीमुखवर्तना**

त्रिपताकोक्तरीत्यैव कर्तरीमुखवर्तना ।।७५०।।

यदि दोनो कर्तरीमुख हस्तो को उक्त **त्रिपताक** हस्तो की तरह प्रस्तुत किया जाय तो उसे **कर्तरीमुखवर्तना** कहते है ।

८ **मुष्टिवर्तना**

व्यावृत्तिक्रियया मुष्टिं कृत्वा चेद् भ्रामयेन्मुहुः । 749
सव्यापसव्यतो मुष्टिवर्तना सद्भिरीरिता ।।७५१।।

यदि मुष्टि हस्त को व्यावृत्ति (चक्कर काटने की) क्रिया द्वारा बाँये-दाँये क्रम से बार-बार घुमाया जाय तो उसे सज्जनो ने **मुष्टिवर्तना** कहा है ।

९ शिखरवर्तना, १० कपित्त्थवर्तना, ११ सूचीमुखवर्तना

शिखरस्य कपित्त्थस्य तथा सूचीमुखस्य च । 750
भवन्ति वर्तना मुष्टिवर्तनोक्तप्रकारतः ।।७५२।।

शिखर, कपित्त्थ और सूचीमुख हस्तो की वर्तनाएँ उक्त **मुष्टिवर्तना** मे निर्दिष्ट क्रिया के अनुरूप सम्पन्न होनी है।

करणामेवमन्येषामनन्ता वर्तना मताः । 751
अभिनेयवशाद् धीरैस्तत्तन्नाम्नोपलक्षिताः ।।७५३।।

इसी प्रकार अन्य हाथों की अनन्त वर्तनाएँ कही गयी है । अभिनय योग्य उन वर्तनाओ को विद्वानो ने अभिनय के अनुरूप उन-उन नामो से अभिहित किया है ।

छत्तीस प्रकार की वर्तना का निरूपण समाप्त



चालन प्रकरण / आठ

हस्त संचालन क्रियाओ का निरूपण

नृत्यज्ञैर्यदि रेच्यन्ते बाहवो बहुभङ्गिभिः । 752
बहुधा चालनानि स्युस्तदा तान्यधुना ब्रुवे ॥७५४॥

जब निपुण अभिनेता अनेकानेक भाव-भगिमाओ से बाहुओ को गतिशील करते है, तब बहुधा नाना प्रकार की सचालन-क्रियाएँ बनती या उत्पन्न होती है। यहा उनका निरूपण किया जा रहा है।

विश्लिष्टवर्तित त्वाद्यं वेपथुव्यञ्जकं परम् । 753
अपविद्धं ततो ज्ञेय लहरीचक्रसुन्दरम् ॥७५५॥
वर्तनास्वस्तिकाख्यं च सम्मुखीनरथाङ्गकम् । 754
पुरोदण्डभ्रमाख्यं च त्रिभङ्गीवर्णसारकम् ।
दोलं नीराजिताख्यं च स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ॥७५६॥ 755
वामदक्षतिरश्चीन वर्तनाभरणं तथा ।
मिथोसवीक्षाबाह्याख्यं मौलिरेचितक तत ॥७५७॥ 756
मणिबन्धासिकर्षाख्यमंसवर्तनिकं तथा ।
आदिकूर्मावताराख्य कलविङ्कविनोदकम् ॥७५८॥ 757
मण्डलाग्रं ततः पश्चाच्चतुष्पत्राब्जसंज्ञितम् ।
बालव्यजनकं चान्यत् ततो विरुडिबन्धनम् ॥७५९॥ 758
विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तथा कुण्डलिचारकम् ।
धनुराकर्षणाख्यं च हारदामविलासकम् ॥७६०॥ 759
समप्रकोष्ठबलनं मुरजाडम्बरं ततः ।
तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं ततो देवोपहारकम् ॥७६१॥ 760

अलातचक्रकाख्यं च ततः साधारणाभिधम् ।
तथोरभ्रकसम्बाधं मणिबन्धगतागतम् ॥७६२॥ 761
तार्क्ष्यपक्षविनोदाख्यं धनुर्वल्लीविनामकम् ।
तिर्यक्ताण्डवचाराख्यं व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥७६३॥ 762
कररेचितरत्नं च मण्डलाभरणं तथा ।
अष्टबन्धविहाराख्यं शरसन्धाननामकम् ॥७६४॥ 763
पर्यायगजदन्ताख्यमंसपर्यायनिर्गतम् ।
स्यात् स्वस्तिक त्रिकोणं च रथमेमिसम तथा ॥७६५॥ 764
लतावेष्टितकाख्य च कर्णयुग्मप्रकीर्णकम् ।
नवरत्नमुखं चेति पञ्चाशच्चालकाः स्मृताः ॥७६६॥ 765

चालको के पचास भेद कहे गये है—१ विश्लिष्टवर्तित, २ वेंपथुव्यञ्जक, ३ अपविद्ध ४ लहचक्रसुन्दर, ५ वर्तनास्वस्तिक, ६ समुखीनरथाङ्ग, ७ पुरोदण्डभ्रम, ८ त्रिभगीवर्णसारक, ९ देल, १० नीराजित, ११ स्वस्तिकाश्लेष, १२ वामदक्षतिरश्चीन, १३ वर्तनाभरण, १४ भिथोसवीक्षाबाह्य, १५ मौलिरेचितक, १६ मणिबन्धासिकर्ष, १७ असवतुनिक, १८ आदिक्र्मवितार, १९ कलविङकविनोद, २० मण्डलाग, २१ चतुष्पत्राब्ज, २२ बालव्यञ्जन चालन, २३ विरुडिबन्धन, २४ विशृगाटकबन्धन, २५ कुण्डलिचारक, २६ घनराकर्षण, २७ हारदामविलासक, २८ सपप्रकोष्ठचलन, २९ मुरजाडम्बर, ३० तिर्यग्यतस्वस्तिकाग्र, ३१ देवोपहारक, ३२ अलातचक्र, ३३ साधारण, ३४ उरभ्रकसबाध, ३५ मणिबन्धगतागत, ३६ तार्क्ष्य-पक्षविनोदक ३७ धनुवल्लीवितामक, ३८ तिर्यकताण्डव, ३९ व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक ४० कररेचितरत्न ४१ मण्डलाभरण, ४२ अष्टबन्धविहार, ४३ शरसन्धान, ४४ पर्यायगजदन्तक, ४५ असपर्यामनिर्गत, ४६ त्रिकोणस्वस्तिक, ४७ रथनेमिसम ४८ लतावेष्टित, ४९ कर्णयुग्मप्रकीर्णक और ५० नवरत्नमुख ।

१ विश्लिष्टवर्तित

विधाय स्वस्तिकौ यत्र तिर्यगेको विलोडितः ।
अपरः पार्श्वयोर्यत्राशीर्षमूर्ध्वमधस्तथा । 766
लोडितः स्यात् तदाख्यातं सद्भिर्विश्लिष्टवर्तितम् ॥७६७॥

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मे वनाकर एक को तिरछा करके हिलाया जाय और दूसरे को दोनो पार्श्वो मे शिर तक नीचे-ऊपर हिलाया जाय तो सज्जनो ने उसे **विश्लिष्टवर्तित** कहा है।

२ **वेपथुव्यजक**

लुठत्येककरे तिर्यड् नाभिदेशगते सति । 767
ततोऽन्यदेशचलनं यन्मञ्जुलरसोज्ज्वलम् ।
हस्तयोस्तत् समाख्यातं वेपथुव्यञ्जकं तदा ।।७६८।। 768

यदि एक हाथ नाभिदेश मे जाकर तिरछा होकर लोटे और फिर वहाँ से अन्य स्थानो मे सुन्दरतापूर्वक उज्ज्वल होकर सचलित हो, तो दोनो हाथो की उस क्रिया को **वेपथुव्यजक** कहते है।

३ **अपविद्ध**

लुठनं मण्डलाकारं नाभिकण्ठप्रदेशयो. ।
वामदक्षिणतो यत् स्यादपविद्धमितीरितम् ।।७६९।। 769

यदि नाभि और कण्ठ के पास बाँये-दाँये क्रम से हाथो को लोटाया जाय तो उसे **अपविद्ध** चलन कहते है।

४ **लहरीचक्रसुन्दर**

एकस्मिन्नाभिदेशस्थे तिर्यग्लुठति हस्तके ।
ततो वामं सपर्यन्तं परं प्राप्य पराङ्मुखम् ।।७७०।। 770
कर्मणान्दोलनेनाथ प्रसार्यामुं बहिर्यदा ।
क्षिप्रमन्तरमाक्षिप्य शिरसः पार्श्वयोर्द्वयोः ।।७७१।। 771
विलोड्यपार्श्वयोः स्तोकं यद्विलासेन जायते ।
तदवादि तदा सद्भिर्लहरीचक्रसुन्दरम् ।।७७२।। 772

पहले एक हाथ को नाभिदेश मे रखकर तिरछा लोटा दिया जाय, फिर बाये हाथ को हिलाते-डुलाते हुए किनारे सहित उलटा कर शिर के दोनो बगल मे किञ्चित् हाव-भाव के साथ चलायमान किया जाय, उसी को सज्जनो ने **लहरीचक्रसुन्दर** चालन कहा है।

५. **वर्तनास्वस्तिक**

एकस्य वलने पार्श्वे विद्युदाकृतिधारिणः ।
अन्वक्षरेण हस्तेन योगश्चेच्च्युतिपूर्वकः ।।७७३।। 773

असकृद् यत्र तत् प्रोक्त वर्तनास्वस्तिकं तदा ।
अथवेदं त्रिखण्डोक्तवर्तनाभिर्भवेदिति ।।७७४।। 774

यदि एक हाथ बिजली की आकृति धारण करके, अर्थात् विद्युल्लता के समान, बगल मे चक्कर लगाये ओर दूमरा हाथ उसका अनुगमन करते हुए बार-बार उससे जुट जाय तथा हट भी जाय, तो उसे **वर्तनास्वस्तिक** चालन कहते हे । उसे त्रिखण्डोक्तवर्तनाओ द्वारा सम्पन्न किया जाय ।

६ समुखीनरथाग

परस्परमुखीभूय तिर्यग्विततरेचितौ ।
विधाय पार्श्वयोरन्तरावृत्ती तीक्ष्णकूर्परौ ।।७७५।। 775
रेचितौ पूर्ववद् यत्र हस्तौ मञ्जुलतान्वितौ ।
सम्मुखीनरथाङ्गं तच्चालनं परिकीर्तितम् ।।७७६।। 776

जहॉ दोनो रेचित हस्तो को सुन्दर ढग से एक-दूसरे के आमने-सामने फैलाकर दोनो पार्श्वो मे दोनो नोकीली कोहनियो को चलाया जाय, वहॉ उसे **समुखीनरथाग** कहा जाता है ।

७ पुरोदण्डभ्रम

तिर्यङ्मुष्टिं विधायैकं पश्चादस्यैव चेद्बहिः ।
अन्तश्च लीलयान्यस्मिन् लुठिते सति हस्तयोः ।।७७७।। 777
पुरस्तान्निसृतिर्यत्र पर्यायेण तदीरितम् ।
पुरोदण्डभ्रमाख्यं तच्चालनं प्राच्यसूरिभिः ।।७७८।। 778

जहॉ दोनो हाथो मे से एक को मुष्टि हस्त बना कर पश्चात् उसी के बाहर या भीतर लीलापूर्वक दूसरे हाथ को लोटा दिया जाय और अनुक्रम से आगे निकाल दिया जाय, तो पूर्वाचार्यो ने उसे **पुरोदण्डभ्रम** चालन कहा है।

८ त्रिभगीवर्णसारक

पूर्वे पार्श्वे ततः पश्चाद् विदिश्यपि पदक्रिया ।
करयोर्जायते यत्र युगपत् क्रमतोऽथवा । 779
त्रिभङ्गीवर्णसारकं चालनं तदुदीरितम् ।।७७९।।

जहॉ दोनो हाथो का सचालन पूरब मे, अगल-बगल मे तथा दो दिशाओ के अन्तराल मे एक साथ या क्रमश किया जाता है, वहॉ वह **त्रिभगीवर्णसारक** चालन कहलाता है ।

९ दोल

यत्रोर्ध्वोऽधोमुखस्त्र्यस्त्रं लीयया लुठित क्रमात् । 780
करस्तद्दोलमादिष्टं चालनं प्राक्तनैर्बुधैः ।।७८०।।

जहाँ एक हस्त क्रमश ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर त्रिकोण मे लोटता है, वहा उसको पूर्वाचार्यो ने **दोल** चालन कहा है ।

१० नीराजित

स्वस्तिकीभूय चेद्धस्तौ बहिरेव विनिर्गतौ । 781
अन्तस्तिर्यक् चक्रभावान्मूर्ध्नि सव्यापसव्ययोः ।
युगपल्लुठतो यत्र तन्नीराजितचालनम् ।।७८१।। 782

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा मे रच कर बाहर की ओर निकाला जाय और फिर भीतर तिरछा करके चक्राकार मे बाँये-दाँये क्रम से एक साथ मस्तक पर लोटा दिया जाय तो वह **नीराजित** चालन कहलाता है ।

११ स्वस्तिकाश्लेष

बिभ्रतोः स्वस्तिकाकारं करयोः स्कन्धदेशतः ।
वलनं चेत् तदा प्रोक्तं स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ।।७८२।। 783

यदि स्वस्तिकाकृति धारण किये हुए दोनो हाथो को कन्धे के पास से घुमाया जाय, तो उसे **स्वस्तिकाश्लेष** चालन कहा जाता है ।

१२ वामदक्षतिरश्चीन

वामदक्षिणयोस्तिर्यग्लुठनं करयोर्यदा ।
स्वस्तिकाकारयोर्यत्र तत् तदा तण्डुना मतम् । 784
वामदक्षतिरश्चीनं तदप्यन्वर्थनामकम् ।।७८३।।

जब दोनो स्वस्तिकाकार हस्त बाँये-दाँये क्रम से तिरछे लोटा दिये जाय, तब उसे आचार्य तण्डु के मत से **वामदक्षतिरश्चीन** चालन कहते है । यह उसकी अन्वर्थसज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है ।

१३ वर्तनाभरण

एकः करो यदा कर्णदेशगोऽन्यस्तु वर्तितः । 785
उत्सार्योद्वेष्टितेन स्याद् वर्तनाभरणं तदा ।।७८४।।

जब एक हाथ कान के पास रहे आर दूसरे हाथ को हटाकर चारो ओर से घेर दिया जाय तब उसे **वर्तनाभरण** चालन कहते है।

१४ मिथोसवीक्षाबाह्य

एकः करश्चेदन्यस्य स्कन्धदेशमृजुर्गतः । 786
निवृत्तः सन् निजे पार्श्वे क्रमाद् विहितमण्डलः ।
मिथोसवीक्षाबाह्यं तत्कथ्यते चालनं तदा ।।७८५।। 787

यदि एक हाथ दूसरे के कन्धे पर सीधे चला जाय और फिर क्रमश मण्डल बना कर पार्श्व मे लौट आये, तो उसे **मिथोसवीक्षाबाह्य** कहते हे।

१५ मौलिरेचितक

कटिदेशगतस्त्वेकोऽपरस्तु पुरतो गतः ।
अथैतो केशपर्यन्तं लीलया लुठितौ यदि । 788
तदात्र सद्भिराख्यातं मौलिरेचितकं तदा ।।७८६।।

यदि एक हाथ को कमर पर और दूसरे को सामने रखा जाय तथा दोनो को केश पर्यन्त लीलापूर्वक लोटाया जाय तो सज्जन लोग उसे **मौलिरेचितक** चालन कहते हे ।

१६ मणिबन्धासिकर्ष

हस्तावुद्यम्य युगपत् क्रमाद् वा स्कन्धधोर्यदि । 789
विलोडनं विधायाथ कूर्परस्वस्तिकात्मना ।।७८७।।
तत्रैव लोडयित्वाथ बहिरन्तश्च मुष्टितः । 790
द्रुतं निविश्य लुठनाच्चक्राकृतिविडम्बिनः ।।७८८।।
तदन्यस्मिन् क्रमाद्धस्ते पार्श्वयोर्वलनं गते । 791
परस्य लीलया यत्र समुत्क्षेपो विधीयते ।
मणिबन्धासिकर्षाख्यं तदा सद्भिर्निरूपितम् ।।७८९।। 792

दोनो हाथो को एक साथ या क्रम से उठाकर दोनो कन्धो पर हिलाया जाय, फिर कुहनियो को स्वस्तिकाकार बनाकर हाथो को वही पर हिलाया जाय, अनन्तर बाहर और भीतर शीघ्र मुष्टि हस्त का प्रयोग करके चक्राकार हाथ को लोटाया जाय, पश्चात् एक हाथ को दोनो पार्श्वो मे टेढा करके दूसरे हाथ को लीलापूर्वक ऊपर उठाया जाय, ऐसा करने पर सज्जनो ने उसे **मणिबन्धासिकर्ष** चालन कहा है।

१७ असवर्तनिक

मणिबन्धप्रकोष्ठासवर्तनाच्चलितोद्धृतैः । 793
कि[1]ञ्चित्साचिनत शीर्ष विधायोपरिलोडनैः ।।७९०।।
परागधोमुखत्वेन ्लुठितैरुरस. पुरः । 794
ततश्चेच्चलितै पाण्योः कुटिलैः पार्श्वयोर्द्वयोः ।।७९१।।
युगपत् क्रमतो यद्वा भूयते यत्र तत् तदा । 795
अंसवर्तनिकं प्रोक्त तल्लक्षणविशारदैः ।।७९२।।

कलाई से लेकर कुहनी तक के भाग को चलाया जाय और सिर को कुछ तिरछा करके उसके ऊपर हाथो को हिलाया जाय, फिर ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर वक्षस्थल के समक्ष हाथो को लोटाया जाय, पश्चात दोनो पार्श्वो मे हाथो को कुटिल करके एक साथ या क्रमश चलायमान किया जाय। ऐसी क्रिया को लक्षण के विशेषज्ञो ने **असवर्तनिक** चालन कहा है।

१८ आदिकूर्मावतार

वामदक्षिणयोर्मूर्ध्नो युगपत् क्रमतोऽथवा । 796
ऊर्ध्वाधोमण्डलभ्रान्तौ करौ स्वस्तिकतां गतौ ।।७९३।।
वर्तनास्वस्तिकौ पार्श्वद्वन्द्वे मण्डलघूर्णितो । 797
बृहन्मण्डलपूर्णौ चेत् पुरो विलुठतस्तदा ।
आदिकूर्मावताराख्यं भणितं पूर्वसूरिभिः ।।७९४।। 798

मस्तक के वाम तथा दक्षिण भाग मे एक साथ या क्रमश स्वस्तिकाकार हाथो को ऊपर-नीचे मण्डलाकार मे घुमाया जाय, फिर **वर्तनास्वस्तिक** नामक चालन वाले हाथो को दोनो पार्श्वो मे मण्डल बनाकर घुमा दिया जाय, इस प्रकार बृहत् मण्डल से पूर्ण हाथ जब सामने लोटने लगते है, तब पूर्वाचार्यो ने उसे **आदिकूर्मावतार** चालन कहा है।

१९ कर्लावकविनोद

मूर्ध्व[1] देशोपरि करौ यद् मध्याकाशमेकदा ।
विलोड्य मण्डलाकारमथ चेत् पार्श्वयोर्द्वयोः ।।७९५।। 799

---

१ देखिए भरतकोश, पृ० ८१० ।

करयोः क्रियते यत्र पतनोत्पतनात्मिका ।
पुनः[पुनः] क्रिया या स्यात् द्रुतमानेन लीलया । 800
कलविङ्कविनोदाख्यं चालनं तत् तदेरितम् ॥७९६॥

मस्तक के ऊपर दोनो हाथों को मध्य आकाश मे एक बार हिलाकर दोनो पार्श्वो मे मण्डलाकार घुमाया जाय, फिर बार-बार तेजी से दोनो हाथो को लीलापूवक गिरा दिया जाय ओर उठा दिया जाय। ऐसी क्रिया को **कलविङ्कविनोद** चालन कहते है।

२० **मण्डलाग्र**

मुष्टिर्विलुठित[1]स्त्वेकस्तदूर्ध्वं यात्य[था]परः । 801
गतागतः पार्श्वयोः स पश्चात्तु पुरतो गत. ॥७९७॥
एव सति पुनर्यत्र व्यत्यासात् करयो. क्रिया. । 802
चालनज्ञैः समाख्यात मण्डलाग्रमिदं तदा ॥७९८॥

एक मुष्टि हस्त लोटता रहे ओर दूसरा ऊपर को जाय, फिर वह हाथ दोनो बगलो मे जाय, पश्चात् आगे जाय, इस प्रकार बदल-बदल कर दोनो हाथों की क्रियाएँ जहाँ हो, वहाँ चालन के विशेषज्ञो ने उसे **मण्डलाग्र** चालन कहा है।

२१. **चतुष्पत्राब्ज**

ऊर्ध्वं विलुठितः पूर्वं पश्चान्मण्डलवद्भ्रमः । 803
विलासेन चतुर्दिक्षु हस्तो यत्र प्रवर्तते ॥७९९॥
नाभिदेशसमीपस्थे लुठत्यन्यकरे सति । 804
पर्यायाच्चेत् तत् तदोक्तं चतुष्पत्राब्जचालनम् ॥८००॥

जहाँ एक हाथ पहले ऊपर मे लोटे पश्चात चारो दिशाओ मे हाव-भाव के साथ मण्डलाकार मे घूमे और दूसरा हाथ नाभि के समीप वारी-बारी से लोटे, तो उसको **चतुष्पत्राब्ज** चालन कहते है।

२२. **बालव्यजन**

पर्यायेणोत्प्रकोष्ठं चेत् स्कन्धदेशान्तरं गतौ । 805
करौ विलुठितौ भूत्वाधोगतौ चक्रभावतः ।
यत्र स्तस्तत् तदादिष्टं बालव्यजनचालनम् ॥८०१॥ 806

१ देखिए, 'स्यंक' भरतकोश, पृ० ८१५।

जहाँ दोनो हाथ बारी-बारी से कलाई से कुहनी तक के भाग को छोड़कर स्कन्ध पर पहुँच कर लोटने लगे और फिर चक्राकार धारण कर नीचे चले जाय, तो उसको **बालव्यजन** चालन कहते है।

२३ **विरुडिबन्धन**

> **अनुसृत्य त्रिकोणत्वं करो यत्र विलोड्यते ।**
> **पुरतः पार्श्वयोस्तद्वद् यदा मण्डलवृत्तित. ।** 807
> **चालकज्ञास्तदा प्राहुरिद विरुडिबन्धनम् ।।८०२।।**

जब हाथ त्रिकोण बनाकर हिलाया जाता है और उसी तरह मण्डलाकार मे आगे तथा दोनो पार्श्वों मे चलाया जाता है, तब चालन के विशेषज्ञ लोग उसे **विरुडिबन्धन** चालन कहते है।

२४ **विभृगाटकबन्ध**

> **प्रतिलोमानुलोमाभ्या भवेदेतस्य या क्रिया ।** 808
> **विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तद्विदस्तदवादिषुः ।।८०३।।**

इसी विरुडिबन्धन नामक चालन क्रिया को यदि अनुलोम-विलोम-भाव से सम्पन्न किया जाय, तो चालनज्ञो ने उसे **विभृगाटकबन्ध** चालन कहा है।

२५ **कुण्डलिचारक**

> **विलोड्यते यत्र करो वामदक्षिणयोर्यदि ।** 809
> **गतागते दधद् दिक्षु तिर्यग्व्यावर्तिता पुनः ।**
> **सद्भिरेतत् समादिष्टं तदा कुण्डलिचारकम् ।।८०४।।** 810

यदि बाये-दाये क्रम से हाथ को चलाया जाय और दिशाओ मे यातायात करते हुए उस हाथ को तिरछा घुमाया जाय तो सज्जन लोग उसे **कुण्डलिचारक** चालन कहते है।

२६ **धनुराकर्षण**

> **स्वस्तिकीकृतयोः पाण्योर्वेगात् तिर्यक् प्रसर्पतोः ।**
> **पार्श्वेऽथैककरोऽकस्मान्निवृत्त्य यदि कर्णग. ।** 811
> **धनुराकर्षणं प्रोक्तं तदा त्वन्वर्थनामकम् ।।८०५।।**

स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित दोनो हाथो को पार्श्व मे तिरछा करके चालाया जाय और फिर एक हाथ को अकस्मात् लोटाकर कान पर ले जाया जाय, तो उसे अर्थानुरूप नाम वाला **धनुराकर्षण** चालन कहते है।

२७ हारदामविलासक

भुजावंसान्तरं गत्वा युगपत् पार्श्वयोर्द्वयोः । 812
पतेतां यत्र तत् प्रोक्तं हारदामविलासकम् ॥८०६॥

जब दोनो भुजाएँ कन्धो के बीच मे जाकर एक साथ दोनो पार्श्वों मे गिरते है, तब उसे **हारदामविलासक** चालन कहते है ।

२८ समप्रकोष्ठ

समप्रकोष्ठचलनमन्वर्थं सद्भिरीरितम् ॥८०७॥ 813

सज्जनो ने **समप्रकोष्ठ चालन** नामक चालन को अन्वर्थ बताया है, अर्थात् समप्रकोष्ठ (कलाई से कुहनी तक के भाग) पर हाथ के चलने को **समप्रकोष्ठ** चालन कहते है ।

२९ मुरजाडम्बर

गत्वा विदिशि तत्रैव भवेदादत्तमण्डलः ।
सव्यापसव्यतो यत्र पार्श्वयोर्वर्तनान्वितः ॥८०८॥ 814
दक्षिणस्तु ततो वामस्कन्धदेशमुपाश्रितः ।
क्षिप्र विदिशि यात्वाथ लुठितः सव्यपार्श्वके ॥८०९॥ 815
ततोऽन्यस्मिन् करे तिर्यक् नाभिदेशसमीपगे ।
लुठत्येतत् समादिष्टं मुरजाडम्बरं बुधैः ॥८१०॥ 816

दो दिशाओ के बीच (कोण) मे जाकर वही मण्डल बना लिया जाय, फिर बाये-दाये क्रम से पार्श्वो मे वर्तना से युक्त दाहिने हाथ को बाये कन्धे पर रख दिया जाय, अनन्तर शीघ्रतापूर्वक बाये पार्श्व मे दाहिने हाथ को लोटा दिया जाय, तत्पश्चात् बाये हाथ को नाभिदेश मे तिरछा करके लोटा दिया जाय । इसी क्रिया को बुधगण **मुरजाडम्बर** चालन कहते है ।

३०. तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र

प्रसृतौ पार्श्वयोः पूर्व हस्तकौ तदनन्तरम् ।
मिथोऽभिमुखतां प्राप्य जातस्वस्तिकबन्धनौ ॥८११॥ 817
पुरतो धावतो यस्मिन् सविलासं यदा तदा ।
तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं तत् सुमन्तुरभाषत ॥८१२॥ 818

पहले दोनो हाथो को पार्श्वों मे फैला दिया जाय, तदनन्तर एक-दूसरे के आमने-सामने करके दोनो को स्वस्तिक मुद्रा मे बाँध कर आगे की ओर हाव-भाव के साथ चलाया जाय, इस क्रिया को आचार्य समन्तु ने **तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र** चालन कहा है ।

३१ देवोपहारक

अरालकपरावृत्तेरुभयो· पार्श्वयोरपि ।
सरलप्रसृतस्याग्रे करस्य लुठति स्वयम् ।।८१३।। 819
सम्प्राप्य कूर्परक्षेत्र परो लुठति यत्र तत् ।
देवोपहारकं प्रोक्तं तदा नृत्तविचक्षणैः ।।८१४।। 820

दोनो पार्श्वो मे अराल हस्त को परिवर्तित करके एक हाथ को सीधा फैलाकर स्वय लोटा दिया जाय, फिर कुहनी के आस-पास दूसरे हाथ को लोटा दिया जाय । इस क्रिया को नृत्य के विद्वानो ने **देवोपहारक** चालन कहा है ।

३२ अलातचक्र

कश्चिदन्तर्बहिश्चक्रचरो हस्तः पराङ्मुखः ।
अन्यो विडम्बनां धत्तेऽलातचक्रस्य चेद् तदा । 821
अलातचक्रमाख्यातं सद्भिरन्वर्थनामकम् ।।८१५।।

बाहर भीतर चक्र के समान चलने वाला एक हाथ किसी ओर से मुँह मोड ले और दूसरा हाथ अलातचक्र का अनुकरण करे, तो सज्जन लोग उसका अन्वर्थ (अर्थानुरूप) नाम **अलातचक्र** बताते है ।

३३. साधारण

कटिदेशगतौ हस्तौ तिर्यग्यदि विलोडितौ । 822
ततोऽन्तर्मण्डलभ्रान्तावथवा बहिरेकदा ।
यत्र साधारणमदश्चालनं कथितं तदा ।।८१६।। 823

यदि दोनो हाथ कमर पर तिरछे चलाये जायँ और उसके बाद भीतर अथवा बाहर एक बार मण्डलाकार मे घुमाये जायँ, तो उसको **साधारण** चालन कहते है ।

३४. उरभ्रकसम्बाध

स्वस्तिकाकृतितां नीत्वा निष्क्रान्तौ बहिरेव चेत् ।

करो निवृत्तौ वेगेन मिथः सांमुख्यधारिणौ । 824
यत्रोरभ्रकसम्बाधचालनं तत् तदेरितम् ।।८१७।।

यदि दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाकर बाहर ही निकाला जाय और फिर एक-दूसरे के आमने-सामने करके वेग से हटा दिया जाय, तो उसको **उरभ्रकसम्बाध** चालन कहते हैं।

३५ मणिबन्धगतागत

मणिबन्धे यदैकस्य करो विलुठितोऽपरः । 825
बहिर्मण्डलगः स्थित्वा तथान्तर्मण्डलैस्तदा ।
यस्मिन् प्रवर्तते तत् स्यान् मणिबन्धगतागतम् ।।८१८।। 826

जब एक हाथ की कलाई पर दूसरा हाथ लोटा दिया जाता है और फिर उसको बाहर के गोल घेरे में रखकर भीतर के गोल घेरे में कर दिया जाता है, तब उसे **मणिबन्धगतागत** चालन कहते हैं।

३६ तार्क्ष्यपक्षविनोदक

वर्तनास्वस्तिकीभूय विधुतौ युगपत् करौ ।
पार्श्वयोर्लोडितौ प्रोक्तौ तार्क्ष्यपक्षविनोदकम् ।।८१९।। 827

यदि दोनों हाथों को वर्तनास्वस्तिक चालन बनाकर एक साथ कम्पित किया जाय और फिर दोनों पार्श्वों में सचालित किया जाय, तो उसे **तार्क्ष्यपक्षविनोदक** चालन कहते हैं।

३७ धनुर्वल्लीविनामक

कृत्वोर्ध्वाधोमुखौ हस्तौ विलासात् क्रमतो यदि ।
मण्डलाकृतिसम्भ्रान्तौ ततस्तावेव पूर्ववत् ।।८२०।। 828
शीर्षदेशे कटीदेशे पार्श्वयोर्नतिसंयुतौ ।
स्यातां यत्र तदा तत् स्याद् धनुर्वल्लीविनामकम् ।।८२१।। 829

यदि दोनों हाथों को हाव-भावपूर्वक क्रमश ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख करके मण्डलाकार में घुमाया जाय और फिर उन्हीं को पूर्ववत् सिर पर, कमर पर तथा पार्श्वों में झुकाकर अवस्थित किया जाय, तो उसे **धनुर्वल्लीविनामक** चालन कहते हैं।

३८. तिर्यक्ताण्डव

पूर्वमूर्ध्वं विधायैकं तिर्यग् नाभिप्रदेशगम् ।

अपरं करमारच्य तिर्यक् पार्श्वान्तरं गतम् । 830
जायते या क्रिया तत् स्यात् तिर्यक्ताण्डवचालनम् ॥८२२॥

पहले एक हाथ को नाभिप्रदेश में तिरछा करके ऊर्ध्वमुख किया जाय फिर दूसरे हाथ को दूसरे पार्श्व में तिरछा किया जाय, तो ऐसी क्रिया को तिर्यक्ताण्डव चालन कहते हैं।

३९ व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक

यत्र पार्श्वमुखौ पूर्वं निःसृतौ त्वरया करौ । 831
तीक्ष्णकूर्परकौ स्याता श्लिष्टपूर्वमुखौ ततः ।
धराभिमुखौ तत् स्याद् व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥८२३॥ 832

जहाँ दोनो हाथ पार्श्व की ओर मुँह करके शीघ्रता से निकले, फिर तीक्ष्ण कुहनी वाले दोनों के मुख सट जाँय, पश्चात् वे पृथ्वी की ओर अभिमुख हों, तो ऐसी क्रिया को व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक चालन कहते हैं।

४० कररेचितरत्न

पार्श्वयोः प्रथमं यात्वा विदिश्यपि ततोऽनु च ।
संयतस्वस्तिकौ स्यातां कटिमूर्ध्वगतौ मिथ ॥८२४॥ 833
बालव्यजनचालाख्यक्रियां प्राग्वत्समाश्रितौ ।
वर्तनास्वस्तिकं कृत्वा ततो भूतलसम्मुखौ ॥८२५॥ 834
उद्गतौ मण्डलाकार स्वस्तिकौ पतितावध. ।
विधायैकं नितम्बाख्यमपर रथचक्रवत् ॥८२६॥ 835
भ्रामयित्वा विलासेन कर्मणान्दोलनेन च ।
सरलोत्सारितोद्वेष्टप्रसारितविनम्रकैः ॥८२७॥ 836
अंसान्ते लुठितौ स्वैरमेकैकं मण्डलोर्ध्वगौ ।
निर्गताभिमुखौ स्याता भुजौ पर्यायतो यदि ॥८२८॥ 837
पतितोत्पतितौ शीर्षात् कटिक्षेत्रावसानकम् ।
पश्चात् स्वस्तिकबन्धेन रमणीयेषु केष्वपि ॥८२९॥ 838
द्रुतं तत्र प्रदेशेषु वामदक्षिणघूर्णितौ ।
अन्तर्बहिश्चक्रचरौ सविलासौ ततः परम् ॥८३०॥ 839

४१. मण्डलाभरण

अभ्यन्तरप्रवेशेन परिभ्राम्य तु चक्रवत् ।
पश्चाद् विलोड्य दोलावत् क्रियया पार्श्वयोर्यदा । 845
प्रातिलोम्येन यद्वेदं मण्डलाकरणं तदा ।।८३६।।

जब दोनो हाथ भीतर प्रवेश के साथ चक्र की तरह घूमकर दोनो पार्श्वो मे डोले की तरह झूले अथवा विपरीत भाव से उक्त क्रियाएँ हो, तो उसे **मण्डलाभरण** चालन कहते है ।

४२ अष्टबन्धविहार

बामदक्षिणपाश्चात्य [पु] रोदेशेषु सर्वतः । 846
मण्डलस्वस्तिको यात्वा क्रमेण सविलासकौ ।।८३७।।
दिशास्वष्टासु चेद्धस्तौ लुठितौ यत्र तत्तदा । 847
अष्टबन्धविहाराख्यमादिष्टं नृत्तकोविदैः ।।८३८।।

जब मण्डल और स्वस्तिक का आकार धारण किये हुए दोनो हाथ क्रमश विलासपूर्वक बाये, दाये, पीछे और आगे सब ओर आठो दिशाओ मे जाकर लोटते ह, तब नृत्य के विद्वानो ने उसे **अष्टबन्धविहार** चालन कहा है ।

४३ शरसन्धानक

पराङ्मुखे लुठत्येककरे सति विलासतः । 848
परः करो मूर्धदेशपर्यन्तं चेद् गतागतः ।।८३९।।
पुनस्तन्मुख एव स्याच्छरसन्धानकं तदा ।।८४०।। 849

जब एक हाथ पराङ्मुख होकर हाव-भाव के साथ लोटता है और दूसरा हाथ सिर तक जाता-आता हुआ पुन उसी के सम्मुख रहता है, तब उसे **शरसन्धानक** चालन कहते ह ।

४४. पर्यायगजदन्तक

लुठत्येककरो तिर्यगथान्यस्तु प्रसारितः ।
पर्यायाद् यत्र तत् प्रोक्तं पर्यायगजदन्तकम् ।।८४१।। 850

जहाँ बारी-बारी से एक हाथ तिरछा होकर लोटता है और दूसरा फैलता है, वहाँ उसे **पर्यायगजदन्तक** चालन कहते है ।

४५. असपर्यायनिर्गत

बध्वा तु स्वस्तिकं पूर्वं कलाससमये यदा ।
निर्गतावंसदेशाच्च पर्यायात् कटिदेशगौ । 851
करौ यत्र तदोक्तं तदंसपर्यायनिर्गतम् ।।८४२।।

जब कलास नामक बाजा के वजने के समय दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा मे बाँधकर कन्धे के प्रदेश से निकाल कर बारी-बारी से कमर के प्रदेश मे पहुँचा दिया जाता हे, तब उसे **असपर्यायनिर्गत** चालन कहते है ।

४६ स्वस्तिकत्रिकोण

विधाय स्वस्तिकौ पाश्चादाकुञ्च्य पुनरूर्ध्वगौ । 852
वामांसक्षेत्रपर्यन्तं करौ यदि गतौ तदा ।
तत् स्वस्तिकत्रिकोणाख्यमवदन् पूर्वसूरयः ।।८४३।। 853

जब दोनो हाथो को स्वस्तिकाकार वनाकर पश्चात् मिकोड कर पुन कन्धे के क्षेत्र तक ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है, तब पूर्वाचार्यो ने उसे **स्वस्तिकत्रिकोण** चालन कहा हे ।

४७ रथनेमिसम

आदिमध्यावसानेषु दधतौ स्वस्तिकाकृती ।
रथचक्रकृती तिर्यगेकदा क्रमतोऽथवा । 854
हस्तौ विलुठितौ यत्र रथनेमिसमं विदुः ।।८४४।।

जब दोनो हाथ आदि, मध्य ओर अवसान मे एक साथ या क्रमश स्वस्तिक का आकार तथा रथ के पहिए का आकार धारण करके लोटते है, तब उसे **रथनेमिसम** चालन कहते है ।

४८ लतावेष्टित

अन्तर्बहिः करावूर्ध्वं वलित्वोद्वेष्टितौ यदि । 855
पार्श्वयोः क्रमतस्तत्र तिर्यग् लुठति चैकके ।
लुठितोऽन्यः करो यत्र तल्लतावेष्टितं तदा ।।८४५।। 856

जब दोनो हाथ भीतर, बाहर तथा ऊपर वक्र गति से जाकर चारो ओर से घिर जायँ और दोनो पार्श्वो मे दोनो हाथ लोटने लगे, तो उसे **लतावेष्टित** चालन कहते है ।

४९ कर्णयुग्मप्रकीर्ण

उपकर्णं यदा तिर्यग्लुठितौ क्रमतः करौ ।
निजे पार्श्वे पुरोदेशपर्यन्तं यत्र तत्तदा । 857
कर्णयुग्मप्रकीर्णाख्यं चालकं कथितं बुधैः ॥८४६॥

जब दोनो हाथ तिरछे होकर कानो के समीप, अपने पार्श्व मे और अग्रभाग मे क्रमश लोटते है, तब विद्वानो ने उसे **कर्णयुग्मप्रकीर्ण** चालन कहा है ।

५० नवरत्नमुख

विश्लिष्टै[1] र्वर्तिताद्यैश्च नवभिर्दशभिश्च वा । 858
उक्तैः संसर्गरूपेण रचितैश्चालकैर्यदि ॥८४७॥
आकेशबन्धमुत्क्षिप्तैः पश्चात्स्वस्तिकतां गतैः । 859
ततोऽन्याङ्गपरावृत्तौ धरासम्मुखतां गतौ ॥८४८॥
मण्डलाकारसम्प्राप्तौ तिरश्चीनौ ततः परम् । 860
आविद्धावपविद्धौ च युगपत् क्रमतोऽथवा ॥३४९॥
तत्कालार्हक्रियायोग्यौ तदान्दोलनसंयुतौ । 861
करावेवं यत्र तत् स्यान्नवरत्नमुखं तदा ॥८५०॥

उक्त नौ या दस अलग-अलग वर्तनाओ के सम्पर्क से बनाये हुए, जूडे तक उछाले हुए और पश्चात् स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त किये हुए चालनो से दोनो हाथो को अन्य अगो पर घुमाकर पृथ्वी के सम्मुख किया जाय, फिर तिरछा करके मोड दिया जाय और दूर फेक दिया जाय, अनन्तर एक साथ या क्रमश तत्कालोचित क्रिया के योग्य आन्दोलन से युक्त किया जाय, अर्थात् हिलाया-डुलाया जाय । ऐसी क्रिया को **नवरत्नमुख** चालन कहते है ।

मतान्तर से अन्य भेद

दिग्वर्षाख्यमनङ्गाङ्गमोटनं तोरणाभिधम् । 862
अनङ्गोद्दीपनं चाथ तथा मुरजकर्तरी ।
पञ्चेति चालकानि स्युरधिकानि मतान्तरे ॥८५१॥ 863

---

१ देखिए : 'वर्णिता' भरतकोश, पृ० ८६४

दूसरे मत से चालनो के पॉच भेद और अधिक है १ दिग्वर्ष, २ अनगागमोटन, ३ तोरण, ४ **अनगोद्दीपन** और ५ मुरजकर्तरी ।

१. दिग्वर्ष

पुरस्तात्पार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वं पश्चाच्च लोडितः ।
करो यत्र तदुद्दिष्टं दिग्वर्षाभिधचालनम् ॥८५२॥ 864

जहाँ आगे, दोनो पार्श्वो मे, तिरछे, ऊपर ओर पीछे हाथ चलाया जाता है, वहाँ **दिग्वर्ष** नामक चालन होता है ।

२. अनगागमोटन

यदा मण्डलतो हस्तौ लुठित्वा स्कन्धदेशयोः ।
तद्वद् यत्र शिरःक्षेत्रे नयनानन्ददायकैः । 865
लोडितौ तदनङ्गाङ्गमोटनं कीर्तितं तदा ॥८५३॥

जब दोनो हाथ मण्डल बनाकर दोनो कन्धो पर लोटे और उसी तरह नेत्रानन्ददायक हाव-भावो से वे शिर पर लौटे तो उसे **अनगागमोटन** चालन कहते है ।

३ तोरण

पुरस्तात्स्वस्तिकौ भूत्वा ततो विच्युतितां गतौ । 866
पार्श्वयोर्लोडनैः प्राप्य पुनः स्वस्तिकबन्धनौ ॥८५४॥
स्थित्वा शीर्षोपरि करौ ततस्तौ वियुतौ पुरः । 867
लोडितौ यत्र तत् प्रोक्तं चालकं तोरणाभिधम् ॥८५५॥

पहले दोनो हाथो को स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तदनन्तर अलग-अलग करके दोनो पार्श्वो मे हिलाया-डुलाया जाय, फिर स्वस्तिक मुद्रा मे बॉधकर सिर के ऊपर रख दिया जाय, तत्पश्चात् अलग-अलग करके चलाया जाय । इसी को **तोरण** नामक चालक (चालन) कहते है ।

४ अनगोद्दीपन

विलोड्योरःस्थले हस्तौ क्रमादादत्तमण्डलौ । 868
विलासेनांसपर्यन्तं गत्वाभ्यन्तरमागतौ ॥८५६॥
उद्वेष्टितक्रियापूर्वं यत्राधोवदनौ यदा । 869
विद्वद्भिस्तत्समादिष्टमनङ्गोद्दीपनं तदा ॥८५७॥

वक्ष स्थल पर दोनो हाथो को क्रमश हिलाकर मण्डलाकार बना दिया जाय, फिर हाव-भावपर्वक उन्हे कन्धे तक ले जाकर भीतर कर लिया जाय, अनन्तर चारो ओर से घुमाकर उन्हे अधोमुख किया जाय। इस क्रिया को विद्वानो ने **अनगोद्दीपन** चालन कहा है।

५ मुरजकर्तरी

अंसावधि स्तनक्षेत्राद् भ्रान्त्वा मण्डलवृत्तितः । 870
ततो वक्ष-स्थलं प्राप्तौ मुहुर्निक्षिप्य पार्श्वतः ।।८५८।।
अधस्तत्र व्रजत्येको द्वितीयो मण्डलभ्रमः । 871
विलोडितो यदा पश्चादुभौ हस्तौ कटिस्थितौ ।
अन्योन्याभिमुखौ भ्रान्तौ तदा मुरजकर्तरी ।।८५९।। 872

दोनो हाथो को स्तनप्रदेश से लेकर कन्धे तक मण्डलाकार मे घुमाकर वक्ष स्थल पर ले आया जाय, उनमे से एक हाथ को बगल से बार-बार फेक कर नीचे किया जाय ओर दूसरे को मण्डलाकार मे घुमाकर कम्पित किया जाय, पश्चात् दोनो हाथो को कटि पर रखकर एक-दूसरे के सामने-सामने कर दिया जाय। ऐसी क्रिया को **मुरजकर्तरी** चालन कहते है।

अमी नृत्तस्य तु प्राणाश्चालकाः सुमनोहराः ।
प्रायो वाद्यप्रबन्धेषु प्रयुज्यन्ते विचक्षणैः ।।८६०।। 873

वे सुन्दर चालक (चालन) नृत्य के प्राण है। विद्वान् लोग बहुधा वाद्य-प्रबन्धो मे (अर्थात् वाद्यो के साथ) इनका प्रयोग करते है।

भूरिनिर्भुजचेष्टाभिः सम्भवन्तोऽप्यनेकशः ।
अमी केचित् समासेन दृष्टान्तार्थं मयोदिताः ।।८६१।। 874
अनयैव दिशा ज्ञेयाः सद्भिरन्येऽपि चालकाः ।
ग्रन्थविस्तारसंत्रासान्नातिविस्तर ईरितः ।।८६२।। 875

बिना भुजा की अनेक चेष्टाओ द्वारा अनेकानेक चालनो की सभावना होने पर भी मैने सक्षेप मे कुछ चालन बताये है। इसी रीति से सज्जन लोग अन्य चालनो का भी ज्ञान कर ले। ग्रन्थ-विस्तार के भय से बहुत विस्तार मे चालनो पर प्रकाश नही डाला गया है।

समवेत रूप मे पचपन चालको का निरूपण समाप्त



स्थानकों का निरूपण

स्थानक (खडे होने का ढग)

रङ्गं प्रविश्य यैः स्थित्वा चार्यादी रचयेत्क्रियाः ।
नर्तको यत्नतस्तावत्स्थानान्येतान्यहं ब्रुवे ॥८६३॥ 876

नर्तक या अभिनेता रगमच पर प्रवेश कर जिनके द्वारा चारी (पाद-चेष्ठा-विशेष) आदि क्रियाओ को सम्पन्न करे उन स्थानो का निरूपण किया जा रहा है ।

भावार्थे तिष्ठतेर्धातोरायाते प्रत्यये ल्युटि ।
स्थाने सिद्धे तत. पश्चात् स्वार्थे कप्रत्यये सति । 877
स्थानकं साधितं तस्य लक्षणं प्रतिपादये ॥८६४॥

स्था धातु से भाव अर्थ मे **ल्युट्** प्रत्यय होने पर **स्थान** शब्द निष्पन्न होता है । फिर उससे स्वार्थ मे **क** प्रत्यय होने पर **स्थानक** शब्द की सिद्धि होती है । अब उसका (स्थानक का) निरूपण किया जाता है ।

निश्चलात्माङ्गविन्यासविशेषात् स्थानकं मतम् ॥८६५॥ 878

अगो को निश्चल करके अवस्थित होने की क्रियाविशेष से स्थानक की रचना होती है ।

पुरुष स्थानक के भेद

वैष्णवं समपादं च तथा वैशाखमण्डले ।
आलीढं च तथा प्रत्यालीढं स्थानानि पुंसि षट् ॥८६६॥ 879

पुरुष के छह स्थानक होते है १ **वैष्णव**, २ **समपाद**, ३ **वैशाख**, ४ **मण्डल**, ५ **आलीढ** और ६ **प्रत्यालीढ**।

स्त्रियो के स्थानक के भेद

आयताख्यावहित्थाख्ये तथाश्वक्रान्तसञ्ज्ञकम् ।
स्त्रीणां त्रीणि स्युरेतानि स्थानानीति मुनेर्मतम् ॥८६७॥ 880

भरत मुनि के मत से स्त्रियो के तीन स्थानक होते है १ **आयत**, २ **अवहित्थ** और ३ **अश्वक्रान्त**।

अन्य स्थानक के भेद

अथापि चेति स्वग्रन्थे भ[illegible]न्यान्यसूदयत् ।
मुनिस्तु यानि चत्वारि तानि स्थानान्यहं ब्रुवे । 881
गतागतं च बलितं मोटित विनिर्वर्तितम् ॥८६८॥
अत्रैव केचिदिच्छन्ति पञ्चमं प्रोन्नताभिधम् ॥८६९॥ 882

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे जिन अन्य चार स्थानको की सूचना दी ह, उनको-भी यहाँ बताया जा रहा है। उनके नाम है १ गतागत, २ बलित, ३ मोटित और ४ विनिर्वतित। किसी के मत से ५ प्रोन्नत पाँचवाँ स्थानक होता हे ।

देशी स्थानक के भेद

त्रयोविंशतिमाचक्षे देशीस्थस्थानकान्यहम् ।
समपादं स्वस्तिकं च सहृतं वर्धमानकम् ॥८७०॥ 883
नन्द्यावर्त चैकपादं चतुरस्राभिधं तथा ।
पृष्ठोत्तानतल पार्ष्णिविद्धं सूचि समाद्यपि ॥८७१॥ 884
विषमादि च खण्डाद्यं पार्ष्णिपार्श्वगत तथा ।
एकपार्श्वगताख्यं च परावृत्ताभिध तथा ॥८७२॥ 885
एकजानु[नताख्य च ब्राह्मं वैष्ण]वमित्यपि ।
कूर्मासन गारुडं च वृषभासनमित्यपि ॥८७३॥ 886
नागवन्धम्–

देशीस्थ स्थानको के तेईस भेदो के नाम इस प्रकार है १ समपाद, २ स्वस्तिक, ३ सहृत, ४ वर्धमानक, ५ नन्द्यावर्त, ६ एकपाद, ७ चतुरस्र, ८ पृष्ठोत्तानतल, ९ पार्ष्णिविद्ध, १० समसूचि, ११ विषमसूचि, १२ खण्डसूचि, १३ पार्ष्णिपार्श्वगत, १४ एकपार्श्वगत, १५ परावृत्त, १६ एकजानुनत, १७ ब्राह्म, १८ वैष्णव १९ शैव, २० कूर्मासन, २१ गारुड, २२ वृषभासन और २३ नागबन्ध ।

उपविष्ट स्थानक के भेद

–अथ स्वस्थं स्थानमन्यन्मदालसम् ।
विष्कम्भं च तथा क्रान्त[मुत्कटं] मुक्तजानु च ॥८७४॥ 887

विमुक्तकं जानुगतमथ स्वस्थालसाभिधम् ।
नवोप [विष्टस्था]नानि प्राहेति भरतो मुनिः ।।८७५।। 888

भरत मुनि ने बैठने के नौ स्थान बताये है १ स्वस्थ, २ मदालस, ३ विष्कम्भ, ४ क्रान्त, ५ उत्कट, ६ मुक्तजानु, ७ विमुक्तक, ८ जानुगत और ९ स्वस्थालस।

सुप्त स्थानक

समं नताकुञ्चिते च प्रसारितविवर्तिते ।
[उद्वा]हित तथा सुप्तस्थानकानि भवन्ति षट् ।।८७६।। 889

सुप्त स्थानको के छह भेद होते हे १ सम, २ नत, ३ आकुञ्चित,४ प्रसारित,५ विवर्तित और ६ उद्वाहित।

स्थानको की सम्पूर्ण सख्या

अथ स्थानानि षट् पुसामष्टान्यान्यपि योषिताम् ।
त्रयोविशतिरन्यानि देशीस्थान्यासने नव ।।८७७।। 890
स्थानान्यथ तथा सुप्तस्थानान्येतानि षट्विधा ।
द्वापञ्चाशदिमानीति मिलितान्येव तान्यपि । 891

पुरुषो के छह स्थानक है, स्त्रियो के स्थानक आठ, देशी स्थानक तेईस आसन स्थानक नौ और सुप्तस्थानक छह है। ये सब कुल मिलाकर बावन होते ह।

विनियोग

अथैतेषा क्रमाल्लक्ष्म सर्वेषा ब्रूमहेऽधुना ।।८७८।।

अब क्रमश उन सबके लक्षण-विनियोग बताये जा रहे ह।

छह पुरुष स्थानक (१)

१ वैष्णव और उसका विनियोग

समस्थितोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यस्त्र्यस्रः पक्षस्थितोऽथ वा । 892
तालौ द्वावर्धतालश्च तयोरन्तरमीरितम् ।।८७९।।
जङ्घा मनाग् नता तु स्यात्सौष्ठवं यत्र तत्तदा । 893
वैष्णवं स्थानकं प्रोक्तं विष्णुरस्याधिदैवतम् ।।८८०।।

जब एक पैर समभाव मे (सीधा) स्थित और दूसरा त्र्यस्र या पक्षस्थित हो, दोनो मे ढाई ताल का अन्तर हो, और जँघा सौष्ठवता के साथ कुछ झुकी हो, तो उसे **वैष्णव स्थानक** कहते हैं। इस स्थान के अधिष्ठाता देवता विष्णु है।

नानाकार्यान्तिरोपेतं संलापे तु स्वभावजे । 894
पुम्भिर्नियुज्यतेत्वेतदुत्तमैर्मध्यमैरपि ।
इत्याह मुनिरन्ये तु विष्णुवेषानुकारिणा ॥८८१॥ 895
नटेनेत्यवदन्नृत्ये नाट्यस्थितिविधायिना ।
[सू]त्रधारादिनेत्याहुः –

भरत मुनि का कहना है कि स्वाभाविक बातचीत और उत्तम तथा मध्यम पुरुषों द्वारा नाना प्रकार के कार्यो का भाव प्रकट करने मे **वैष्णव स्थानक** का विनियोग होता है। अन्य आचार्यो का कहना है कि विष्णु का स्वरूप बनाये हुए नट को इसका प्रयोग करना चाहिए। दूसरे आचार्यो का अभिमत है कि अभिनय मे नाट्य की स्थिति का विधान करने वाले सूत्रधार आदि को इसका उपयोग करना चाहिए।

–अथ पक्षस्थितस्त्वसौ ॥८८२॥ 896
यो भवेच्चरणः पार्श्वमुखाङ्गुल्या[भिमुख्य]भाक् ।
स एव चेत्पुरोदेशे गतोऽभिमुखता तदा ॥८८३॥ 897
त्र्यस्रः स्यादथ हस्तस्याङ्गुल्यावङ्गुष्ठमध्यमे ।
प्रसारिते तु ये स्यातामन्तरालं तदग्रयोः ॥८८४॥ 898
तालमत्र समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणी ।

पक्षस्थित चरण वह कहलाता है, जिसके सम्मुख बगल की ओर उँगलियाँ उन्मुख हो। वही चरण यदि अग्रभाग मे सम्मुख होने का भाव प्रकट करे, तो वह **त्र्यस्र** कहलाता है। हाथ की उँगलियो मे से अँगुष्ठ और मध्यमा उँगलियो को फैलाने पर उन दोनों के अग्र भागों की जो दूरी होती है, उसे महाराज अशोकमल्ल ने **ताल** कहा है।

शिरोंसकूर्परं तुल्यं यत्र जानुसमा कटी ॥८८५॥ 899
समुन्नतमुरः सन्नमङ्गं तत्सौष्ठवं मतम् ।
स्वस्थाननिर्गतं सन्नं निषण्णं निश्चलं स्थितम् ॥८८६॥ 900

जहाँ सिर, कन्धे और कुहनी बराबर (समभाव मे स्थित) हो, कटि उन के समान (समभाव मे स्थित) हो,

वक्ष स्थल उन्नत हो, और अन्य अग मन्न हो, उसे सौष्ठव कहते है। अपने स्थान मे (स्वाभाविक रूप मे) निर्गत अग को **सन्न** और निश्चल को **निषण्ण** कहते है।

अनत्युच्चं चलत्पादमकुब्जकमचञ्चलम् ।
अङ्गमिष्टं सौष्ठवेन योऽयमुत्त [मध्य] मै. ॥८८७॥ 901

जो बहुत ऊचा न हो, जिसके पैर चल रहे हो और जो कुबडा नहीं चचल न हो, ऐसे सुरुचिकर शरीर को उत्तम तथा मध्यम श्रेणी के नर्तको को सौष्ठव मे प्राप्त करना चाहिए।

स्थानकं वैष्णवं त्वेतच्चतुरस्रस्य जीवनम् ॥८८८॥

यह **वैष्णव स्थानक** चतुरस्र का जीवन है।

स्थानकं वैष्णवं यत्र कटीनाभिगतौ करौ । 902
क्रमतो युगपद्वाथ वक्षश्चैव समुन्नतम् ।
चतुरस्रं तदाचष्ट वीरसिंहात्मजः सुधीः ॥८८९॥ 903

जहाँ दोनो हाथ एक साथ या क्रमश कटि और नाभि पर पहुचे तथा वक्ष स्थल अत्यन्त उन्नत हो उस वैष्णव स्थानक को विद्वान् अशोकमल्ल ने **चतुरस्र** कहा है।

२ समपाद और उसका विनियोग

एकतालान्तरौ पादौ समौ सौष्ठवसयुतो ।
यत्रैतत् समपादाख्यं स्थानकं ब्रह्मदैवतम् ॥८९०॥ 904

जहाँ एक ताल के अन्तर पर दोनो पैर समान रूप मे सौष्ठव के साथ युक्त हो, वहा **समपाद स्थानक** होता है। उसका अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा है।

एतद् द्विजातिदत्ताशीरङ्गीकारेऽथ दर्शने ।
पक्षिणा वरवध्वोश्च तथा लिङ्गिव्रतिष्वपि । 905
स्यन्दनस्थे विमानस्थे नियोज्यं नृत्तपण्डितैः ॥८९१॥

ब्राह्मणो द्वारा दिये गये आशीर्वाद के स्वीकार, दर्शन, पक्षियो के निरूपण, वर-वधुओ, ब्रह्मचारी, व्रती (सन्यासी), रथारूढ ओर विमानारूढ के अभिनय मे इस आसन का विनियोग होता है।

३ वैशाख और उसका विनियोग

त्र्यस्रपक्षस्थितौ पादौ सार्धतालत्रयान्तरौ । 906

निषण्णौ तु नभस्यूरू यत्रोर्ध्व तावदन्तरौ ॥८९२॥
भुवो विशाखदैवं तद्वैशाखं स्थानकं मतम् । 907

जहाँ दोनो पैर त्र्यस्र तथा पक्षस्थित हो, दोनो मे साढे तीन ताल का अन्तर हो, और जँघाएँ आकाश मे स्थित (अर्थात् भूमि से ऊपर उठी) हो, तो उसे **वैशाख स्थानक** कहते है। उसका अधिष्ठाता देवता विशाख (स्कन्द) है।

प्रेरणे वाजिनामाजौ तथा रङ्गप्रवेशने ।
वाहने वेगदाने च स्थूलपक्षिनि [री] क्षणे ॥८९३॥ 908

घोडो को हाँकने या ऊपर चढने, युद्ध, रगभूमि मे प्रवेश करने, वाहन, वेगवान ओर स्थल पक्षियो के निरीक्षण मे उसका विनियोग होता है।

४ मण्डल और उसका विनियोग

त्र्यस्रौ पक्षस्थितौ पादावेकतालान्तरौ क्षितौ ।
निषण्णौ व्योम्नि यत्रोरू सार्धतालद्वयान्तरे ॥८९४॥ 909
कटीजानुसमौ तत् स्यान्मण्डलं शक्रदैवतम् ।

जहाँ दोनो पैर त्र्यस्र मुद्रा मे पक्षस्थित हो, दोनो मे एक ताल का अन्तर हो, दोनो भूमि पर अवस्थित हो, दोनो जँघाएँ ढाई ताल के अन्तर पर आकाश मे स्थित हो, और कटिभाग जँघाओ के बराबर हो, तो उसे **मण्डल स्थानक** कहते है। उसका अधिष्ठाता देवता इन्द्र है।

प्रयोगे चापवज्रादेस्तथा वारणवाहने ॥८९५॥ 910
प्रेक्षणे गरुडादीनामेतन्मुनिरभाषत ।
चतुस्तालान्तरौ पादौ परेऽत्र प्रतिपेदिरे ॥८९६॥ 911

धनुष तथा वज्र आदि के चलाने, हाथी की सवारी और गरुड आदि के देखने के अभिनय मे भरत मुनि ने इस आसन का विनियोग बताया है। कुछ आचार्यो के मत से दोनो पैरो मे चार ताल का अन्तर होना चाहिए।

५. आलीढ और उसका विनियोग

वामो व्योम्नि निषण्णोरुर्यत्र पूर्वोक्तमानतः ।
अग्रे प्रसारितोऽङ्घ्रिश्च पञ्चतालान्तरेऽपरः ॥८९७॥ 912
त्र्यस्रौ द्वावपि चेत् तत् स्यादालीढं रुद्रदैवतम् ।

जहाँ उक्त मण्डल आसन के मान से बाँया उरु आकाश मे स्थित हो। एक (बाँया) पैर आगे फैलाया हुआ हो, दूसरा (दाहिना) पैर पाँच ताल के अन्तर पर स्थित हो, और दोनो पैर त्र्यस्त्र मुद्रा मे हो, तो उसे **आलीढ स्थानक** कहते है। रुद्र उसके अधिष्ठाता देवता है।

रोषेर्ष्याजनिते जल्पे तद्वद्वेदुत्तरोत्तरे ।।८९८।। 913

संहर्षास्फोटनादौ च मल्लाना वीरताकृते ।

सन्धानेऽपि च शस्त्राणा.................. ।।८९९।। 914

रोष तथा ईर्ष्या से उत्पन्न एक-दूसरे के उत्तर-प्रत्युत्तर ,पहलवानो के अत्यन्त हर्ष से ताल ठोकने और वीरता के लिए शस्त्रो के सन्धान करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

६ प्रत्यालीढ और उसका विनियोग

प्रत्यालीढं भवेत्स्थानमालीढाङ्गविपर्ययात् ।

अनेन मोक्षयेच्छस्त्रमालीढस्थानसन्धितम् ।।९००।। 915

आलीढ स्थानक के विपरीत **प्रत्यालीढ स्थानक** की रचना होती है। आलीढ स्थानक द्वारा निशाना लगाये हुए शस्त्र-विमोक्षण के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

आठ स्त्री स्थानक (२)

१ आयत और उसका विनियोग

तालान्तरे यदा वामस्त्र्यस्त्रोऽङ्घ्रिर्दक्षिणः समः ।

प्रसन्नो मुखरागः स्यात्समुन्नतमुरस्तथा ।।९०१।। 916

समुन्नतकटिर्हस्तो दक्षिणः स्यान्नितम्बगः ।

वामो लताकरो यत्र तदा तत् समुदीरितम् ।।९०२।। 917

रमात्र देवता—

जब बायाँ पैर एक ताल की दूरी पर त्र्यस्त्र मुद्रा मे तथा दाहिना पैर सम हो, मुखाकृति प्रसन्न हो, वक्ष स्थल तथा कटि समुन्नत हो , दाहिना हाथ नितम्बगामी तथा बायाँ हाथ लताकर मुद्रा मे हो, तो उसे **आयत स्थानक** कहते है। इस आसन की अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी है।

—तत्स्यात्पुष्पाञ्जलिविसर्जने ।

रङ्गावतरणारम्भे सखीप्रियतमादिभिः ।।९०३।। 918

आभाषणेऽभिलाषे च रोषे मानावलम्बने ।

प्रतिषेधे तथा स्त्रीणामीर्ष्यास्वङ्गुलिमोटने ॥६०४॥ 919
मौनविसर्जनगर्वगाम्भीर्यावाहनेष्वपि ।
एतच्चिकीर्षितासु स्याद् गतिष्वपि कृतास्वपि ॥६०५॥ 920

पुष्पाजलि समर्पित करने मे, रगभूमि पर उतरने के आरम्भ मे, सखी तथा प्रियतम आदि से वार्तालाप करने, अभिलाष, रोष, मान करने, निपेध, स्त्रियो की ईर्ष्या, उँगली चटकाने, मोन, विसर्जन, गर्व, गभीरता, आवाहन करने के लिए इच्छित ओर सम्पन्न की हुई गतियो के अभिनय मे उमका विनियोग होता हे ।

रङ्गावतरणारम्भे [illegible] ।
स्त्रीभिरेवेति तद् योज्यं पूर्वरङ्गेऽवदन्परे ॥६०६॥ 921
नरः स्त्रियोऽथवा कुर्युरिदमेव प्रवेशने ।
यथाभिनेयं स्थानं हि प्रविष्टेष्विति केचन ॥६०७॥ 922

रगभूमि पर उतरने के आरम्भ मे, पुप्पाजलि समर्पित करने मे ओर विघ्न-शान्ति के लिए अभिनय के आरम्भ मे किये जाने वाले कृत्य नान्दी पाठ आदि मे स्त्रियो को ही उसका विनियोग करना चाहिए। किन्तु अन्य आचार्यो का कहना हे कि स्त्री या पुरुप, कोई भी उमका विनियोग कर सकता हे। प्रवेश करने तथा प्रविप्ट होने के अभिनय मे भी कुछ आचार्य उसका विनियोग वताते ह ।

आयतानन्तर योज्या रङ्गावतरणादयः ।
यथोचितं तदा ज्ञेयाः प्रवारा हस्तपादजाः । 923
भट्टाभिनवगुप्तस्य मयैतन्मतमीरितम् ॥६०८॥

आयत स्थानक के अनन्तर रगभूमि पर उतरने आदि की योजना करनी चाहिए। उस समय हाथ-पेर की सचालन-क्रिया को भली भाँति समझ लेना चाहिए। यह निरूपण भट्ट अभिनव गुप्त (**अभिनवभारती** टीका के रचयिता) के मत से किया गया है।

२ अवहित्थ और उसका विनियोग

एतदेवावहित्थाख्य स्थानभङ्ग्योर्विपर्ययात् । 924
केचिद्विपश्चितोऽत्राहुर्व्यत्यास कटिहस्तयोः ॥६०९॥

अत्राधिदेवता दुर्गा–

दोनो पैरो को विपरीत क्रम मे रखने पर अवहित्थ स्थानक बनता है। यहा कोई विद्वान् कटि और हस्त मे विपर्यय बताते है। दुर्गा इस आसन की अधिष्ठातृ देवी है।

–तद् रोगे विस्मयेऽपि च । 925
चिन्तालज्जावितर्केषु सलापेऽपि स्वभावजे ॥९१०॥
स्वा [ङ्ग] वलोकने स्त्रीणां निजसौभाग्यगर्वतः । 926
वीक्षणे वरमार्गस्य [लीला] लावण्ययोरपि ।
विलासस्याप्यथाकारगोपनस्यापि सूचकम् ॥९११॥ 927

क्रोध, विस्मय, चिन्ता, लज्जा, वितर्क, स्वाभाविक वार्तालाप, स्त्रियो के अपने सौभाग्य के गर्व से अपने अगो के अवलोकन करने, वर के मार्ग, लीला तथा सौन्दर्य को टकटकी (लगाकर) देखने के अभिनय म उसका विनियोग होता है। विलास तथा आकार को छिपाने के अभिनय मे भी उसका प्रयोग होता है।

३ अश्वक्रान्त और उसका विनियोग

एकस्याङ्घ्रेः समस्यान्यः पार्ष्णिदेशमुपागतः ।
सूचीपादोऽथवा स्वीयपार्श्वे तालान्तरे स्थितः ॥९१२॥ 928
समो यत्र तदाचष्टाश्वक्रान्तं वीरसिहजः ।

जब एक सम पैर की एडी के पास दूसरा सूची पैर अवस्थित हो अथवा एक सम पैर दूसरे पार्श्ववर्ती पैर के एक ताल के अन्तर पर स्थित हो, तो अशोकमल्ल के मत मे उसे अश्वक्रान्त स्थानक कहते है।

तदश्वारोहणारम्भे ललिते विभ्रमे तथा । 929
द्रुमशाखावलम्बे च संलापेऽपि निसर्गजे ॥९१३॥
स्खलितेऽपि स्खलद्वासोधारणे गोप्यगोपने । 930
पुष्पगुच्छग्रहेऽप्येतत्सरस्वत्यस्य देवता ॥९१४॥

अश्वारोहण के आरम्भ, ललित हाव-भाव, वृक्षशाखा से लटकने, स्वाभाविक वार्तालाप, गिरने, गिरते हुए वस्त्र धारण करने, गोपनीय वस्तु को छिपाने ओर फूलो का गुच्छा पकडने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है। इस आसन की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती है।

४ गतागत

यत्राङ्घ्रिमेकमुद्धृत्य नर्तकी गमनोन्मुखी । 931
निरोधात्तु गतिस्थित्योरुदास्ते तद् गतागतम् ॥९१५॥

जहाँ नर्तकी एक पैर को उठा कर आकाश की ओर मुँह किये गति और स्थिति को रोकने से (सयमन करने से) उदासीन हो, वहाँ **गतागत स्थानक** होना है ।

५ वलित और उसका विनियोग

यत्रेषद्वलित गात्रमङ्घ्रिर्बलितदिग्भवः । 932
कनीयस्योर्वीमाश्लिष्येतपराङ्गुष्ठेन ता यदा ।
तदा तद् वलितं स्थानं साभिलाषनिरीक्षणे ॥९१६॥ 933

जब शरीर कुछ झुका हुआ हो, पर बल खाया हुआ हो, ओर कानी उँगली (कनीय) तथा अँगूठा धरती से चिपके हुए हो, तो उसे **वलित स्थानक** कहते है । उत्कण्ठापूर्वक देखने के अभिनय मे उसका विनियोग होता हे ।

६ मोटित

एकः पादः समोऽन्यस्तु कुञ्चितोर्ध्वतलाङ्गुलिः ।
यदा करौ कर्कटाख्यावूर्ध्वगौ मोटितं तदा ॥९१७॥ 934

जब एक समस्थित पैर की उँगलियाँ ओर दूसरे कुचित पैर की उँगलियाँ ऊपर को उठी हो तथा दोनो हाथ कर्कट मुद्रा मे ऊर्ध्वगामी हो, तो उसे **मोटित स्थानक** कहते है ।

७ विनिर्वतित

तदेवाङ्गपरावृत्त्या पृष्ठतो विनिवर्तितम् ॥९१८॥

जब पृष्ठ भाग से अगो की अदला-बदली की जाय, तो उसे **विनिवर्तित स्थानक** कहते हे ।

८. प्रोन्नत और उसका विनियोग

पादाग्राभ्यां समानाभ्यां तथाङ्गुलितलैः स्थितिः । 935
या कायमायतीकृत्य तत् स्थानं प्रोन्नतं मतम् ॥९१९॥

जब शरीर को लम्बा करके पैरो के समान अग्रभागो तथा अँगुलितलो पर खडा हुआ जाय, तो उसे **प्रोन्नत स्थानक** कहते हे ।

नासादघ्नजले धार्ये भित्त्याद्यन्तरितेऽपि च । 936
प्रांशुग्राह्यफलादीना ग्रहणेऽपि तदीरितम् ॥९२०॥

नाक तक (ऊपर उठे) जल, धारण करने योग्य वस्तु दीवार आदि की ओट मे होने तथा लम्बे मनुष्य द्वारा पकडे जाने योग्य फल आदि के लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

तेईस देशी स्थानक (३)

१ समपाद

वितस्त्यन्तरितावङ्घ्री ऋजू साहजिकं वपु. । 937
तत्र तत् स्थानमादिष्ट समपादं मनीषिभिः ॥९२१॥

जहा दोनो पैर एक बित्ते के अन्तर पर तथा सीधे हो और शरीर स्वाभाविक स्थिति मे हो, उसे मनीषियो ने **समपाद स्थानक** कहा है ।

२ स्वस्तिक

यत्राङ्घ्री नूपुरस्थाने स्वस्तिकौ कुञ्चितौ यदा । 938
मिथो लग्नकनिष्ठौ च तत् तदा स्वस्तिकं मतम् ॥९२२॥

जब दोनो कुचित पैर नूपुरस्थान पर स्वस्तिकाकार हो और दोनो की कानी (कनिष्ठा) उँगलियाँ परस्पर सटी हुई हो, तब उसे **स्वस्तिक स्थानक** कहते है ।

३ सहत और उसका विनियोग

स्वाभाविकं यत्र गात्रमङ्घ्योरङ्गुष्ठकौ यदा । 939
गुल्फावपि मिथ. श्लिष्टौ तत् स्थानं सहतं तदा ।

जब शरीर स्वाभाविक स्थिति मे हो और दोनो पैरो के अँगूठे तथा टखने परस्पर सटे हुए हो, तो उसे **सहत स्थानक** कहते है ।

एतन्नियुज्यते धीरैः पुष्पाञ्जलिविसर्जने ॥९२३॥ 940

पुष्पाजलि समर्पित करने मे धीर पुरुष इस स्थानक का विनियोग बताते है ।

४ वर्धमानक

पार्ष्णिश्लिष्टौ तिरश्चीनौ पादौ स्तो वर्धमानके ॥९२४॥

जब दोनो पैर तिरछे हो और उनकी एडियाँ सटी हुई हो, तब उसे **वर्धमानक स्थानक** कहते है ।

५. नन्द्यावर्त

षडङ्गुलं यदैतस्य पादयोरन्तरं भवेत् । 941
वितस्तिमात्रं तत् स्थानं नन्द्यावर्तं [तदोदितम्] ॥६२५॥

जब वधमान स्थानक के पैरो मे छह अँगुल या एक बित्ते का अन्तर हो, तब उसे **नन्द्यावर्त स्थानक** कहते हे ।

६. एकपाद

जानुशीर्षे बहिःपार्श्वे समपादस्य चेत्परः । 942
संश्लिष्टो बाह्यपार्श्वेन तदा स्यादेकपादकम् ॥६२६॥

जब समपाद स्थानक के घुटने के अग्रभाग मे तथा बाहर पार्श्वभाग म दूसरा पेर बाहरी पार्श्वभाग से सट जाय, तो उसे **एकपाद स्थानक** कहते ह ।

७ चतुरस्र

अष्टादशाङ्गुलं यत्र पादयोरन्तरं द्वयोः । 943
नन्द्यावर्तस्य चेत्स्थानं चतुरस्रमिदं तदा ॥६२७॥

जब नन्द्यावर्त स्थानक के दोनो पैरो मे अठारह अँगुल का अन्तर हो, तब उसे **चतुरस्र स्थानक** कहते ह ।

८ पृष्ठोत्तानतल

एकः पश्चाद्वराश्लिष्टाङ्गुलिपृष्ठो यदा परः । 944
समः पुरस्ताद् यत्रेदं पृष्ठोत्तानतलं तदा ॥६२८॥

जब, बिलग हुई उँगलियो वाला एक पैर पीछे रहे ओर दूसरा सम पैर आगे रहे, तो उसे **पृष्ठोत्तानतल स्थानक** कहते है ।

९ पार्ष्णिविद्ध

अङ्गुष्ठसंहता पार्ष्णिः पार्ष्णिविद्धे मता सताम् ॥६२९॥ 945

जब एडी अँगूठे से लगी रहे तो उसे **पार्ष्णिविद्ध स्थानक** कहते ह ।

१० समसूचि

पार्ष्णिजङ्घोरुसंश्लिष्टनतौ पादौ प्रसारितौ ।
तिर्यञ्चौ तौ तदा यत्र तदा स्यात् समसूचि तत् ॥६३०॥ 946

जब तिरछे फैले हुए दोनो पैर एडी, जाँघ आर घुटनो से सटकर झुक जायँ, तब उसे **समसूचि स्थानक** कहते है ।

११ विषमसूचि

युगपच्चेत्सूचीपादौ यत्र प्रसारितौ पुर. ।
पश्चादपि तदा प्रोक्तं [स्थानं विषमसूचि] तत् । 947
केचित् पादौ क्षितिश्लिष्टजानुगु[ल्फौ ब]भाषिरे ।।६३१।।

यदि सूची मुद्रा मे दोनो पेर एक साथ आगे या पीछे फेला दिये जाय, तो उसे **विषमसूचि स्थानक** कहते हे । कुछ आचार्य पृथ्वी मे सटे हुए घुटने तथा टखने वाले पैरो को विषमसूचि स्थानक कहते हैं ।

१२ खण्डसूचि

अत्रैक· कुञ्चितः पाद· परस्तिर्यक् [प्रसारि] त· । 948
क्षितिश्लिष्टोरुपार्ष्णिश्चेत्तदोक्त खण्डसूचि तत् ।।६३२।।

यदि एक पैर सिकुडा हुआ हो आर दूसरा पैर तिरछा फैला हुआ हो तथा जाँघ आर एडी पृथ्वी से सटी हुई हो, तो उसे **खण्डसूचि स्थानक** कहते हे ।

१३ पार्ष्णिपार्श्वगत

[पार्ष्णि]पार्श्वगतेऽन्यस्यान्त. पार्ष्णिः पार्श्वतो भवेत् ।।६३३।। 949

यदि एक पैर की एडी दूसरे पैर के नीचे बगल मे रखी जाय, तो उसे **पार्ष्णिपार्श्वगत स्थानक** कहते हे ।

१४ एकपार्श्वगत

[अग्र]तः समपादस्य मनागङ्घ्रि. परो यदा ।
तिर्यग्बहिः पार्श्वगतः एकपार्श्वगतं त[दा] ।।६३४।। 950

जब समस्थित एक पैर के आगे दूसरा पैर कुछ तिरछा करके बाहरी बगल मे रख दिया जाता है, तब उसे **एकपार्श्वगत स्थानक** कहते हे ।

१५ परावृत्त

उभौ भूत्वा तिरश्चीनौ चरणावेतयोर्यदा ।
एकस्याङ्गुष्ठको यत्र परस्य च कनिष्ठिका । 951
पार्श्वैकमिश्रिते द्वे स्तः परावृत्तमिदं तदा ।।६३५।।

जब दोनो पैर तिरछे रहे , उनमे से एक का अँगुष्ठ ओर दूसरे की कनिष्ठिका एक बगल मे मिली रहे, तब उसे **परावृत्त स्थानक** कहते है ।

१६ एक जानुनत

एकजानुनते त्वेकः समोऽड्घ्रिरपरोऽन्तरे । 952
तिर्यक्कुञ्चितजानुः स्या [च्चतु] रङ्गुलसम्मिते ॥६३६॥

जब एक पैर स्वाभाविक स्थिति मे हो और दूसरा पैर चार अँगुल की दूरी पर तिरछे तथा मुडे हुए घुटने मे युक्त हो, तो उसे **एकजानुनत स्थानक** कहते है ।

१७ ब्राह्म

ब्राह्मे समोऽड्घ्रिरेकोऽन्यः पृष्ठतःकु[ञ्चितः] कृतः । 953
जानुसन्धिसमत्वेनोत्क्षिप्तः पादो बुधैर्मतः ॥६३७॥

यदि एक पैर स्वाभाविक स्थिति मे हो दूसरे को पृष्ठभाग से मोड कर घुटने के जोड की बराबरी मे ऊपर उठा दिया जाय, तो उसे **ब्राह्म स्थानक** कहते हे ।

१८ वैष्णव

एकं [पादं] समं कृत्वा किञ्चिच्चेत्कुञ्चितोऽपरः । 954
प्रसारितः पुनस्तिर्यक् तदोक्तं वैष्णवं बुधैः ॥६३८॥

जब एक पैर को समस्थित करके दूसरे को कुछ मोडकर पुन तिरछा फैला दिया जाय, तब उसे विद्वान् लोग **वैष्णव स्थानक** कहते है ।

१९ शैव

यदा समस्य वामाङ्घ्रेर्जानुशीर्षसमः परः । 955
उत्क्षिप्तः कुञ्चितश्चैव तत् तदा शैवमीरितम् ॥६३९॥

जब दाहिना पैर समस्थित बाये पैर के घुटने के अग्रभाग के बराबर ऊपर उठा तथा मुडा हुआ हो, तब उसे **शैव स्थानक** कहते है ।

२०. कूर्मासन

स्थाने कूर्मासने जानुबाह्यगुल्फमि [लतिक्ष]तिः । 956
दक्षिणाड्घ्रिः समो वामस्तदैवेतन्न मतं समाम् ॥६४०॥

यदि बायाँ पैर समस्थित हो और दाहिना पैर घुटने तथा टखने से मिलते हुए पृथिवी पर अवस्थित हो, तो उसे सज्जनो ने **कूर्मासन स्थानक** कहा है ।

२१ गारुड

पुरोऽङ्घ्रि कुञ्चितो वामो[दक्षिणो जानुना]क्षितिम् । 957
स्पृशेद् यदि तदा सद्भिर्गारुडं तदुदीरितम् ।।९४१।।

जब बायें पैर का अग्रभाग मुड़ा हो और दाहिना पैर घुटने से पृथिवी का स्पर्श करता हो, तब सज्जनों ने उसे **गारुड स्थानक** कहा है ।

२२ वृषभासन

संयुते वियुते यद्वा भूमिश्लिष्टे तु जानुनी । 958
[वृषभासनमाख्यातं सौष्ठवाधिष्ठितं तदा] ।।९४२।।

जब दोनों घुटने संयुक्त या वियुक्त हों, किन्तु भूमि में सटे हुए हों और सौष्ठव से युक्त हों, तब उसे **वृषभासन स्थानक** कहते हैं ।

२३ नागबन्ध

[दक्षिणां तु यदा जङ्घां वामोरु पृष्ठदेशगाम् । 959
निदध्यादुपविष्टः सन् नागबन्धं तदादिशेत्] ।

यदि भूमि पर बैठे हुए स्थिति में बायें घुटने को पीठ की ओर गयी हुई दाहिनी पिंडली पर रख दिया जाय, तो उसे **नागबन्ध स्थानक** कहते हैं ।

छह सुप्तस्थानक (४)

१ सम

उत्तानास्यं स्रस्तमुक्तहस्तं सुप्तं समं भवेत् ।।९४३।। 960

यदि मुँह उत्तान और हाथ ढीला तथा खुला हुआ हो, तो उसे **समसुप्त स्थानक** कहते हैं ।

२ नत और उसका विनियोग

स्रस्तहस्तयुगं सुप्तं मनाक्प्रसृतजङ्घकम् ।
यत् तन् नतं श्रमालस्यखेदादिषु निरूपितम् ।।९४४।। 961

यदि दोनों हाथ ढीले हों और जँघा थोडी फैली हुई हो, तो उसे **नत सुप्त स्थानक** कहते हैं । श्रम, आलस्य तथा खेद आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३. आकुञ्चित और उसका विनियोग

आकुञ्चत्कायमाविद्धजानु त्वाकुञ्चित मतम् ।
शीतार्ताभिनयेऽशोकमल्लेन सुविपश्चिता ॥९४५॥ 962

जहाँ शरीर कुछ सिकुडा हुआ हो और घुटने मुडे हुए हो, वहाँ **आकुञ्चित सुप्त स्थानक** होता है। विद्वान् अशोकमल्ल ने शीत-पीडित के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

४ प्रसारित

उपधाय यदा बाहु सम्प्रसार्य तु जानुनी ।
सुप्यते यत्र तत् प्रोक्तं सुखसुप्ते प्रसारितम् ॥९४६॥ 963

जब बाँह को तकिया बनाकर ओर घुटनो को फैलाकर सुख से सोया जाय, तो उसे **प्रसारित सुप्त स्थानक** कहते है ।

५ विवर्तित

अधस्ताद्वदनं सुप्तं सद्भिरुक्तं विवर्तितम् ॥९४७॥

मुँह को नीचे करके सोने पर **विवर्तित सुप्त स्थानक** होता है, ऐसा सज्जनो का अभिमत है ।

६ उद्वाहित और उसका विनियोग

असे निधाय शीर्ष चेत्कूर्परेण धरातलम् । 964
आश्रित्य शयनं यत्र स्थानमुद्वाहितं तदा ।
लीलयावस्थितौ सद्भिर्नियोजिमहीभुजाम् ॥९४८॥ 965

जहाँ कन्धे पर सिर रखकर कुहनी से पृथ्वीतल का आश्रय लेकर शयन किया जाय, तो उसे **उद्वाहित सुप्त स्थानक** कहते है । राजाओ की लीलापूर्वक अवस्थिति के अभिनय मे इस आसन का विनियोग होता है ।

समवेत रूप मे बावन प्रकार के स्थानको का निरूपण समाप्त ।



चारी प्रकरण / दस

चारियो का निरूपण

चारी (चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यजन)

गत्यर्थाच्चरते[र्धातो]र्भावेऽर्थे करणेऽथवा ।
अस्त्रीजातौ तत डीषि सत्ति चारीति सिध्यति ।।९४९।। 966

गमनार्थक **चर्** धातु से भाव अथवा करण अर्थ मे **अण्** प्रत्यय तथा **ङीष्** होने पर स्त्रीलिग मे **चारी** प्रयोग निष्पन्न होता है ।

या नर्तनेऽङ्घ्रिजङ्घोरुकटिना युगपत्कृतः ।
चेष्टाकृतिविशेष. सा चारी सद्भिरुदीरिता ।।९५०।। 967

नृत्यकाल मे पैर, जँघा, उरु ओर कटि द्वारा एक साथ जो चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यजन होता है, विद्वानो ने उसे **चारी** नाम से कहा हे ।

चारियो के भेद

व्यायच्छन्तो मिथश्चार्यो यद्यथालक्ष्म निर्मिता ।
अङ्गोपेतास्ततोऽन्वर्थो व्यायामः स चतुर्विधः ।।९५१।। 968
चारी च करणं खण्डो मण्डल च क्रमादिति ।
स्यादेकाङ्घ्रिप्रचारो यः सा चारी परिकीर्तिता ।।९५२।। 969
द्व्यङ्घ्रिप्रचारः करणं खण्डस्तु करणैस्त्रिभिः ।
खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा मण्डलं स्यात् क्रमेण तु ।।९५३।। 970
त्र्यस्रे ताले सद्भिरेतच्चतुरस्रे तथोदितम् ।

अगो के परस्पर प्रचार-प्रसार के अनुसार चारियो की रचना होती है । इसलिए अर्थानुरूप (अन्वर्थ) उसे **व्यायाम** भी कहा जाता है, जो कि चार प्रकार का होता है १ **चारी**, २ **करण**, ३ **खण्ड** और ४ **मण्डल**। एक पैर के सचरण को **चारी**, दोनो पैरो के सचरण को **करण**, तीन करणो के एक साथ सचरण को **खण्ड** और तीन

या चार खण्डो के एक साथ सचरण को **मण्डल** कहते है। त्र्यस्र, ताल और चतुरस्र परिमाण मे सज्जनो ने क्रमश उनका प्रयोग बताया है।

भूमिचारी के भेद

समपादाड्डिता बद्धा स्पन्दिता विच्यवा तथा ॥९५४॥ 971
जनितोत्सन्दिता चाषगतिरध्यर्धिका परा।
एलकाक्रीडिताख्या च शकटास्याभिधा परा ॥९५५॥ 972
उरूद्वृत्ता स्थितावर्ता चार्यपस्पन्दिता तथा।
समोत्सरितमत्तल्ली मत्तल्लीति क्रमादिमाः ॥९५६॥ 973
चार्यः षोडश भौम्य–

भमिचारी के सोलह भेद होते है १ समपादा, २ अड्डिता, ३ बद्धा, ४ स्पन्दिता, ५ विच्यवा, ६ जनिता, ७ उत्सन्दिता, ८ चाषगति, ९ अध्यर्धिका, १० एलकाक्रीडिता, ११ शकटास्या, १२ उरूद्वृत्ता, १३ स्थितावर्ता, १४ अपस्पन्दिता, १५ समोत्सरितमत्तल्ली और १६ मत्तल्ली।

आकाशचारी के भेद

–स्ताकाशिकीरधुना ब्रुवे।
अतिक्रान्ता त्वपक्रान्ता भ्रमरी च मृगप्लुता ॥९५७॥ 974
पार्श्वक्रान्तोर्ध्वजानुश्च भुजङ्गत्रासिता परा।
अलाता दण्डपादा च विद्युद्भ्रान्ता च सूच्यपि ॥९५८॥ 975
दोलापादा तथोद्वृत्ताविद्धा नूपुरपादिका।
आक्षिप्ताख्येति सम्प्रोक्ता आकाशिक्यश्च षोडश ॥९५९॥ 976

अब आकाशचारियो का निरूपण किया जाता है। उनके भी सोलह प्रकार होते है १ अतिक्रान्ता, २ अपक्रान्ता, ३ भ्रमरी, ४ मृगप्लुता, ५ पार्श्वक्रान्ता, ६ ऊर्ध्वजानु, ७ भुजगत्रासिता, ८ अलाता, ९ दण्डपादा, १० विद्युद्भ्रान्ता, ११ सूची, १२ दोलापादा, १३ उद्वृत्ता, १४ आविद्धा, १५, नूपुरपादिका और १६ आक्षिप्ता।

चार्यो भूमिलिताः भार्ग्यो द्वात्रिशन् मुनिसंमता।

इस प्रकार भरत मुनि के मत से दोनो चारियो के बत्तीस भेद होते है।

देशीचारी (भूमिगत) के भेद

अथ देशीप्रसिद्धाः यास्ताश्चारीरभिदध्महे ॥९६०॥ 977
रथचक्रा तलोद्वृत्ता मराला पार्ष्णिरेचिता ।
परावृत्ततला तिर्यङ्मुखा नूपुरविद्धिका ॥९६१॥ 978
कातरा करिहस्ता च हरिणत्रासिता परा ।
अर्धमण्डलिकाप्यूरुताडिता च मदालसा ॥९६२॥ 979
सञ्चारितोत्कुञ्चितापकुञ्चिता स्फुरिता परा ।
स्तम्भक्रीडनिका तिर्यक् कुञ्चिता तलदर्शिनी ॥९६३॥ 980
खुत्ता लङ्घितजङ्घा च स्वस्तिका च कुलीरिका ।
निकुट्टकः पुराट्यर्धपुराटी स्फुरिका ततः ॥९६४॥ 981
सारिका च लताक्षेपोऽन्याड्डुस्खलितिका तदा ।
ऊरुवेणी च विश्लिष्टा समस्खलितिकेत्यपि ॥९६५॥ 982
संघट्टितेत्यमूर्भौम्यः पञ्चत्रिंशदुदीरिताः ।

अब देशी नाम से प्रसिद्ध चारियो का निरूपण किया जाता है। उनके पैंतीस भेद होते है १ रथचक्रा, २ तलोद्वृत्ता, ३ मराला, ४ पार्ष्णिरेचिता, ५ परावृत्ततला, ६ तिर्यङ्मुखा, ७ नूपुरविद्धिका, ८ कातरा ९ करिहस्ता, १० हरिणत्रासिका, ११ अर्धमण्डलिका, १२ उरुताडिता, १३ मदालसा, १४ सचारिता, १५ उत्कुञ्चिता, १६ अपकुञ्चिता, १७ स्फुरिता, १८ स्तम्भक्रीडनिका, १९ तिर्यक्कुञ्चिता, २० तलदर्शिनी, २१ खुत्ता, २२ लघितजघा, २३ स्वस्तिका, २४ कुलीरिका, २५ निकुट्टक, २६, पुराटिका, २७, अर्धपुराटिका, २८ स्फुरिका, २९ सारिका, ३० लताक्षेप, ३१ अड्डस्खलितिका, ३२ ऊरुवेणी, ३३ विश्लिष्टा, ३४ समस्खलितिका और ३५ सघट्टिता।

देशीचारी (आकाशगत) के भेद

दण्डपादा पुरःक्षेपाऽपक्षेपा हरिणप्लुता ॥९६६॥ 983
विद्युद्भ्रान्ता च विक्षेपा जङ्घावर्ताङ्घ्रिताडिता ।
अलाता डमरी विद्धा जङ्घालङ्घनिका परा ॥९६७॥ 984
सूची प्रावृतमुल्लालो वेष्टनोद्वेष्टने तथा ।

उत्क्षेपश्च तथा पृष्ठोत्क्षेप एकोनविंशतिः ॥६६८॥ 985
अमूराकाशिकास्ताश्च चतुष्पञ्चाशदीरिताः ।

आकाशगत देशी चारी के उन्नीस भेद होते हे १ दण्डपादा, २ पुरक्षेपा, ३ अपक्षेपा, ४ हरिणप्लुता, ५ विद्युद्भ्रान्ता, ६ विक्षेपा, ७ जघावर्ता ८ अघ्रितादिता, ९ अलाता, १० डमरी, ११ विद्धा, १२ जघालघनिका, १३ सूची, १४ प्रावृत, १५ उल्लाल, १६ वेष्टन, १७ उद्वेष्टन, १८ उत्क्षेप और १९ पृष्ठोत्क्षेप ।

उभय्योऽप्यथ सर्वास्ताः मार्गदेशीस्थिताः इमाः । 986
षडशीतिर्मताश्चार्यस्तासा लक्ष्माण्यह ब्रुवे ॥६६९॥

दोनो भूमिगत तथा आकाशगत देशी चारियो के चौवन भेदो और भूमिचारियो तथा आकाशचारियो के बत्तीस भेदो को मिला देने से चारियो के कुल छियासी भेद होते है । अब उनके लक्षण-विनियोगो का निरूपण किया जाता है ।

सोलह भूमिचारियाँ (१)

१ समपादा

अङ्घ्रोनिरन्तरौ तुल्यनखौ कृत्वा यदि स्थितः । 987
समपादस्थानकेन समपादा मता तदा ॥६७०॥

जब समपाद स्थानक के द्वारा दोनो चरणो को अव्यवहित तथा तुल्यनख करके रखा जाय (अर्थात् सटाकर इस प्रकार रखा जाय, जिससे दोनो के अग्रभाग बराबर माप मे हो), तब उसे **समपादा** भूमिचारी कहते हे ।

प्रचारयोग्यतामात्राद् यत् समाधत्त कश्चन । 988
स्थानकत्वेऽपि चारीत्वमस्यास्तत्र सतां मुदे ॥६७१॥
युक्त्यानयैवमन्येषा चारीत्वं सुवचं यतः । 989
स्थानकानामतश्चिन्त्यं समाधानं बुधैरिह ॥६७२॥
समाधत्ताशोकमल्लः संगीतविदुषांवरः । 990
समपादस्थानहेतोश्चारीत्वं चलनादिह ॥६७३॥

यहाँ आशका होती है कि उक्त लक्षण मे **स्थानक** का अर्थ स्थिरता है और **चारी** का अर्थ चलना होता है । इन विरुद्ध धर्मो का समावेश कैसे होगा ? इसका उत्तर कोई (आचार्य) सज्जनो के सन्तोषार्थ यह

कहकर देते है कि समपादो मे चलने की योग्यता तो हे, इसलिए स्थानक मे भी चारीत्व है। किन्तु इस युक्ति से 'दूसरे स्थानको मे भी चारीत्व हे'—ऐसा कहना आसान हो जाएगा, इसलिए विद्वानो को यहाँ समाधान ढूँढना चाहिए। यहाँ सगीत के श्रेष्ठ विद्वान् अशोकमल्ल ने समाधान किया है कि बराबर परिमाण मे पैरो को रखकर चलना ही **समपादा चारी** हे। (इस लक्षण मे कोई त्रुटि नही है।)

२ अड्डिता

समाङ्घ्रेः पुरतः पश्चादन्योऽग्रतलसञ्चरः । 991
निघृष्टोङ्घ्रिः क्रमाद् यत्र सा धीरैरड्डिता मता ॥९७४॥

जहाँ समपाद के आगे और पीछे दूसरा पैर अग्रभाग पर चले, फिर क्रमश एक-एक पैर घसीटा जाय, तो उसे **अड्डिता** भूमिचारी कहते हैं।

३ बद्धा

कृत्वोर्वोश्चलनं जङ्घास्वस्तिकेन समन्वितम् । 992
स्वस्तिकेन विना चाङ्घ्रितलाग्रे मण्डलभ्रमात् ॥९७५॥
स्वं स्वं पार्श्वं गते यत्र सोक्ता बद्धेति सूरिभिः । 993
मिलिते प्रोचिरे लक्ष्यलक्ष्मणी केचिदत्र हि ॥९७६॥

जहाँ ऊरुओ के सचरण को जँघाओ की स्वस्तिकमुद्रा से युक्त करके (अथवा) विना स्वस्तिक के भी, चरण-तल के अग्रभाग मे मण्डलाकार घुमाकर अपने-अपने पार्श्व मे पहुँचा दिया जाय, वहाँ विद्वानो ने उसे **बद्धा** भूमिचारी कहा है। कोई आचार्य यहाँ लक्ष्य और लक्षण को सम्मिलित रूप मे बताते है।

४ स्पन्दिता

वामः समो निषण्णोरुरन्यस्तिर्यक् प्रसारितः । 994
पञ्चतालान्तरं पादो यत्र सा स्पन्दिता मता ॥९७७॥

जहाँ बायाँ पैर सम हो, ऊरु बैठा हुआ हो और दूसरा पैर पाँच तालो के अन्तर पर तिरछा फैला हुआ हो, तो उसे **स्पन्दिता** भूमिचारी कहते है।

५ विच्यवा

चरणौ समपादाया विच्युत्य क्षितिकुट्टनम् । 995
कुरुतश्चेत् तलाग्रेण सा तदा विच्यवोदिता ॥९७८॥

जब समपादा चारी के दोनो चरण अपने स्थान से हटकर अपने निचले अग्रभाग से पृथ्वी को कूटते हो, तो उसे **विच्यवा** भूमिचारी कहते ह ।

६ जनिता

यत्र पादो भवेदग्रतल [सञ्चर] संज्ञितः । 996
हृदि मुष्टिकरोऽन्यो ग्रीवा यथाशोभं भवेद्यदि ।।९७९।।
सा तदा जनिता चारी विद्वद्भिः समुदीरिता । 997
मुख्या पादक्रिया चास्यामिति कर्तव्यता परा ।।९८०।।

जहाँ एक पैर अग्रतल पर हो, हृदय पर मुष्टि नामक हाथ हो और ग्रीवा सुशोभित हो, वहाँ विद्वानो ने उसे **जनिता** भूमिचारी कहा है । इसमे मुख्य चरण-क्रिया परम कर्तव्यता मानी गयी है ।

७ उत्सन्दिता

यत्राङ्गुल्याः कनीयस्था भागेनाङ्गुष्ठकस्य च । 998
क्रमेण रेचकस्यानुकृत्या पादो गतागतम् ।।९८१।।
विधत्ते सोत्सन्दिताख्या सद्भिश्चारी निरूपिता । 999
केचिन्नृत्तकरं ह्यत्र रेचितं सम्बभाषिरे ।।९८२।।

जहाँ कानी उँगली तथा अँगूठे के एक भाग से क्रमश रेचक के अनुकरण द्वारा पैर बाहर-भीतर आता-जाता है, उसे विद्वानो ने **उत्सन्दिता** भूमिचारी कहा है । यहाँ कोई विद्वान् रेचित नामक नृत्य-हस्त का प्रयोग बताते है ।

८ चाषगति

तालान्तरे पुरो गत्वा सव्येऽङ्घ्रौ पृष्ठगामिनि । 1000
तालद्वयान्तरेऽथाङ्घ्री समावुत्प्लुत्य किञ्चन ।।९८३।।
अपगम्योपगच्छेतामुपगम्यापगच्छतः । 1001
यस्यां सैषा चाषगतिर्भीतिर्गत्यादिषु स्मृताः ।।९८४।।

जहाँ दाहिना पैर एक ताल के अन्तर पर आगे-आगे चले और बाँया पैर पीछे-पीछे चले, फिर दो तालो के अन्तर पर दोनो समस्थित पैर कुछ उछलकर एव हटकर समीप आ जाँय और समीप आकर फिर हट जाँय, ऐसी क्रिया को **चाषगति** भूमिचारी कहते है । भय और गमन आदि के अभिनय मे इसका विनियोग किया जाता है ।

९. अध्यर्धिका

सव्याड्.घ्रेः पार्ष्णिदेशं चेद् वामः पादः समाश्रितः । 1002
अथ सव्योऽपसृत्याड्.घ्रिः सार्धतालान्तरे स्थितः ॥९८५॥
त्र्यस्रभावेन पार्श्वे स्वे सव्यो वामाड्.घ्रिपार्ष्णिगः । 1003
ततोऽपसृत्य वामाड्.घ्रिः सार्धतालान्तरे तथा ।
स्थितः साध्यर्धिका चारी तदावाचि विचक्षणैः ॥९८६॥ 1004

जहाँ दाहिने पैर की एडी के आश्रित होकर बायाँ पैर चले, और फिर दाहिना पैर हटकर डेढ ताल की दूरी पर स्थित हो, अनन्तर दाहिना पैर त्र्यस्र भाव से अपने पार्श्व मे बाये पैर की एडी की तरफ गमन करे, तत्पश्चात् बायाँ पैर हटकर डेढ ताल की दूरी पर स्थित हो, ऐसी क्रिया को विद्वानो ने **अध्यर्धिका** भूमिचारी कहा है ।

१० एलकाक्रीडिता

मनागुत्प्लुत्य चेत्पादौ यत्राग्रस्तलसञ्चरौ ।
पर्यायात् पततश्चारी सैलकाक्रीडिता तदा ॥९८७॥ 1005

जहाँ अग्रतलसचर नामक दोनो पैर थोडा उछलकर अनुक्रम से गिरते हो, उसे **एलकाक्रीडिता** भूमिचारी कहते है ।

११ शकटास्या

पूर्वभागं शरीरस्य यदा धृत्वा प्रयत्नतः ॥९८८॥
प्रसारितो भवेद् यत्र पादोऽग्रतलसञ्चरः । 1006
वक्ष उद्वाहितं सोक्ता शकटास्या बुधैस्तदा ॥९८९॥

जब शरीर के अगले भाग को यत्नपूर्वक पकडकर अग्रतलसचर पैर फैला दिया जाय और उद्वाहित वक्ष की मुद्रा बनायी जाय, तब उसे विद्वान् लोग **शकटास्या** भूमिचारी कहते है ।

१२ उरूद्वृत्ता

पार्ष्णिः स्याच्चरणस्याग्रतलसञ्चारकस्य चेत् । 1007
पराड्.घ्रिपृष्ठाभिमुखी यद्वा व्यत्यासतो भवेत् ॥९९०॥

नतजानुर्यत्र जङ्घा वलिताभ्यन्यजङ्घिकम् । 1008
सोरूद्वृत्ता तदा चारी बुधैरीर्ष्यादिषु स्मृता ॥६६१॥

जब अग्रतलसचर पाद-मुद्रा की एडी दूसरे पैर की एडी के सम्मुख हो, अथवा विपरीत क्रम से हो, घुटना झुका हुआ हो और जँघा बल खायी हुई हो, तब से विद्वानो ने उसे **उरूद्वृत्ता** भूमिचारी कहा है। ईर्ष्या आदि के अभिनय मे उसका विनियोग किया जाता है।

१३ स्थितावर्ता

गत्वान्यपादपार्श्वं चेद् यत्राग्रतलसञ्चरः । 1009
अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वं प्राप्तोऽन्यश्च्युतिपूर्वकः ।
तथा स्वपार्श्वनीता सा स्थितावर्ता तदोदिता ॥६६२॥ 1010

जहाँ अग्रतलसचर पाद मुद्रा दूसरे पैर के पाश्व मे जाकर घुटने के नीचे स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त कर ले और दूसरा पैर हट कर अपने पार्श्व मे ले आया जाय, तो उसे **स्थितावर्ता** भूमिचारी कहते है।

१४ अपस्पन्दिता

स्यादपस्पन्दिता चारी स्पन्दिताङ्घ्रिविपर्ययात् ॥६६३॥

चलायमान चरणो के परिवर्तन से **अपस्पन्दिता** भूमिचारी होती है।

१५ समोत्सरितमत्तल्ली

निहिते परपादस्य मध्येऽग्रतलसञ्चरे । 1011
कृते जङ्घा स्वस्तिके च परेऽग्रतलसञ्चरे ॥६६४॥
पादेऽङ्घ्री यत्र घूर्णन्तावपसृत्योपसर्पतः । 1012
समोत्सरितमत्तल्ली सा चारी मध्यमे मदे ॥६६५॥

जब अग्रतलसचर पाद-मुद्रा को दूसरे पैर के बीच मे रखा जाय, फिर दूसरे अग्रतलसचर को जँघा के साथ स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तत्पश्चात् दोनो पैर घूमते हुए हटकर समीप आ जॉय, तो उसे **समोत्सरितमत्तल्ली** भूमिचारी कहते है। मध्यम मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१६ मत्तल्ली

क्षितिलग्नाखिलतलौ जङ्घास्वस्तिकयोगिनौ । 1013
अर्धत्र्यस्रौ च यत्राङ्घ्री घूर्णन्तावुपसर्पतः ।
प्रदापसरतोऽसौ स्यान्मत्तल्ली तरुणे मदे ॥६६६॥ 1014

यदि दोनो चरणो का सम्पूर्ण तलभाग पृथ्वी से सटा हुआ हो, जँघाएँ स्वस्तिक मुद्रा मे हों, फिर दोनो चरण अर्ध त्र्यस्र स्थानक के रूप मे होकर घूमते हुए उपसर्पण और अपसर्पण करे, तो उसे **मत्तल्ली** भूमिचारी कहते है। तरुण मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

विनियोग

नाट्ये नृत्ये तथा नृत्ते नियुद्धेऽपि भवन्त्यमू. ।
नाट्यवेदेनादिमूलवेदेन परिकीर्त्तिताः ॥९९७॥ 1015

नाट्य (अभिनय), नृत्य (ताल, लय तथा रस के अनुसार किया जाने वाला अभिनय), नृत्त (केवल अंग-विक्षेपपूर्वक किया जाने वाला अभिनय) और बाहुयुद्ध के भाव-प्रदर्शन मे भी इन चारियो का उपयोग किया जाता है। इनका वर्णन नाट्यवेद के मूल स्रोत वेदो मे पाया जाता है।

सोलह आकाशचारियाँ (२)

१ अतिक्रान्ता

अङ्घ्रेरेकस्य गुल्फे चेदन्यमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।
प्रसार्य पुरतः किञ्चिदथोत्क्षिप्य निपातयेत् ॥९९८॥ 1016
अग्रे लोकानुसारेण चतुस्तालान्तरादितः ।
अतिक्रान्ता तदा चारी विपश्चिद्भिः प्रकीर्त्तिता ॥९९९॥ 1017

जब एक पैर के टखने पर दूसरे पैर के मुडे हुए (कुञ्चित) टखने को लाकर सामने फैला दिया जाय और फिर लोक-रीति के अनुसार चार तालो की दूरी पर उसे उछाल कर सामने गिरा दिया जाय, तो विद्वानो ने उसे **अतिक्रान्ता** आकाशचारी कहा है।

२ अपक्रान्ता

बद्धां विरच्य चारीं चेदङ्घ्रिमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।
पार्श्वे न्यस्येत् तदा चारीमपक्रान्ता जगुर्बुधाः ॥१०००॥ 1018

यदि बद्धा चारी की रचना करके कुञ्चित पैर को निकाल कर पार्श्व मे रख दिया जाय, तो विद्वानो ने उसे **अपक्रान्ता** आकाशचारी कहा है।

३ भ्रमरी

अतिक्रान्ताङ्घ्रिमारच्य त्र्यस्रं चेत्परिवर्त्तयेत् ।

ऊरुजानुत्रिकमधोऽपराङ्घ्रितलतस्तनुः । 1019
भ्राम्यते सकला यत्र सा चारी भ्रमरी तदा ॥१००१॥

यदि अतिक्रान्ता चारी से युक्त चरण की रचना करके ऊरु, जानु और कटिदेश को त्र्यस्र स्थानक मे परिवर्तित कर दिया जाय, तत्पश्चात् दूसरे पैर के तलवे से शरीर को घुमा लिया जाय, तो उसे **भ्रमरी** आकाशचारी कहते है ।

४ मृगप्लुता

अङ्घ्रिं कुञ्चितमुद्यस्योत्प्लुत्योर्व्यन्त निपात्य च । 1020
अञ्चितस्य परस्याङ्घ्रेर्जङ्घां पश्चाद्यदि क्षिपेत् ।
मृगप्लुता तदा चारी स्याद् विदूषककर्तृका ॥१००२॥ 1021

जब कुञ्चित पैर की रचना करके उछल कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया जाय और दूसरे अञ्चित पैर की जँघा को परिक्षिप्त किया जाय, तब उसे **मृगप्लुता** आकाशचारी कहते हे । विदूषक के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ पार्श्वक्रान्ता

उन्नीय निजपार्श्वेन पादं कुञ्चितसंज्ञकम् । 1022
उर्व्यां चेत् पातयेत् पार्ष्ण्या पार्श्वक्रान्ता तदोदिता ॥१००३॥
लोके प्रसिद्धा सा पार्श्वदण्डपादेतिसंज्ञया । 1023
पादं परोरुपर्यन्तमुदस्योद्घट्टितं क्षितौ ।
क्षिपेदस्यामिति परे प्राहुर्नृत्तविचक्षणाः ॥१००४॥ 1024

यदि कुञ्चित पैर को अपने पार्श्व से ऊपर उठाकर एडी के बल धरती पर पटक दिया जाय, तो **पार्श्वक्रान्ता** आकाशचारी बनती है । यह चारी लोक मे **पार्श्वदण्डपादा** नाम से प्रसिद्ध है । एक पैर को दूसरे पैर के ऊरु तक उठाकर उद्घटित पाद पृथ्वी पर पटकने से यह चारी बनती हे, ऐसा नृत्ताचार्यो ने कहा है ।

६ ऊर्ध्वजानु

जानु यावत् स्तनसमं कुञ्चितं तावदुत्क्षिपेत् ।
अङ्घ्रिर्यत्रापरः स्तब्धः सोर्ध्वजानुरुदीरिता ॥१००५॥ 1025

यदि कुञ्चित पैर को तब तक ऊपर उठाया जाय जब तक उसका घुटना स्तन के बराबर ऊँचा न उठ जाय और दूसरा पैर स्थिर रहे, ऐसी क्रिया को **ऊर्ध्वजानु** आकाशचारी कहते है ।

७ भुजगत्रासिता

परोरुमूलक्षेत्रान्तमङ्घ्रिमुत्क्षिप्य कुञ्चितम् ।
नितम्बाभिमुखी यत्र पार्ष्णि जानु स्वपार्श्वगम् ॥१००६॥ 1026
उत्तानिततल पादं कटीजानुविवर्तनार्थं ।
विदध्याद्यदि सान्वर्था भुजंगत्रासिता तदा ॥१००७॥ 1027

यदि दूसरे ऊरु के मूल भाग तक कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर एडी को नितम्ब के सम्मुख किया जाय तथा घुटने को अपने पार्श्व मे पहुँचा दिया जाय, फिर चरण को कटि तथा घुटने के पास घुमाकर उसके तलवे को उत्तान कर दिया जाय, तो ऐसा करने पर वह अर्थानुरूप **भुजगत्रासिता** आकाशचारी बनती है ।

८ अलाता

पृष्ठप्रसृतपादस्य परोरोः सम्मुखं तलम् ।
कृत्वा पार्ष्णिः स्वपार्श्वे भूक्षिप्ताऽलाता निरूपिता ॥१००८॥ 1028

यदि पीठ की ओर फैले हुए वलित पैर के तलवे को दूसरे घुटने के सम्मुख करके एडी को अपने पार्श्व मे गिरा दिया जाय, तो **अलाता** आकाशचारी बनती है ।

९ दण्डपादा

पार्ष्णिदेशे स्थापयित्वा चरणं नूपुराभिधम् ।
यत्र स्वकायाभिमुखं जान्वग्रं पुरतो जवात् । 1029
यदा प्रसारयेद् दण्डपादा साभिहिता तदा ॥१००९॥

जब नूपुरपाद को एडी के पास रखकर घुटने के अग्रभाग को अपने शरीर के सम्मुख अति वेग से आगे की ओर फैला दिया जाय, तब उसे **दण्डपादा** आकाशचारी कहते है ।

१०. विद्युद्भ्रान्ता

वलितः पृष्ठतः पादः शीर्षे स्पृष्ट्वाथ सर्वतः । 1030
भ्रान्त्वा च प्रसृतो यत्र विद्युद्भ्रान्ता तदोदिता ॥१०१०॥

जब वलित पैर को पीछे की ओर अग्रभाग मे रगड दिया जाय और तत्पश्चात् चारो ओर मण्डलविद्ध किया जाय, तो **विद्युद्भ्रान्ता** आकाशचारी बनती है ।

११ सूची

कुञ्चिताङ्‌घ्रिं समुत्क्षिप्य प्रसार्यैतस्य जङ्घिकाम् । 1031
पराङ्‌घ्रेर्जानुपर्यन्तमूरुपर्यन्तमेव च ॥१०११॥
अग्रयोगेन चेदेतमङ्‌घ्रिं यत्र निपातयेत् । 1032
समवाचि तदा सूची सा नृत्तसुविचक्षणैः ॥१०१२॥

जब कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर उसकी जँघा को दूसरे पैर के घुटने तक या ऊरु तक फैलाकर अग्र-योग से उस पैर को नीचे गिरा दिया जाय, तब नाट्याचार्यो ने उसे **सूची** आकाशचारी कहा है ।

१२ दोलापादा

कुञ्चितं पादमुद्धृत्य पार्श्वयोर्दोलयेत् ततः । 1033
यत्र पार्ष्ण्या निजे पार्श्वे तं क्षिपेच्चेत् तदोदिता ।
दोलापादाभिधा त्वेषा वीरसिंहसुसूनुना ॥१०१३॥ 1034

जब कुञ्चित पैर को उछालकर दोनो पार्श्वो मे हिलाया-डुलाया जाय, उसके बाद उसे एडी से अपने पार्श्व मे फेका या गिरा दिया जाय, तो अशोकमल्ल ने उसे **दोलापादा** आकाशचारी कहा है ।

१३ उद्वृत्ता

आविद्धाङ्‌घ्रिस्थितान्योरुपार्ष्णिकं प्रविधापयेत् ।
उत्प्लुत्य भ्रमरीं दत्वा धरायां विनिपातयेत् ॥१०१४॥ 1035
यत्रान्याङ्‌घ्रिं समुद्धृत्य तदोद्वृत्ता भवेदसौ ।
अस्या नामान्तरं केचिच्चिरावर्त्तेत्यवादिषुः ॥१०१५॥ 1036

जब मुडे हुए (आविद्ध) एक पैर को ऊरु सहित, दूसरे पैर की एडी पर अवस्थित किया जाय, फिर उछल कर तथा चक्कर काट कर दूसरे पैर को उठा देने के बाद गिरा दिया जाय, तो उसे **उद्वृत्ता** आकाशचारी कहते है । कोई इसे **चिरावर्त्ता** अपर नाम से अभिहित करते है ।

१४ आविद्धा

जङ्घास्वस्तिकविश्लेषात् कुञ्चितं चरणं पुरः ।
वक्रमेकं प्रसार्य स्वपार्श्वे तु यदि पातयेत् । 1037
उपपार्ष्ण्यन्तरं पार्ष्ण्या तदाविद्धेति कीर्तिता ॥१०१६॥

यदि स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित जँघाओ को अलग-अलग करके एक वक्र कुञ्चित पैर के आगे फैलाकर फिर अपने पार्श्व मे एडी से गिरा दिया जाय, तो उसे **आविद्धा** आकाशचारी कहते हैं।

१५ नूपुरपादिका

अञ्चितं चरणं पश्चादापयित्वाऽस्य पार्ष्णिना । 1038
स्पृशेत् स्फिजं यदि ततस्तमेवाञ्चितजङ्घकम् ॥१०१७॥
यस्यां निपातयेदग्रतलेन वसुधातले । 1039
तामाचष्टाशोकमल्लस्तदा नूपुरपादिकाम् ॥१०१८॥

यदि एक अचित चरण को पीछे उछालकर एडी से नितम्ब का स्पर्श किया जाय और उसी मुडी हुई जँघा वाले (अचित) चरण को निचले अग्रभाग के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उसे अशोकमल्ल ने **नूपुरपादिका** आकाशचारी कहा है।

१६ आक्षिप्ता

त्रितालान्तरमुत्क्षिप्य पादमानीय कुञ्चितम् । 1040
पार्श्वान्तरं ततस्तं चेज्जङ्घास्वस्तिकयोगतः ।
यत्रोर्ध्वं पातयेत्पार्ष्ण्या साक्षिप्ताख्या मता तदा ॥१०१९॥ 1041

यदि एक कुचित पैर को तीन तालो की दूरी तक ऊपर उछाल कर दूसरे पार्श्व मे लाया जाय और फिर स्वस्तिकाकार जँघा के योग से उसे एडी के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उससे **आक्षिप्ता** आकाशचारी बनती है।

विनियोग

नाट्ये नृत्ये गतौ युद्धे नियुद्धेऽपि प्रयोक्तृभिः ।
प्रयोक्तव्या इमाश्चार्यो ललिताङ्गक्रियायुताः ॥१०२०॥ 1042

अभिनेताओ को नाट्य, नृत्य, गमन, युद्ध तथा बाहुयुद्ध के अभिनय मे भी, ललित आँगिक चेष्टाओ से युक्त इन चारियो का प्रयोग करना चाहिए।

क्वचिदङ्घ्रेः प्रधानत्वं क्वचित्पाणेः क्वचिद् द्वयोः ।
यथाप्रयोगशोभं हि परिज्ञेयं मनीषिभिः ॥१०२१॥ 1043

बुद्धिमान् अभिनेताओ को प्रयोग-सोष्ठव के अनुसार कही पैर की, कही हाथ की और कही दोनो की प्रधानता से चारियो का विनियोग करना चाहिए।

प्राधान्यं यत्र पादस्य करस्तदनुगो भवेत् ।
भवेच्चेद्धस्तको मुख्यः पादस्तदनुगस्तदा । 1044
यत्रोभयोः प्रधानत्वं तत्र तौ समगौ मतौ ।।१०२२।।

जहाँ पैर की प्रधानता हो, वहाँ हाथ उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ हाथ की मुख्यता हो, वहाँ पैर उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ दोनो की प्रधानता हो, वहाँ दोनो का समान रूप से प्रयोग करना चाहिए ।

यतः पादस्ततः पाणिर्यतः पाणिस्ततस्त्रिकम् । 1045
गतिमङ्घ्रेर्विदित्वैवं चार्यामङ्गानि योजयेत् ।।१०२३।।

जहाँ पर पैर का प्रयोग हो, वहाँ पर हाथ का भी और जहाँ पर हाथ का प्रयोग हो वहाँ पर कटिदेश का भी प्रयोग होना चाहिए । इस प्रकार पैर की गति समझ कर चारी मे अन्य अगो की योजना करनी चाहिए ।

गत्वा गत्वा यथा चार्या चरणो भुवि तिष्ठति । 1046
कृत्वा कृत्वा स्वकर्तव्यं करस्तद्वत्कटीतटे ।।१०२४।।

चारी मे जिस प्रकार चरण जा-जाकर भूमि पर अवस्थित होता है, उसी प्रकार हाथ अपनी क्रियाओ को करके कमर पर अवस्थित होता है ।

अर्धचन्द्रकरो नाटचे नृत्ते स्यात् पक्षवञ्चितः । 1047
पक्षप्रद्योतको यद्वा कटिक्षेत्रगतः करः ।।१०२५।।

नाटच मे अर्धचन्द्र हस्त-मुद्रा का और नृत्त मे पक्षवचितक या पक्षप्रद्योतक हस्त-मुद्रा का प्रयोग होता है । इन दोनो अभिनयो मे हाथ कटिदेश पर अवस्थित रहता हे ।

पैंतीस देशी भूमिचारियाँ (३)

१ रथचक्रा

स्थानकं चतुरस्रं चेद् विधायाङ्घ्री प्रगच्छतः । 1048
श्लिष्टौ पुरोऽथवा पश्चाद् रथचक्रा तदा मता ।।१०२६।।

जब चतुरस्र स्थानक की रचना करके सटे हुए दोनो पैरो को आगे या पीछे चलाया जाय, तब उसे **रथचक्रा** चारी कहते है ।

२ तलोद्वृत्ता

पुरश्चेत्सर्पतस्तूर्णमङ्गुलीपृष्ठभागतः । 1049
पादाग्रे सा तदादिष्टा तलोद्वृत्ता मनीषिभिः ॥१०२७॥

जब दोनो पैरो के अग्रभाग अँगुलियो के पृष्ठभाग पर (आश्रित होकर) शीघ्रतापूर्वक आगे की ओर चले, तब विद्वानो ने उसे **तलोद्वृत्ता** चारी कहा है ।

३ मराला

नन्द्यावर्तस्थितावङ्घ्री पार्ष्णिप्रपदरेचितौ । 1050
प्रसार्येते पुरो यत्र सा मरालोदिता बुधैः ॥१०२८॥

नन्द्यावर्त नामक स्थानक और रेचित मुद्रा मे अवस्थित दोनो पैर एडी तथा अग्रभाग मे जहाँ सामने फैलाये जाते है, वहाँ विद्वानो ने उसे मराला चारी कहा हे ।

४ पार्ष्णिरेचिता

पार्ष्णिपार्श्वगताख्येन स्थितास्थानेन यत्र चेत् । 1051
रेचिता क्रियते पार्ष्णिः सा तदा पार्ष्णिरेचिता ॥१०२९॥

पार्ष्णिपार्श्वगत स्थानक मे अवस्थित एडी जब रेचित की जाती हे, तब उसे **पार्ष्णिरेचिता** चारी कहते है ।

५ परावृत्ततला

पृष्ठोत्तानतलो यत्र बहिरङ्घ्रिः प्रसारितः । 1052
चारी सा कथिता धीरैः परावृत्ततलाभिधा ॥१०३०॥

जहाँ तलवे को पीठ की ओर उत्तान करके पैर को बाहर फैला दिया जाता है, उसे धीर पुरुष **परावृत्ततला** चारी कहते है ।

६ तिर्यङ्मुखा

स्थित्वा चेद् वर्धमानने पादौ तिर्यक् प्रसर्पतः । 1053
वामदक्षिणयोस्तूर्णं तदा तिर्यङ्मुखा मता ॥१०३१॥

यदि वर्धमान स्थानक मे अवस्थित होकर दोनो पैर वाम-दक्षिण पार्श्वो मे शीघ्रता के साथ तिरछे फैला दिये जाँय, तो उसे **तिर्यङ्मुखा** चारी कहते है ।

७ नूपुरविद्धिका

संश्रित्य स्वस्तिकं पार्ष्ण्योस्तथा पादाग्रयोर्यदि । 1054

यत्राङ्‌घ्री रेचितौ सा स्यात्तदा नूपुरविद्धिका ॥१०३२॥

जब एडियो तथा पैरो के अग्रभागो के स्वस्तिक स्थानको का सहारा लेकर दोनो पैर रेचित किये जाते है, तब उसे **नूपुरविद्धिका** चारी कहते है ।

८ कातरा

नन्द्यावर्त्ते स्थिताङ्‌घ्रिभ्यामपसृत्या तु कातरा ॥१०३३॥ 1055

नन्द्यावर्त स्थानक मे अवस्थित पैरो के अलग कर देने से **कातरा** चारी होती है ।

९ करिहस्ता

संहतस्थानकेनाङ्‌घ्री स्थित्वोर्वी यत्र घर्षतः ।

पार्श्वाभ्या चेत् तदा सद्भिः करिहस्ताभिधीयते ॥१०३४॥ 1056

जब सहत स्थानक मे अवस्थित होकर दोनो पैर दोनो पार्श्वो से पृथ्वी को रगडते है, तब उसे सज्जन लोग **करिहस्ता** चारी कहते है ।

१० हरिणीत्रासिता

कुञ्चिते वलितप्रान्ते तले स्वस्तिकबन्धने ।

अङ्‌घ्र्योः कृत्वा यदोत्प्लुत्य नियते यत्र सा तदा । 1057

हरिणीत्रासिता चारी समवाचि विचक्षणैः ॥१०३५॥

जब कुचित पैरो के प्रान्तभाग बल खाये हुए हो तथा तलवे स्वस्तिकाकार मे बँधे हो और वे उछलकर एक जगह स्थिर हो जाँय, तो उसे विद्वानो ने **हरिणीत्रासिता** चारी कहा है ।

११ अर्धमण्डलिका

क्षितिघृष्टौ बहिः प्राप्तौ पादौ यत्र शनैः क्रमात् । 1058

आवर्त्येते यदा सा स्यादर्धमण्डलिका तदा ॥१०३६॥

जहाँ दोनो पैरो को पृथ्वी पर रगड कर बाहर करके क्रमश धीरे-धीरे घुमाया जाता है, तब वहाँ उसे **अर्धमण्डलिका** चारी कहते है ।

१२ ऊरुताडिता

स्थित्वैकपादस्थानेन क्षितिस्थेनाङ्‌घ्रिणा यदा । 1059

यत्रोरुस्ताड्यते चारी तदासावूरुताडिता ॥१०३७॥

जब एकपाद स्थानक मे अवस्थित होकर पृथ्वी पर रखे हुए पैर मे ऊरु को पीटा जाता है, तब उसे **ऊरुताडिता** चारी कहते है ।

१३ मदालसा

यस्याभितस्तत. पादौ स्थापयेन्मत्तवद्यदि । 1060
अलसौ सा तदा धीरैर्निरवाचि मदालसा ॥१०३८॥

यदि मतवाले की तरह, अलसाये हुए दोनो पैरो का सब ओर रख जाय, तो वीर पुरुष उसे **मदालसा** चारी कहते है ।

१४ सचारिता

आकुञ्चिताङ्घ्रिमुत्क्षिप्यासकृदन्येन योजयेत् । 1061
तिर्यक् सञ्चारयेदन्यं तदा सञ्चारिता मता ॥१०३९॥

जब कुछ मुडे हुए एक पैर को ऊपर उठाकर बार-बार दूसरे पैर मे मिला दिया जाय तथा दूसरे पैर को तिरछा चलाया जाय, तो उसे **सचारिता** चारी कहते है ।

१५ उत्कुचिता

आकुञ्च्य चरणावूर्ध्वं यत्रोत्क्षिप्य पुरः क्षिपेत् । 1062
ऐकैकं चेत् तदोक्ता सोत्कुञ्चितान्वर्थनामभाक् ॥१०४०॥

जब दोनो चरणो को थोडा मोडकर तथा ऊपर उठाकर एक-एक को आगे फेका जाय, तब उसे अर्थानुरूप नाम वाली **उत्कुञ्चिता** चारी कहते है ।

१६ अपकुचिता

यत्राकुञ्चितपादाभ्या क्रमात् पार्श्वाहतिर्भवेत् । 1063
प्राहापकुञ्चितामेनां वीरसिहात्मज· सुधीः ॥१०४१॥

जहाँ कुछ मुडे हुए दोनो चरणो से क्रमश पार्श्वो को पीटा जाय, वहाँ वीरसिह के विद्वान् पुत्र अशोकमल्ल ने उसे **अपकुञ्चिता** चारी कहा है ।

१७ स्फुरिता

स्फुरिताग्रे सृतौ वेगाद् भूस्पृशोरङ्घ्रिपार्श्वयोः ॥१०४२॥ 1064

भूमि का स्पर्श करते हुए चरणो के पार्श्वो को वेग से आगे फैलाने पर **स्फुरिता** चारी बनती है ।

१८. स्तम्भक्रीडनिका

तिर्यक्प्रसृतपादस्य पार्श्वं परतलेन चेत् ।
यत्र स्पृशेन्मुहुः सोक्ता स्तम्भक्रीडनिका तदा ॥१०४३॥ 1065

जहाँ तिरछे फैले हुए एक पैर के पार्श्व को दूसरे पैर का तलवा बार-बार स्पर्श करे, वहाँ उसे **स्तम्भक्रीडनिका** चारी कहते हैं ।

१९ तिर्यक्कुंचिता

अर्ङ्घ्रि तिर्यञ्चमाकुञ्च्य न्यस्येद्यत्र मुहुर्मुहुः ।
समवोचदिमां तिर्यक्कुञ्चितां वीरसहजः ॥१०४४॥ 1066

जहाँ एक पैर को तिरछा करके कुछ सिकोड कर बार-बार (भूमि पर) रखा जाय, वहाँ उसे अशोकमल्ल ने **तिर्यक्कुञ्चिता** चारी कहा है ।

२० तलदर्शिनी

चरणौ संहतस्थौ चेत्तिर्यग्विच्युत्य भूतलम् ।
स्पृशतो बाह्यपार्श्वाभ्यां स्यात्तदा तलदर्शिनी ॥१०४५॥ 1067

जब संहत स्थानक में स्थित दोनों चरण तिरछे अलग होकर बाहरी पार्श्वों से भूतल का स्पर्श करें, तब उसे **तलदर्शिनी** चारी कहते हैं ।

२१ खुत्ता

पादाग्रेण क्षितौ घातो यत्र खुत्तेति सा मता ॥१०४६॥

जहाँ चरणों के अग्रभाग से पृथ्वी पर आघात किया जाय, वहाँ उसे **खुत्ता** चारी कहते हैं ।

२२ लंघितजंघिका

खण्डसूचिः स्थितः पादो वेगेनाकृष्य लङ्घ्यते । 1068
यत्रान्यचरणेनैषा भवेल्लङ्घितजङ्घिका ॥१०४७॥

जहाँ खण्डसूचि स्थानक में अवस्थित एक पैर को वेग से खींचकर दूसरा पैर लाँघ जाता है, वहाँ उसे **लंघितजंघिका** चारी कहते हैं ।

२३ स्वस्तिका

स्वस्तिकाकृतिभागङ्घ्रिर्यत्र सा स्वस्तिका मता ॥१०४८॥ 1069

जहाँ पैर स्वस्तिकाकार धारण करे, वहाँ उसे **स्वस्तिका** चारी कहते हैं ।

२४ कुलीरिका

नन्द्यावर्त्तस्थानकस्थावङ्घ्री तिर्यक्प्रसर्पतः ।
यदा यत्र तदा सद्भिरसौ प्रोक्ता कुलीरिका ।।१०४९।। 1070

जब दोनो चरण नन्द्यावर्त्त स्थानक मे अवस्थित होकर तिरछे चले, तब उसे सज्जन लोग **कुलीरिका** चारी कहते है ।

२५ निकुट्टक

कुञ्चितेनाङ्घ्रिणाग्रेण गतिस्तु स्यान्निकुट्टकः ।।१०५०।।

मुडे हुए पैर के अग्रभाग से चलना **निकुट्टक** चारी कहलाता है ।

२६ पुराटिका

पुराटिका मिथोऽङ्घ्रिभ्यामुद्वृत्ताभ्यां निकुट्टनम् ।।१०५१।। 1071

उठे हुए चरणो से परस्पर कूटना **पुराटिका** चारी कहलाती है ।

२७ अर्धपुराटिका

यत्रोद्वृत्तेन पादेन निकुट्टेन निकुट्टनम् ।
पराङ्घ्रेरुद्धृतस्यैषा भवेदर्धपुराटिका ।।१०५२।। 1072

जहाँ उठे हुए एक चरण से दूसरे अनावृत चरण को कूटा जाय, वहाँ **अर्धपुराटिका** चारी कहलाती है ।

२८ स्फुरिका

पुरः प्रसर्पतः पादौ समौ चेत् स्फुरिका तदा ।।१०५३।।

जब सम नामक दोनो पैर आगे चलते है, तब उसे **स्फुरिका** चारी कहते है ।

२९ सारिका

पुरः सरति यत्राङ्घ्रिरेकः सा सारिकोदिता ।।१०५४।। 1073

जहाँ एक पैर आगे चलना है, उसे **सारिका** चारी कहते है ।

३० लताक्षेप

पश्चात्प्रक्षिप्य पादं चेत्पुरस्ताच्च प्रसार्यतम् ।
यत्रोर्वीं कुट्टयेत्तेन लताक्षेपस्तदा त्वसौ ।।१०५५।। 1074

जहाँ एक पैर को पीछे फेककर आगे फैला दिया जाय और उससे पृथ्वी को कूटा जाय, तो उसे **लताक्षेप** चारी कहते है ।

३१ अड्डस्खलितिका

स्खलितोऽङ्घ्रिर्यत्र तिर्यगड्डुस्खलितिका तु सा ।।१०५६।।

जब पैर तिरछा गिरता है, वहाँ **अड्डस्खलितिका** चारी होती है ।

३२ ऊरुवेणी

पादौ स्वस्तिकबन्धेन स्थित्वाङ्घ्री घर्षतो धराम् । 1075

पार्श्वाभ्यां चेत्तदा धीरैरूरुवेणी निरूपिता ।।१०५७।।

जब दोनो चरण स्वस्तिक स्थानक मे अवस्थित होकर पार्श्वों से पृथ्वी को घिसते है, तब वीर पुरुष उसे **ऊरुवेणी** चारी कहते हैं ।

३३ विश्लिष्टा

स्थित्वाङ्घ्री पार्ष्णिविद्धेन चेद्विश्लिष्योपगच्छतः । 1076

यद्वापगच्छतो यत्र सा विश्लिष्टा तदोदिता ।।१०५८।।

जहाँ पार्ष्णि नामक स्थानक मे अवस्थित होकर दोनो पैर अलग होकर निकट आ जाँय या दूर हो जाँय तो उसे **विश्लिष्टा** चारी कहते है ।

३४ समस्खलितिका

अग्रतः पृष्ठतस्तिर्यक पादौ चेत्स्खलतः समम् । 1077

यत्र सोक्ता तदा चारी समस्खलितिका[बुधैः] ।।१०५९।।

जब दोनो पैर आगे-पीछे तिरछे होकर एक साथ गिरे, तब उसे विद्वान् लोग **समस्खलितिका** चारी कहते हे ।

३५ संघट्टिता

स्थित्वा विषमसूच्याख्यस्थानेनोत्प्लुत्य चेत् पतन् । 1078

क्षितौ संघट्टयेत् पादौ तदा संघट्टिता मता ।।१०६०।।

यदि विषमसूचि स्थानक मे अवस्थित होकर फिर उछल कर गिरते हुए पैरो से पृथ्वी पर चोट की जाय, तो उस क्रिया को **संघट्टिता** चारी कहते है ।

उन्नीस देशी आकाशचारियाँ (४)

१ दण्डपादा

अङ्घ्रि स्वस्तिकविश्लिष्टं तिर्यगूर्ध्वं प्रसारयेत् । 1079

यत्र सा दण्डपादाख्या चारी प्रोक्ता मनीषिभिः ।।१०६१।।

जहाँ स्वस्तिक मुद्रा से हटे हुए पैर को तिरछा ऊपर फैला दिया जाय, वहाँ मनीषियों ने उसे **दण्डपादा** चारी कहा है।

२ पुरक्षेपा

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य विस्तारत्वरया पुरः । 1080
क्षिपेत् क्षितौ यदा चारी पुरःक्षेपा तदोदिता ।।१०६२।।

कुञ्चित मुद्रा मे पैर को ऊपर उठाकर यदि विस्तार की शीघ्रता से आगे पृथ्वी पर फेंक दिया जाय तो **पुरक्षेपा** चारी बनती है।

३ अपक्षेपा

बाह्यपार्श्वेन सस्पृश्य पृष्ठमूरोर्यदीतरः । 1081
अङ्घ्रिरेति नितम्बान्तमपक्षेपा तदा मता ।।१०६३।।

यदि ऊरु के पृष्ठभाग को दूसरा पैर, बाहर वाले पार्श्व से स्पर्श करके नितम्ब के अन्त तक पहुँच जाय तो उसे **अपक्षेपा** चारी कहते है।

४ हरिणप्लुता

उत्प्लुत्य चरणौ यस्यामवनौ विनिपातयेत् । 1082
समाचष्ट नृपाशोकमल्लस्ता हरिणप्लुताम् ।
एकाङ्घ्रिपातनं त्वस्यां मन्वतेऽन्ये मनीषिणः ।।१०६४।। 1083

जिस (चारी) मे दोनो चरण उछलकर पृथ्वी पर गिर पडे, उसे राजा अशोकमल्ल ने **हरिणप्लुता** चारी कहा है। दूसरे मनीषी लोग उसमे एक ही चरण को गिराना मानते है।

५ विद्युद्भ्रान्ता

पुरस्तात्पादमुत्क्षिप्य भालस्योपरि सत्वरम् ।
संभ्राम्योर्व्यां क्षिपेद्यत्र विद्युद्भ्रान्ता भवेदसौ ।।१०६५।। 1084

जहाँ पैर को आगे शीघ्रता से उठाकर तथा ललाट के ऊपर घुमाकर पृथ्वी पर फेंक दिया जाय, वहाँ उसे **विद्युद्भ्रान्ता** चारी कहते है।

६ विक्षेपा

पुरस्तादन्तरिक्षेऽङ्घ्रिं चेत्प्रसार्य मुहुर्मुहुः ।
कुर्यादाकुञ्चितं यत्र सा विक्षेपा तदोदिता ।।१०६६।। 1085

जब आगे आकाश मे पैर को बार-बार फैलाकर मिकोड लिया जाय, तब उसे **विक्षेपा** चारी कहते है ।

७ जवावर्ता

अन्तर्भ्रान्त्या बहिर्भ्रान्त्या क्रमेणाङ्घ्रेस्तल यदि ।
यत्रान्यजानुनः पृष्ठे पार्श्वेऽपि क्षिप्यते तदा । 1086
जङ्घावर्ताभिधा सोक्ता चारी चारीविचक्षणैः ॥१०६७॥

जब क्रमश भीतर-बाहर घुमाकर (एक पैर के) तलवे को दूसरे (पैर के) घुटने के पृष्ठभाग या पार्श्व-भाग पर रखा जाय, तब उस चारी के विद्वान् **जवावर्ता** चारी कहते ह ।

८ अँघ्रिताडिता

विस्तार्याङ्घ्री समुत्प्लुत्य मिथस्ताडयतस्तले । 1087
गगने चेत् तदा चारी मतान्वर्थाङ्घ्रिताडिता ॥१०६८॥

जब आकाश मे पेरो को फैलाकर तथा उछलकर परस्पर तलवे को पीटा जाय, तब उसे अर्थ के अनुरूप **अँघ्रिताडिता** चारी कहते हे ।

९ अलाता

किञ्चित्पृष्ठगतः पादः परपादेन लङ्घ्यते । 1088
यदि द्रुत तदालाता विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥१०६९॥

यदि पीठ की ओर थोडा गया हुआ एक पैर दूसरे पैर के द्वारा शीघ्रता से लाँघा जाय, तो विद्वान् लोग उसे **अलाता** चारी कहते है ।

१० डमरी

जानुदघ्नं समुत्क्षिप्य कुञ्चितं चरणं यदि । 1089
सत्वरं भ्रामयेदन्तर्बहिश्च डमरी तदा ॥१०७०॥

यदि कुञ्चित चरण को घुटने तक उठाकर बाहर-भीतर शीघ्रता से घुमाया जाय, तो वह **डमरी** चारी कहलाती है ।

११ विद्धा

स्वस्तिकाकृतयोरङ्घ्र्योर्यत्रैको दोलितो मनाक् । 1090
परः पुरः कुञ्चितश्चेत्सा विद्धोक्ता बुधैस्तदा ॥१०७१॥

यदि स्वस्तिकाकार पैरो मे एक को थोडा हिलाया जाय ओर दूसरे पैर को आगे मोड दिया जाय, तो वह **विद्धा** चारी कहलाती है ।

१२ जघालघनिका

आकुञ्चिताङ्घ्रिमन्येन पादेन दिवि लङ्घयेत् । 1091
यत्रासौ कथिता चारी जङ्घालङ्घनिका बुधैः ।।१०७२।।

यदि किञ्चित् मुडे हुए एक पर को दूसरे पैर से आकाश मे लाँघा जाय, तो उसे विद्वान् लोग **जघालघनिका** चारी कहते हैं ।

१३ सूची

पार्श्वेनोरो विनिक्षिप्य चरणं चेत् प्रसारयेत् । 1092
तीक्ष्णाग्रं यत्र सा सूची तदोक्ता नृत्तवेदिभिः ।।१०७३।।

यदि पार्श्व से छाती को दबाकर तीक्ष्ण अग्रभाग वाले चरण को फैला दिया जाय, तो नृत्त के विद्वान् उसे **सूची** चारी कहते है ।

१४ प्रावृत

यत्राङ्घ्रिरुद्धृतो मूर्तिर्वलिता ललिता भवेत् । 1093
तदुक्तं प्रावृतं सद्भिः कुसुमायुधजीवनम् ।।१०७४।।

जहाँ एक पैर उठा लिया जाय ओर झुकाया हुआ शरीर सुन्दर दीखता हो, वहाँ सज्जन लोग उसे कामदेव का जीवन स्वरूप **प्रावृत्त** चारी कहते है ।

१५ उल्लाल

उल्लालनं क्रमेणाङ्घ्र्योर्दिव्युल्लाल उदीरितः ।।१०७५।। 1094

पैरो को क्रमश हिलाने को **उल्लाल** चारी कहते है ।

१६. वेष्टन

पादेनैकेन यद्यन्यं वेष्टयेद्वेष्टनं तदा ।
एतदेव परे प्राहुर्वलनं वृ (?नृ) त्तवेदिनः ।।१०७६।। 1095

यदि एक पैर से दूसरे पैर को वेष्टित कर लिया जाय तो उसे **वेष्टन** चारी कहते है । दूसरे नृत्त-पण्डित इसी को **वलन** चारी (भी) कहते है ।

१७ उद्वेष्टन

वेष्ठयित्वा यदाङ्घ्रेः स्यात् पृष्टदेशे प्रसारणम् ।
तदोद्वेष्टनमाख्यातमशोकेन महीभुजा ॥१०७७॥ 1096

जब एक पैर को वेष्टित करके पृष्टदेश मे फैला दिया जाय, तब राजा अशोकमल्ल उसे **उद्वेष्टन** चारी कहते है।

१८ उत्क्षेप

अङ्घ्रेराकुञ्चितस्याग्रे पृष्ठे चोत्क्षेपणे यदा ।
क्रियते जानुपर्यन्तं तदोत्क्षेपोऽभिधीयते ॥१०७८॥ 1097

जब कुछ मुडे हुए पैर को आगे ओर पीछे घुटने तक ऊपर उठाया जाय, तव उसे **उत्क्षेप** चारी कहते है।

१९ पृष्टोत्क्षेप

यद्येष पृष्ठ एव स्यात् पृष्ठोत्क्षेपस्तदा मतः ॥१०७९॥

यदि यह उत्क्षेप केवल पीछे की ओर ही किया जाय तो उसे **पृष्ठोत्क्षेप** चारी कहते है।

पच्चीस मुडुपचारियाँ (५)

अङ्गुलीपृष्ठभागं हि नृत्तज्ञा मुडुपं जगुः । 1098
चार्यते तेन मुडुपचारीत्यन्वर्थसञ्ज्ञिका ॥१०८०॥

नाटचाचार्यो ने अँगुली के पृष्ठभाग को **मुडुप** कहा है। उससे चेष्टा प्रकट की जाती है। इसलिए (उसकी) **मुडुपचारी** यह अन्वर्थसज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है।

निरुक्तिमेवं केऽप्याहुरन्ये संज्ञां डवित्थवत् । 1099

अन्य विद्वान् मुडुपचारी शब्द की निरुक्ति (व्याख्याविशेष) इस प्रकार करते है और दूसरे आचार्य डवित्थ शब्द की तरह इसकी (अव्युत्पन्न) सज्ञा बताते है।

मुडुपोपपदाश्चार्यः सन्ति यद्यप्यनेकशः ॥१०८१॥
तथाप्यमूर्मया काश्चिल्लिख्यन्ते कोहलोदिताः । 1100

यद्यपि मुडुप से सम्बद्ध चारियाँ अनेकानेक है, तथापि यहाँ आचार्य कोहल द्वारा प्रतिपादित कुछ चारियो का उल्लेख किया जा रहा है।

मुडुपचारी के भेद

पुरःपश्चात्सरा चारी तथा पश्चात्पुरःसरा ॥१०८२॥

---

१ देखिए 'लोहितोदिता' भरतकोश, पृ० ९११ ।

मध्यचक्राभिधा चारी तथैकपदकुट्टिता । 1101
पदद्वयनिकुट्टान्या पादस्थितिनिकुट्टिता ।।१०८३।।
[क्रमपादनिकुट्टा च समपादनिकुट्टिता । 1102
चारी डमरुकुट्टाख्या डमरुद्वयकुट्टिता] ।
पुरःक्षेपनिकुट्टा च पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता । 1103
पार्श्वक्षेपनिकुट्टान्या चक्रकुट्टनिका परा ।।१०८४।।
मध्यस्थापनकुट्टा च चतुष्कोणनिकुट्टिता । 1104
चारी त्रिकोणचारान्या तिरश्चीननिकुट्टिका ।।१०८५।।
अनुलोमविलोमा च प्रतिलोमानुलोमका । 1105
पुरस्ताल्लुठिता पृष्ठलुठिता चक्र(?वक्र)कुट्टिता ।।१०८६।।
पार्श्वद्वयचरी मध्यलुठिताख्या परा तथा । 1106
श्रीमताशोकमल्लेनेत्युद्दिष्टाः पञ्चविंशतिः ।।१०८७।।

श्रीमान् अशोकमल्ल ने मुडुपचारी के पचीस भेद बताये है १ पुर पश्चात्सरा, २ पश्चात्पुर सरा, ३ मध्यचक्रा, ४ एकपदकुट्टिता, ५ पदद्वयनिकुट्टा, ६ पादस्थितिनिकुट्टिता ७ क्रमपादनिकुट्टिका ८ समपाद-निकुट्टिता, ९ डमरुट्टिता, १० डमरुद्वयकुट्टिता, ११ पुर क्षेपनिकुट्टिता १२ पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता १३ पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता, १४ चक्रकुट्टन्किा, १५ मध्यस्थापनकुट्टा, १६ चतुष्कोणनिकुट्टिता, १७ त्रिकोणचारी, १८ तिरश्चीनकुट्टिता, १९ अनुलोमविलोमका, २० प्रतिलोमानुलोमका, २१ पुरस्ताल्लुठिता २२ पृष्ठलुठिता, २३ चक्रकुट्टिता, २४ पार्श्वद्वयचरी और २५ मध्यलुठिता ।

इमा मुडुपचार्योऽथ लक्षणं प्रतिपाद्यते ।।१०८८।। 1107

ये मुडुपचारियाँ है । अब इनके लक्षण बताते है ।।

१ पुर पश्चात्सरा

तलेनादौ निकुट्याथ पुरः पश्चान्निवेशितः ।
अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन स्वस्थाने कुट्टितो यदा । 1108
पुर.पश्चात्सरा चारी तदान्वर्था निरूपिता ।।१०८९।।

पहले तलवे से कूटकर पैर को आगे ओर पीछे करके रखा जाय, ओर पश्चात् उँगलियो के पृष्ठभाग से एक पैर को अपने स्थान पर कूटा जाय। ऐसा करने से अर्थ के अनुरूप **पुर पश्चातसरा** चारी बनती है।

२ पश्चात्पुर सरा

एषा पश्चात्पुरःक्षेपान्मता पश्चात्पुरःसरा ॥१०९०॥ 1109

यदि पैर को पीछे और आगे करके चलाया जाय, तो वह **पश्चात्पुर सरा** चारी कहलाती है।

३ मध्यचक्रा

कुट्टितः स्थापितो यत्र भ्रमितः कुट्टितः पुनः ।
स्थाने सा मध्यचक्रेति चारी प्रोक्ता विचक्षणैः ॥१०९१॥ 1110

जहाँ पैर कूटा जाय, रखा जाय, घुमाया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे विद्वानो ने **मध्यचक्रा** चारी कहा है।

४ एकपदकुट्टिता

स्वपार्श्वेकुट्टितः पूर्वं स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
कुट्टितश्चेत्पुनः स्थाने तदैकपदकुट्टिता ॥१०९२॥ 1111

पहले एक पैर अपने पार्श्व मे कूटा जाय, उसके बाद उँगलियो के पृष्ठभाग से अवस्थित किया जाय, और पुन स्थान मे कूटा जाय, तो उसे **एकपदकुट्टिता** चारी कहते है।

५ पदद्वयनिकुट्टा

पदद्वयनिकुट्टा स्यात् सैवाङ्घ्रिद्वयनिर्मिता ॥१०९३॥

यदि दोनो पेरो से उक्त चारी बनायी जाय, तो उसे **पदद्वयनिकुट्टा** चारी कहते है।

६ पादस्थितिनिकुट्टिता

यस्यां निकुट्टितः पादः स्थितोऽथाङ्गुलिपृष्ठतः । 1112
इतस्ततः कुट्टितः सा पादस्थितिनिकुट्टिता ॥१०९४॥

जिस चारी मे कूटा हुआ एक पैर उँगलियो के पृष्ठभाग से अवस्थित होकर (पुन) इधर-उधर कूटा जाय, उसे **पादस्थितिनिकुट्टिता** चारी कहते है।

७. क्रमपादनिकुट्टिका

एवं द्व्यङ्घ्रिकृता सैव क्रमपादनिकुट्टिका ॥१०९५॥ 1113

उक्त प्रकार से यदि दोनो पैरो को सम्पन्न किया जाय, तो उसे क्रमपादनिकुट्टिका चारी कहते है।

८ समपादनिकुट्टिता

निकुट्टितौ समौ पादौ स्थितावङ्गुलिपृष्ठयो. ।
यदा तदा मताऽन्वर्था समपादनिकुट्टिता ॥१०९६॥ 1114

जब सम नामक दोनो पैर कूटे जाकर उँगलियो के पृष्ठभाग पर अवस्थित हो, तो उसे अर्थानुरूप **समपादनिकुट्टिता** चारी कहते हे।

९ डमरुकुट्टिता

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्व लुठितोङ्गुलिपृष्ठत. ।
पश्चान्निकुट्टितः स्थाने तदा डमरुकुट्टिता ॥१०९७॥ 1115

यदि एक पैर पहले कूटा जाकर उँगलियो के पृष्ठ भाग पर लोट जाय आर पश्चात् स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **डमरुकुट्टिता** चारी कहते है।

१०. डमरुद्वयकुट्टिता

पादयुग्मकृता सैव डमरुद्वयकुट्टिता ॥१०९८॥

यदि उक्त चारी मे दोनो पैर उक्त प्रकार की क्रिया से सम्पन्न हो, तो उसे **डमरुद्वयकुट्टिता** चारी कहते है।

११ पुरक्षेपनिकुट्टिता

[चरणः] कुट्टितः पूर्व पुरतोङ्गुलिपृष्ठत. । 1116
स्थापितः कुट्टितः स्थाने पुरःक्षेपनिकुट्टिता ॥१०९९॥

यदि पहले चरण को कूटकर आगे की ओर उँगलियो के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय तो, उसे **पुरक्षेपनिकुट्टिता** चारी कहते हैं।

१२ पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता

पश्चात्क्षेपाद्भवेदेषा पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥११००॥ 1117

उक्त चारी मे पैर को पीछे की ओर चलाने से **पश्चात्क्षेपपनिकुट्टिता** चारी बनती है।

१३ पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता

पार्श्वतः क्षेपणादेवं पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता ॥११०१॥

बगल की ओर उक्त प्रकार चलाने से **पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता** चारी बनती है।

१४ चक्रकुट्टनिका

यदाङ्घ्रि कुट्टितं पार्श्वाद्भ्रामयित्वा निवेशयेत् । 1118
ततः स्थाने कुट्टयेच्च चक्रकुट्टनिका तदा ॥११०२॥

जब कूटे हुए पैर को बगल मे घुमाकर रखा जाय और उसे फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **चक्रकुट्टनिका** चारी कहते हे ।

१५ मध्यस्थापनकुट्टा

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः । 1119
मध्ये निवेशितश्चाथ पुनस्तत्रैव कुट्टितः ।
मध्यस्थापनकुट्टेति तदान्वर्था प्रकीर्तिता ॥११०३॥ 1120

यदि पहले पैर को कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय और फिर मध्य मे स्थापित कर पुन वही पर कूटा जाय, तो उसे अर्थ के अनुरूप **मध्यस्थापनकुट्टा** चारी कहते है ।

१६ चतुष्कोणनिकुट्टिता

यत्राङ्घ्रिः कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः ।
त्र्यस्रभावात्पुनश्चापि पुरः पश्चात्तदान्यथा । 1121
स्थाने च कुट्टितः सा स्याच्चतुष्कोणनिकुट्टिता ॥११०४॥

जहाँ एक पैर को पहले कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय, फिर त्रिकोणभाव से आगे-पीछे रखा जाय, पुन विपरीत भाव से स्थान पर कूटा जाय, ऐसी क्रिया को **चतुष्कोणनिकुट्टिता** चारी कहते हे ।

१७ त्रिकोणचारी

अङ्घ्रिर्निवेशितो यत्र स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1122
निकुट्टितः पुरः पार्श्वे पृष्ठे वाथ निवेशितः ॥११०५॥
अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन पुनः स्थाने च कुट्टितः । 1123
सोक्ता त्रिकोणचारीति सद्भिरन्वर्थनामभाक् ॥११०६॥

जहाँ पैर को प्रविष्ट करके उँगुलियो के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय, फिर कूटकर आगे या बगल मे या पीछे प्रविष्ट किया जाय, अनन्तर उँगलियो के पृष्ठभाग से पुन उसे स्थान पर कूटा जाय, ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप **त्रिकोणचारी** चारी कहते है ।

१८ तिरश्चीनकुट्टिता

अङ्घ्रिर्निकुट्टितः पूर्वं स्वपार्श्वपरपार्श्वयोः । 1124
मध्ये निवेशितः पश्चात्तिर्यक् तत्रैव कुट्टित. ॥११०७॥
यत्र सा स्यात्तिरश्चीनकुट्टितान्वर्थनामभाक् । 1125

पहले पैर को अपने पार्श्व तथा दूसरे (पैर) के पार्श्व मे कूटकर मध्य मे स्थापित किया जाय, पश्चात् वहीं पर उसे तिरछा करके कूटा जाय, ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप **तिरश्चीनकुट्टिता** चारी कहते है ।

१९ अनुलोमविलोमका

चारी त्रिकोणचारी चेदनुलोमविलोमगा ।
स्वस्थाने स्थापितपदा ततस्तत्रापि कुट्टिता । 1126
तदा निगदिता सद्भिरनुलोमविलोमका ॥११०८॥

यदि त्रिकोणचारी नामक चारी अनुलोम (यथाक्रम) और विलोम (विपरीतक्रम) को प्राप्त कर अपने स्थान मे स्थापित चरण वाली बनती है, तथा वहाँ कूटी भी जाती है तो उसे सज्जन लोग **अनुलोमविलोमका** चारी कहते है ।

२० प्रतिलोमानुलोमका

व्यत्यासाद्रचिता सैव प्रतिलोमानुलोमका ॥११०९॥ 1127

उक्त चारी को व्यतिक्रम करके बनाने से **प्रतिलोमानुलोमका** चारी होती है ।

२१ पुरस्ताल्लुठिता

पुरस्ताल्लुठिता सा स्याद्यत्राङ्घ्रिर्लुठितः पुरः ॥१११०॥

जहाँ पैर आगे लोटता है वहाँ **पुरस्ताल्लुठिता** चारी होती है ।

२२ पृष्ठलुठिता

पादश्चेत्कुञ्चितः पृष्ठे लुठितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1128
पुनश्च लुठितः स्थाने स्यात् पृष्ठलुठिता तदा ॥११११॥

यदि पैर पृष्ठभाग मे सिकुडा हुआ हो, उँगलियो के पृष्ठभाग से लोटा हुआ हो, और स्थान पर पुन लोट जाय, तो उसे **पृष्ठलुठिता** चारी कहते है ।

२३ चक्रकुट्टिता

कुट्टयित्वा तु विन्यस्य भ्रामितो लुठितो यदि । 1129
कुट्टितोऽङ्घ्रिःपुनःस्थाने तदोक्ता चक्र(?वक्र)कुट्टिता ।।१११२।।

यदि पैर को कटकर स्थापित करके घुमाया तथा लोटाया जाय और पुन स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **चक्रकुट्टिता** चारी कहते है ।

२४ पार्श्वद्वयचरी

कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च स्थितोऽङ्घ्रिरितरस्ततः । 1130
स्वस्तिकाद्विच्युतः पूर्वः स्वपार्श्वे च निकुट्टित. ।
एवमङ्घ्र्यन्तरेणापि पार्श्वद्वयचरी तदा ।।१११३।। 1131

यदि कूटा हुआ पैर उगुलियो के पृष्ठभाग मे स्थित हो, दूसरा पैर स्वस्तिकमुद्रा से अलग हो, पहला अपने पार्श्व मे कूटा जाय, इस प्रकार दूसरे पैर से भी किया जाय, ऐसी क्रिया को **पार्श्वद्वयचारी** कहते है ।

२५ मध्यलुठिना

कुट्टितः स्थापितोऽङ्घ्रिश्चेल्लुठितश्च निकुट्टितः ।
समादिष्टा तदा मध्यलुठिता नृत्तवेदिभिः ।।१११४।। 1132

यदि एक पैर क्टा जाय, रखा जाय,लोटाया जाय ओर फिर कूटा जाय तो नृत्त के ज्ञाताओ ने उसे **मध्यलुपिठिता** चारी कहा हे ।

प्रायशोऽमूः प्रयुज्यन्ते तालनृत्यविचक्षणैः ।
एताः समासतः प्रोक्ता ज्ञेया एवं परा अपि ।।१११५।। 1133

ताल आर नृत्य के विद्वान् इन चारियो का प्रयोग बहुलता से करते है। इनको सक्षेप मे बताया गया है। इस प्रकार अन्य चारियो को भी जान लेना चाहिए ।

समवेत रूप मे एक सौ ग्यारह मार्गदेशीस्थित चारियो का निरूपण समाप्त



नृत्तकरणो का निरूपण

करण (हस्त-पाद-सयुक्त अभिनय)

योऽङ्गोपाङ्गकरप्रचारकरणैः सन्तोषितः स्थानकैः ।
चारीभिश्च मनोहरो मुररिपुर्गोपाङ्गनाभिर्विभुः । 1134
नत्वाहं तमकिञ्चन परिलसत्पीताम्बरालङ्कृतम् ।
संचक्षे करणं तु सम्प्रति मुदे नृत्तार्थिनां नृत्तवित् ।।१११६।। 1135

जो मनमोहन श्रीकृष्ण अगो तथा उपांगो सहित हस्त-सचालन-रूप करणो, स्थानको ओर चारियो के प्रयोग से गोपाँगनाओ द्वारा सन्तुष्ट (प्रसन्न) किये गये, उन अकिचन तथा पीताम्बर से अलकृत भगवान् को नमस्कार करके अब मै नृत्तवित्, नृत्तार्थियो के मनोरजन के लिए **करण** का निरूपण करता हूँ।

अविच्छिन्नरसा पाणिपादादेर्या निरन्तरा ।
क्रिया तन्नृत्तकरणं कीर्तितं नृत्तवेदिभि. ।।१११७।। 1136

हाथ-पैर आदि (के सचालन) से निरन्तर एव अविच्छिन्न रूप से रस का अभिभावन करने वाली जो क्रिया है, नाट्याचार्यो न उसे अभिनय का **करण** कहा है।

करण के भेद

भेदान् कतिपयानस्य व्याहरे मुनिसम्मतान् ।।१११८।।

भरत मुनि द्वारा कथित या अभीष्ट उसके (करण के) कतिपय भेदो का मै यहाँ निरूपण कर रहा हूँ।

तलपुष्पपुटं वक्ष.स्वस्तिकं वर्तितं तथा । 1137
मण्डलस्वस्तिकं लीनमुन्मत्तं वलितोरु च ।।१११९।।
स्वस्तिकं स्वस्तिकान्यर्धदिवपृष्ठोपपदानि च । 1138
आक्षिप्तरेचितालातभुजङ्गत्रासितानि च ।।११२०।।

कटीसमं कटीच्छिन्नं घूर्णितं च निकुञ्चितम् । 1139
निकुट्टार्धनिकुट्टे च विक्षिप्ताक्षिप्तकं तथा ।।११२१।।
अपविद्धं सम्नखं तथा स्वस्तिकरेचितम् । 1140
मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि वलितं चार्धरेचितम् ।।११२२।।
ऊर्ध्वजानुकटिभ्रान्तं छिन्नं पादापविद्धकम् । 1141
भ्रमरं द[ण्ड] पक्षं च नूपुरं ललितं ततः ।।११२३।।
व्यंसितं चतुरं क्रान्तं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् । 1142
भुजङ्गाञ्चितमाक्षिप्तोद्धट्टिते दण्डरेचितम् ।।११२४।।
वृश्चिक वृश्चिकाद्ये च स्यातां रेचितकुट्टिते ।।११२५।। 1143
लतावृश्चिकवैशाखरेचिते चक्रमण्डलम् ।
आवर्तकुञ्चिते दोलापादं तलविलासितम् ।।११२६।। 1144
विवृत्तविनिवृत्ते च ललाटतिलक ततः ।
विवर्तितमतिक्रान्तं विद्युद्भ्रान्त निशुम्भितम् ।।११२७।। 1145
उरोमण्डलविक्षिप्ते ततः पार्श्वनिकुट्टकम् ।
तलसस्फोटितं गण्डसूचि सूच्यर्धसूचिनी ।।११२८।। 1146
गजक्रीडितकं पार्श्वजानु स्याद् गरुडप्लुतम् ।
गृध्रावलीनकं दण्डपादं सन्नतसर्पिते ।।११२९।। 1147
मयूरललितं सूचीविद्धं प्रेङ्खोलितं तथा ।
स्खलितं परिवृत्त च करिहस्तं प्रसर्पितम् ।।११३०।। 1148
पार्श्वक्रान्तं निवेशं च नितम्बं हरिणप्लुतम् ।
सिंहविक्रीडितं सिंहाकर्षितं जनितं तथा ।।११३१।। 1149
[अवहित्थमथोद्वृत्तं तलसंघट्टितं तथा] ।
लोलितं शकटास्यं च वृषभक्रीडितं तथा ।।११३२।। 1150

एलकाक्रीडितं [illegible] ।
विष्णुक्रान्तमपक्रान्तमूरूद्वृत्ताञ्चिते ततः ।।११३३।। 1151
सम्भ्रान्ताभिधमप्यन्यन्मदस्खलिमतर्गलम् ।
स्याद्रेचकनिकुट्टाख्यं ततो नागापसर्पितम् ।।११३४।। 1152
गङ्गावतरणं चेति शतमष्टोत्तरं मया ।
करणानां समुद्दिष्टं लक्ष्यलक्षणवेदिना ।।११३५।। 1153

उनके नाम है १ तलपुष्पपुट, २ वक्ष स्वस्तिक, ३ वर्तित, ४ मण्डलस्वस्तिक, ५ लीन, ६ उन्मत्त, ७ वलितोरु, ८ स्वस्तिक, ९ अर्धस्वस्तिक, १० दिक्स्वस्तिक, ११ पृष्ठस्वस्तिक, १२ आक्षिप्तरेचित, १३ अलात, १४ भुजगत्रासित, १५ कटीसम, १६ कटीच्छिन्न, १७ घूर्णित, १८ निकुञ्चित, १९ निकुट्टक, २० अर्धनिकुट्टक, २१ विक्षिप्तक, २२ अपविद्ध, २३ समनख, २४ स्वस्तिकरेचित, २५ मत्तल्लि, २६ अर्धमत्तल्लि, २७ वलित, २८ अर्धरेचित, २९ ऊर्ध्वजानु ३० कटिभ्रान्त, ३१ छिन्न, ३२ पादापविद्धक, ३३ भ्रमर, ३४ दण्डपक्ष, ३५ नूपुर, ३६ ललित, ३७ व्यंसित ३८ चतुर, ३९ क्रान्त, ४० भुजगत्रस्तरेचित, ४१ भुजगाञ्चित, ४२ आक्षिप्त, ४३ उद्घट्टित ४४ दण्डरेचित, ४५ वृश्चिक, ४६ वृश्चिकरेचित, ४७ वृश्चिककुट्टित, ४८ लतावृश्चिक, ४९ वैशाख-रेचित, ५० चक्रमण्डल, ५१ आवर्त, ५२ कुञ्चित, ५३ दोलापाद, ५४ तलविलासित, ५५ विवृत्त, ५६ विनिवृत्त, ५७ ललाटतिलक, ५८ विवर्तित, ५९ अतिक्रान्त, ६० विद्युद्भ्रान्त, ६१ निशुम्भित, ६२ उरोमण्डल, ६३ विक्षिप्त, ६४ पार्श्वनिकुट्टक, ६५ तलसस्फोटित, ६६ गण्डसूचि ६७ सूचि ६८ अर्धसूचि, ६९ गजक्रीडितक, ७० पार्श्वजानु, ७१ गरुडप्लुत, ७२ मृधावलोकन, ७३ दण्डपाद, ७४ सन्नत, ७५ सर्पित, ७६ मयूरललित, ७७ सूचीविद्ध, ७८ प्रेङ्खोलित, ७९ स्खलित, ८० परिवृत्त, ८१ करिहस्त, ८२ प्रसर्पित, ८३ पार्श्वक्रान्त, ८४ निवेश, ८५ नितम्ब, ८६ हरिणप्लुत ८७ सिंहविक्रीडित, ८८ सिंहाकर्षित, ८९ जनित, ९० अवहित्थ, ९१ उद्वृत्त, ९२ तलसघट्टित, ९३ लोलित, ९४ शकटास्य, ९५ वृषभक्रीडित, ९६ एलकाक्रीडित, ९७ विष्कम्भ, ९८ उपसृत, ९९ विष्णुक्रान्त, १०० अपक्रान्त, १०१ ऊरूद्वृत्त, १०२ अञ्चित, १०३ सम्भ्रान्त, १०४ मदस्खलितक, १०५ अर्गल, १०६ रेचकनिकुट्टक, १०७ नागापसर्पित और१०८ गगावतरण। इन एक सौ आठ करणो को लक्ष्य एव लक्षण के ज्ञाता मैने बता दिया ।

अन्य भेदोपभेद

आनन्त्यात् स्थानचारीणाममीषामप्यनन्ततः ।
अतस्तानि न शक्यन्ते वक्तुं साकल्यतो बुधैः ।।११३६।। 1154

स्थानको, चारियो और करणो के भी अनन्त भेदोपभेद है। अत विद्वज्जन भी उन सबका वर्णन करने मे असमर्थ है।

अङ्गहारोपयोगीनि करणानि कियन्त्यपि ।
लक्ष्यन्ते लक्ष्मविदुषामधुना साधुना मया ॥११३७॥ 1155

अब मै नाट्य-लक्षणो के वेत्ता विद्वानो के लिए नृत्योपयोगी कुछ करणो का लक्षण-विनियोग बता रहा हूँ।

बाहुल्यान्नर्तनारम्भे समावङ्घ्री लताकरौ ।
अङ्गं तु चतुरस्रं स्याद्विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥११३८॥ 1156

नृत्य के आरम्भ मे बहुधा सम स्थिनि पैरो, लताकर हाथो और चतुरस्र अग का उपयोग किया जाता हे। अब उनके सम्बन्ध मे विशेष निर्देश किया जा रहा है।

१ तलपुष्पपुट और उसका विनियोग

विनिःसरति सव्येऽङ्घ्रौ चार्याध्यर्धिकया समम् ।
व्यावृत्तितः करद्वन्द्वे सव्यं पार्श्वं समाश्रिते ॥११३९॥ 1157
परिवृत्त ततस्तस्मिन् सन्नतं पार्श्वमागते ।
यत्र तत्कुचदेशस्थो हस्तः पुष्पपुटाभिधः ॥११४०॥ 1158
तलपुष्पपुटं त्वेतत् पादेऽग्रतलसञ्चरे ।

अध्यर्धिका नामक चारी के साथ बाँये पैर के बाहर की ओर निकल जाने पर, दोनो हाथो को घुमाकर बाये पार्श्व मे अवस्थित कर देने पर, फिर उनको परिवृत्त कर सन्नत नामक पार्श्व के निकट पहुँच जाने पर, पुष्पपुट हस्त मुद्रा को कुचो के पास अवस्थित कर देना चाहिए, ऐसी क्रिया को **तलपुष्पपुट करण** कहते है। इस करण मे अग्रतलसचर नामक पैर का प्रयोग करना चाहिए।

रङ्गे पुष्पाञ्जलिक्षेपे लज्जायामपि सुभ्रुवाम् ॥११४१॥ 1159

(सूत्रधार द्वारा) रगमच पर पुष्पाजलि-समर्पण और सुन्दरियो के लज्जा के भाव-प्रदर्शन मे **तलपुष्पपुट करण** का विनियोग करना चाहिए।

२ वक्ष स्वस्तिक और उसका विनियोग

चतुरस्रकरौ वक्षःस्थले कृत्वाथ रेचितौ ।
व्यावृत्या च समानीयाभुग्ने वक्षसि चेदिमौ ॥११४२॥ 1160

क्रियेते स्वस्तिकौ यत्र स्वस्तिकौ चरणावपि ।
वक्षःस्वस्तिकमुक्तं तदनाभुग्नांसकं तदा । 1161

जब चतुरस्र मुद्रा मे दोनो हाथो को वक्षस्थल पर करके रेचितावस्था मे आर-पार घुमाकर और उन्हे आभुग्न (झुकाकर) वक्ष पर रख दिया जाय, तदनन्तर दोनो हाथो और दोनो पैरो को स्वस्तिकाकार बना दिया जाय, तो इस क्रिया को **वक्ष स्वस्तिक करण** कहते है । इसमे कन्धा झुका हुआ नही होना चाहिए ।

लज्जानुतापयोरस्य प्रयोगः परिकीर्तित. ।।११४३।।

लज्जा और पश्चात्ताप के अभिनय मे **वक्ष स्वस्तिक करण** का विनियोग करना चाहिए ।

३ वर्तित और उसका विनियोग

वक्षस्यभिमुखौ हस्तावालग्नमणिबन्धकौ । 1162
स्वस्तिकौ युगपद्यत्र व्यावृत्तपरिर्वात्ततौ ।।११४४।।
कृत्वोत्तानावूरुयुगे पातयेद्वर्तितं त्वद. । 1163

यदि दोनो हाथो को सम्मुखावस्था मे रखकर कलाइयो को किञ्चित् वक्ष पर सटा दिया जाय, और तदनन्तर स्वस्तिकाकार मुद्रा मे दोनो को एक साथ आवृत-परिवृत कर घुमा दिया जाय, तदनन्तर दोनो हाथो की हथेलियो को उत्तान करके दोनो जाँघो पर गिरा दिया जाय, तो उसे **वर्तित करण** कहते हैं ।

पातयेच्चेत्पताकौ द्वावसूयायां मतं तदा ।।११४४।।
अधोमुखौ निघृष्टौ तौ क्रोधाभिनयने मतौ । 1164
अभिनेयवशादेवं शुकतुण्डादयः कराः ।।११४६।।

दोनो हाथो की पताक मुद्रा मे इस **वर्तित करण** का विनियोग असूया के अभिनय मे करना चाहिए । यदि उन्हे अधोमुख करके गिरा दिया जाय तो मतान्तर से उनका विनियोग क्रोध के अभिनय मे किया जाता है । कुछ आचार्यो के मत से अभिनय वस्तु के अनुसार वर्तित करण मे शुकतुण्ड आदि हस्तो का प्रयोग किया जाता है ।

केचिदत्रावदन् पादं तलपुष्पपुटोदितम् । 1165
परे करानुगं प्राहुः पादं करणपण्डिताः ।।११४७।।

कुछ आचार्यो का मत है कि उक्त विनियोगो मे **तलपुष्पपुट करण** की पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु दूसरे करण-विशेषज्ञ नाट्याचार्यों का कहना है कि हस्तमुद्रा के अनुरूप पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

४ मण्डलस्वस्तिक और उसका विनियोग

सार्ध [तु] विच्यवां कृत्वा चतुरस्त्रौ करौ ततः । 1166
उद्वेष्टितक्रियापूर्वमूर्ध्वमण्डलिहस्तकौ ।।११४८।।
प्रयुज्य स्वस्तिकौ यत्र कुर्यात् स्थाने तु मण्डलम् । 1167
मण्डलस्वस्तिकमिदम्—

यदि विच्यवा नामक चारी तथा चतुरस्र दोनो हस्तो की रचना करके चारो ओर घेरने की प्रक्रिया के साथ ऊर्ध्व-मण्डल स्थिति मे हाथो को प्रयुक्त किया जाय, ओर तदनन्तर दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा मे आर मण्डल नामक स्थान की रचना की जाय, तो उसे **मण्डलस्वस्तिक करण** कहते है ।

—प्रसिद्धार्थनिरीक्षणे ।।११४९।।

किसी प्रसिद्ध वस्तु के निरीक्षणके अभिनय मे **मण्डलस्वस्तिक करण** का विनियोग होता है ।

५ लीन और उसका विनियोग

ऊर्ध्वमण्डलिनौ पाणी विधायोरस्स्थितोऽञ्जलिः । 1168
यदा निकुञ्चितं स्कन्धयुगं ग्रीवा नता भवेत् ।
तदा लीनम्—

यदि ऊर्ध्वमण्डलिन् नामक दोनो हाथों की रचना करके हथेलियो से अजलि बनाकर, दोनो कन्धो को निकुचित और नता ग्रीवा का निर्माण किया जाय, तो वह **लीन करण** होता हे ।

—वल्लभायाः प्रार्थनायां नियुज्यते ।।११५०।। 1169

प्रेयसी से अनुनय-विनय करने के अभिनय मे **लीन करण** का विनियोग होता हे ।

६ उन्मत्त और उसका विनियोग

यत्र विद्धाभिधा चारी चरणस्त्वञ्चिताभिधः ।
क्रमेण रेचितो हस्तस्तदुन्मत्तमुदीरितम् । 1170

जहाँ विद्धा नामक चारी, अचित नामक चरण ओर रेचित नामक हस्त की क्रमश रचना की जाय, वहाँ **उन्मत्त करण** होता है ।

सौभाग्यादिसमुद्भूते गर्वे स्त्रीणामिदं मतम् ।।११५१।।

स्त्रियो के सौभाग्य आदि से उत्पन्न गर्व के अभिनय मे **उन्मत्त करण** का विनियोग किया जाता है ।

७ वलितोरु और उसका विनियोग

कृत्वोरसि समं पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ । 1171
सहाक्षिप्ताख्यया चार्या यत्रोरौ परिवृत्तितः ॥११५२॥
आनीय शुकतुण्डाख्यौ क्रियेतेऽधोमुखौ करौ । 1172
बद्धया स्थितिरेवं चेत् स्यात्तदा वलितोरु तत् ।

यदि वक्षस्थल पर दोनो हाथो को एक साथ व्यावृत्त तथा परिवृत्त बनाया जाय ओर आक्षिप्ता नामक चारी के साथ परिवर्त्तन द्वारा ऊरु पर लाकर शुकतुण्ड मुद्रा मे दोनो हाथो को अधोमुख करके रखा जाय, तदनन्तर बद्धा नामक चारी द्वारा स्थिति की जाय, तो उसे **वलितोरु करण** कहते है ।

एतन्नियुज्यते धीरैर्लज्जायां मुग्धयोषिताम् ॥११५३॥ 1173

मुग्धा नामक नायिका की लज्जा के अभिनय मे धीर पुरुष **वलितोरु करण** का विनियोग कहते है ।

८ स्वस्तिक और उसका विनियोग

उद्वेष्ट्य निर्गतौ यत्र करौ व्यावर्तितौ समम् ।
उत्प्लुत्य पाणिचरणरचितः स्वस्तिको भवेत् । 1174

यदि दोनो हाथो को चारो ओर से घुमा कर एक साथ ही व्यावर्तितावस्था मे किया जाय और उछलकर हाथो की भॉति पैरो की भी स्वस्तिक मुद्रा मे रचना की जाय, तो उसे **स्वस्तिक करण** कहते है ।

तत्स्वस्तिकं सराभस्य निषेधान्वेषणादिषु ॥११५४॥

सब प्रकार की दुर्भावनाओ को दूर करने तथा अन्वेषण आदि के अभिनय मे **स्वस्तिक करण** का विनियोग होता है ।

९ अर्धस्वस्तिक और उसका विनियोग

चरणः स्वस्तिकः सव्यः करः करिकराभिधः । 1175
खटको हृदि वामश्चेत्तदार्धस्वस्तिकं मतम् ॥११५५॥

यदि एक पैर को स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित किया जाय ओर दाहिना हाथ करिहस्त मुद्रा मे तथा बायाँ हाथ खटक हस्त मुद्रा मे हृदय पर रखा जाय, तो उसे **अर्धस्वस्तिक करण** कहते है ।

करं करिकरं केचिदत्र प्रोचुः कटिस्थितम् । 1176
अर्धचन्द्रकरं सव्यं कुर्याद्वा पक्षवञ्चितम् ।
पक्षप्रद्योतमथवा कटिदेशगत त्विह ॥११५६॥ 1177

कुछ नाटचाचार्यो का अभिमत है कि करिहस्त मुद्रा को कटि पर रखना चाहिए। दाहिने हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा मे अथवा पक्षवञ्चित मुद्रा मे अथवा पक्षप्रद्योत मुद्रा मे बनाकर कटि पर अवस्थित करना चाहिए। (अर्धस्वस्तिक इसे इसलिए कहा गया है कि इसमे केवल पैर को ही स्वस्तिक मुद्रा मे रखा जाता है)।

१० दिक्स्वस्तिक और उसका विनियोग

क्रियते स्वस्तिको यत्र पाणिपादविनिर्मितः ।
ललिताङ्गश्चतुर्दिक्षु तद् दिक्स्वस्तिकमुच्यते । 1178

यदि हाथ-पैर दोनो को स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित किया जाय और चारो दिशाओ मे ललित नामक अग का निर्माण किया जाय, तो उसे **दिक्स्वस्तिक करण** कहते है।

नियुज्यते बुधैरेतद् गीतस्य परिवर्तने ॥११५७॥

विद्वानो के मत से गाने के समय शरीर की गति दिखाने मे **दिक्स्वस्तिक करण** का विनियोग होता है।

११ पृष्ठस्वस्तिक और उसका विनियोग

चारी कुर्वन्नपक्रान्तां विक्षिप्योद्वेष्टितौ भुजौ । 1179
ततोऽपवेष्टच चाक्षिप्याऽन्याङ्घ्रि सूचीं विधाय च ॥११५८॥
पादाभ्यां यत्र पाणिभ्यां पृष्ठे स्वस्तिकमाचरेत् । 1180
तत् पृष्ठस्वस्तिक ज्ञेयम्–

यदि दोनो उद्वेष्टित भुजाओ को अपक्रान्ता चारी मे व्यवस्थित करने के अनन्तर उन्हे अलग-अलग करके पीछे की ओर घुमा दिया जाय, पैर को सूची नामक मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, तत्पश्चात् दोनो पैरो ओर दोनो हाथो से पृष्ठ भाग मे (पीठ पीछे) स्वस्तिक मुद्रा बनायी जाय, तो उसे **पृष्ठस्वस्तिक करण** (पीठ पर स्वस्तिक बनाना) कहते हे।

–सराभस्ये निषेधने ।
अन्यान्वेषणसम्भाषे युद्धस्य च परिक्रमे ॥११५९॥ 1181

सब प्रकार की दुर्भावनाओ को दूर करने, निषेध करने, दूसरे को डटने, सभाषण करने ओर युद्धस्थल के चारो ओर घूमने के अभिनय मे **पृष्ठस्वस्तिक करण** का विनियोग होता हे। (इस अभिनय मे नर्तकी सभास्थल की ओर पीठ भी कर सकती है)।

१२ आक्षिप्त रेचित और उसका विनियोग

हृदि स्थितौ करावूर्ध्वं व्यावृत्त्या प्राप्य चेत्ततः।
विक्षिप्य पार्श्वयोस्तत्र करमेकमधोमुखम् ॥११६०॥ 1182
द्रुतभ्रमं हसपक्षं वक्षस्याक्षिप्य चेत्परम्।
करमेवंविधं यत्र रेचयेत्तदनन्तरम् ॥११६१॥ 1183
स्यातां सूच्यञ्चितावङ्घ्री तत् तदाक्षिप्तरेचितम्।

हृदय पर अवस्थित दोनो हाथो को ऊपर घुमाकर यदि पार्श्वो मे डाल दिया जाय, तदनन्तर एक हाथ को अधोमुख करके दूसरे हसपक्ष हस्त को तेजी से घुमाते हुए वक्ष पर फेक दिया जाय, दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, तदनन्तर दोनो पैरो को सूची और अचित मुद्राओ मे बना दिया जाय, तो उस मुद्रा को **आक्षिप्त रेचित करण** कहते है।

दर्शयेदमुना त्यागपरिग्रहपरम्पराम् ॥११६२॥ 1184

त्याग और परिग्रह का भाव प्रकट करने अथवा परम्परानुसार **आक्षिप्त रेचित करण** का विनियोग होता है।

१३ अलात और उसका विनियोग

यत्राऽलाताभिधा चारी नितम्बश्चतुरस्रकः।
पाणिः स्याद्दक्षिणे भागेऽथोर्ध्वजानुस्तु वामतः ॥११६३॥ 1185
यदैवमन्यदङ्गं स्यात् तत् तदालातमीरितम्।

यदि (पैरो मे) अलाता चारी, नितम्ब चतुरस्र स्थिति मे, एक हाथ दक्षिण भाग मे, बायाँ घुटना उठा हुआ और अन्य अग भी यथास्थान हो, तो वहाँ **अलात करण** होता हे।

नृत्ये सललिते वीरसिहजेन महीभुजा ॥११६४॥ 1186

ललित-भाव-सूचक नृत्य मे **अलात करण** का विनियोग होता है, ऐसा अशोकमल्ल (वीरसिह सुत) का अभिमत है।

१४. भुजगत्रासित

भुजङ्गत्रासितां चारी विधायाङ्‌घ्रि तु कुञ्चितम् ।
उत्क्षिप्योरुकटीजानु यदि त्र्यस्रं विवर्त्तयेत् ॥११६५॥ 1187
व्यावृत्त्या परिवृत्त्या च यत्रैको दोलसंज्ञकः ।
करोऽन्यः खटकास्यस्तद्‌भुजङ्‌गत्रासितं तदा ॥११६६॥ 1188

यदि भुजगत्रासिता चारी मे अवस्थित पैर को कुचित करके तथा कटि और जानु को उछाल कर त्रिकोण मे घुमाया जाय, ओर एक हाथ को दोल मुद्रा तथा दूसरे को खटकामुख मुद्रा मे अवस्थित करके व्यावृत्त-परिवृत्त (आर-पार) किया जाय, तो उसे **भुजगत्रासित करण** (सर्प से भयभीत) कहते है।

१५ कटीसम और उसका विनियोग

कृत्वाक्षिप्तामपक्रान्तां चारीं चाथ करावुभौ ।
स्वस्तिकीकृत्य नाभौ तु दक्षिणं खटकामुखम् ॥११६७॥ 1189
अर्धचन्द्रं परं कटयां कुर्यात् पार्श्वं तु सन्नतम् ।
एकमुद्वाहितं त्वन्यदेवमङ्गान्तरैरपि ॥११६८॥ 1190
आवृत्तिर्वैष्णवं स्थानं यत्र तत्स्यात्कटीसमम् ।

पहले अपक्रान्ता नामक चारी की रचना करके दोनो हाथो को स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तदनन्तर दाहिने हाथ को खटकामुख मुद्रा मे नाभि पर और बाये हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा मे कटि पर अवस्थित किया जाय, एक पार्श्व को सनत ओर दूसरे को उद्‌वाहित मे रखा जाय, अन्य अगो को भी यथास्थान व्यवस्थित किया जाय, फिर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय। इस नृत्य-मुद्रा को **कटीसम करण** (समान कटी) कहा जाता है।

सूत्रधारेण तद्योज्यं जर्जरस्याभिमन्त्रणे ॥११६९॥ 1191

सूत्रधार द्वारा जर्जर का आवाहन करने के अभिनय मे **कटीसम करण** का विनियोग होता है।

१६ कटीच्छिन्न और उसका विनियोग

पार्श्वतो भ्रमरी कृत्वा मण्डलस्थानमाश्रितः ।
विधायैकां कटीं छिन्नां पल्लवं भुजमूर्धनि ॥११७०॥ 1192
एवमङ्गान्तरेणापि द्विस्त्रिर्वावृत्तयः कृताः ।
यत्र तत्तु कटीछिन्नं करणं कीर्तितं बुधैः ॥११७१॥ 1193

पहले पार्श्व मे भ्रमरी नामक चारी बना दी जाय और तदनन्तर मण्डल नामक स्थानक की रचना की जाय, फिर छिन्ना नामक कटि तथा भुजा के शीर्ष भाग मे पल्लव नामक हस्त की रचना की जाय, इसी प्रकार अन्य अगो की भी रचना करके फिर दो-तीन बार आवृत्तियाँ की जायँ। इस अभिनय-मुद्रा को विद्वानो ने **कटीच्छिन्न करण** (टूटी कटि) कहा है।

१७ घूर्णित

यत्रोर्ध्वदेशगो हस्तो व्यावृत्त्या दक्षिणस्ततः।
परिवृत्त्या त्वधः पार्श्वदेशाद्भ्रान्ति समाचरेत् ॥११७२॥ 1194
तद्दिकोऽङ्घ्रिः समाश्रित्य जङ्घास्वस्तिकतामनु।
कुर्याच्चारीमपक्रान्तां दोलाख्यमपरं करम्। 1195
तद् घूर्णितं केचिदाहुरुत्प्लुत्य स्वस्तिकं त्विह ॥११७३॥

यदि आरम्भ मे दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर घुमा दिया जाय और बाद मे परिवर्तित कर नीचे पार्श्व भाग मे कम्पित कर दिया जाय, फिर उस दिशा मे अवस्थित पैर और जँघा मे स्वस्तिक मुद्रा की रचना की जाय, तत्पश्चात् अपक्रान्ता नामक चारी का आश्रय ग्रहण किया जाय और दूसरे बाये हाथ मे दोला मुद्रा धारण की जाय। अभिनय की इस स्थिति को **घूर्णित करण** कहते है। कुछ आचार्यो का मत है कि इस अभिनय मे उछलकर बाये हाथ से स्वस्तिक मुद्रा बनानी चाहिए।

१८ निकुञ्चित और उसका विनियोग

विधाय वृश्चिकं पादं यत्र तद्दिग्गतं करम्। 1196
शिरस्यरालमारच्य नासादेशार्जवेन चेत् ॥११७४॥
उरस्यरालमपरं तत् तदा स्यान्निकुञ्चितम्। 1197

एक पैर से वृश्चिक स्थानक की रचना करके उसी दिशा मे हाथ को भी ले जाया जाय, फिर शिर पर (दाये) अराल हस्त को बना कर नासिका की सीध पर रखा जाय, तदनन्तर छाती पर दूसरे (बाये) अराल हस्त की रचना की जाय। इस अभिनय-स्थिति को **निकुञ्चित करण** कहते है।

तदौत्सुक्ये वितर्के च गगनोत्पतनादिषु।

उत्सुकता, वितर्क और आकाश से गिर जाने आदि के अभिनय मे **निकुञ्चित करण** का विनियोग होता है।

केचित्पताकसूच्यास्यावत्र नासाग्रगौ जगुः ॥११७५॥ 1198

कुछ विद्वानो का मत है कि निकुञ्चित करण-मुद्रा मे पताक तथा सूच्यास्य हस्तो को नासिका के अग्रभाग मे अवस्थित करना चाहिए ।

१९ निकुट्टक

कृत्वादौ मण्डलस्थानं चतुरस्रतया करम् ।
सव्यमुद्वेष्टितेनांसशीर्षमानीय यत्र तत् ।।११७६।। 1199
पतनोत्पतनोपेतकनिष्ठाद्यङ्गुलीद्वयम् ।
विदध्यादलपद्मं तमङ्घ्रिमुद्घट्टयेत्करम् ।।११७७।। 1200
सव्यमाविद्धवक्रत्वं नीत्वाथ चतुरस्रकम् ।
कुर्यादेवं वामपाणिपादं तत् स्यान्निकुट्टकम् । 1201

आरम्भ मे मण्डल नामक स्थानक की रचना करके बॉये हाथ को चतुरस्र मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, फिर उसे चारो ओर से घुमावदार बना कर कन्धे के ऊपर लाकर कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियो को क्रमश गिरने तथा उठने की स्थिति मे किया जाय, तत्पश्चात् अलपद्म हस्त की रचना करके एक पैर को अलग किया जाय, फिर दाये हाथ को अविद्धवक्र बनाकर चतुरस्र स्थिति मे लाया जाय, यही प्रक्रिया पैर से भी की जाय। अभिनय की इस स्थिति को **निकुट्टक करण** कहते है ।

२० अर्धनिकुट्टक

अङ्गेनैकेन रचितमिदमर्धनिकुट्टकम् ।।११७८।।

यदि निकुट्टक करण की एक ही अग से रचना की जाय, तो वह **अर्धनिकुट्टक करण** कहलाता है ।

२१ विक्षिप्ताक्षिप्तक और उसका विनियोग

सव्यावृत्तौ करे सोऽङ्घ्रिर्बहिर्विक्षिप्यते यदि । 1202
चतुरस्रस्तदान्योऽथ प्राक्तनः परिवृत्तियुक् ।।११७९।।
पाणिपादः स आक्षिप्तो यत्राङ्गमपरं क्रमात् । 1203
एवमेवं भवेदेतद्विक्षिप्ताक्षिप्तकं तदा ।।११८०।।

यदि दाये हाथ को बायी ओर घुमा दिया जाय और पैर को बाहर की ओर प्रसारित किया जाय, इसी तरह दूसरे चतुरस्र हस्त को भी घुमाया जाय, फिर हाथ, पैर और तदनन्तर क्रमश एक-एक अग का सचालन किया जाय, तो उस अभिनय-स्थिति को **विक्षिप्ताक्षिप्तक करण** कहते है ।

गतागते वदन्त्यस्य नियोगं केऽपि सूरयः । 1204
स नेष्टो नाट्यविदुषा यतोऽभिनयपाणिभिः ॥११८१॥

नाटचाचार्यों की एक परम्परा जाने-आने के अभिनय मे इस करण का विनियोग बनाती हे, किन्तु दूसरी परम्परा के नाटचाचार्यों को यह अभिमत मान्य नही हे। उनका कथन हे कि इस करण मे हस्ताभिनय की प्रमुखता है, और गमनागमन मे तो पादो का प्रयोग होता है, जो उचित नही हे।

वाक्यार्थाभिनयः कार्यः प्राधान्येनाभिनेतृभिः । 1205
इदं तु सद्भिराख्यातं नृत्यमात्रपरं ततः ॥११८२॥

सज्जनो के निर्देश से इम करण मे अभिनेताओ को मुख्य रूप से गीत और भाव (वाक्याथ) का अभिनय करना चाहिए, क्योकि अभिनय ही उसका एकमात्र प्रयोजन है।

प्रयोज्यमेतन्नाट्याङ्गं विच्छेदे सन्धिगुप्तये । 1206
यदि काललयादीनां गतीनां च परिक्रमे ॥११८३॥
तथा तालानुसन्धाने तथा युद्धनियुद्धयोः । 1207
चारीस्थानकसंयोगेऽप्येतत्करणमीरितम् ॥११८४॥

अलग होने, सन्धि के गोपन, ताल-लय आदि की गतियाँ, परिक्रमा, ताल के अनुसन्धान, युद्ध, कुस्ती ओर चारी-स्थानक-सयुक्त अभिनय मे इस नाटचागभूत करण का प्रयोग करना चाहिए।

२२ अपविद्ध और उसका विनियोग

चतुरस्रं समाश्रित्य सव्यं व्यावर्त्य हस्तकम् । 1208
निस्सार्याक्षिप्तया चार्या कृत्वा तद्दिग्भवं करम् ।

यदि वाये हाथ को चतुरस्र मुद्रा मे अवस्थित करके (दाहिनी ओर) घुमाकर और उसी दिशा के दूसरे दाये हाथ को आक्षिप्ता चारी धारण कर उसे बाहर की ओर नि सारित कर दिया जाय, तो उसे **अपविद्ध करण** कहते है।

[शु[1]कतुण्डं करं तस्यैवोरौ तु परिपातयेत् । 1209
यत्रापविद्धं तद्वामे वक्षःस्थे खटकामुखे ।]

अथवा—यदि बाये हाथ को शुकतुण्ड मुद्रा मे बनाकर उसे बाये ही ऊरु पर गिरा दिया जाय ओर दूसरे दाये हाथ को खटकामुख मुद्रा मे अवस्थित कर वाये वक्ष पर रख दिया जाय, तो उसे **अपविद्ध करण** कहते है।

---

१ देखिए सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ६०२, ३।

असूयायां तथा कोपे विनियोगोऽस्य दर्शितः ॥११८५॥ 1210

असूया तथा क्रोध के अभिनय मे **अपविद्ध करण** का विनियोग होता है ।

२३ **समनख और उसका विनियोग**

यत्र गात्रं स्वभावस्थमङ्घ्री समनखौ युतौ ।
लताकरौ समनखम्—

जहाँ शरीर स्वाभाविक स्थिति मे वर्तमान हो, दोनो पैर समान नखयुक्त हो, और दोनो हाथ लताहस्त मुद्रा मे हो, वहाँ **समनख करण** होता है ।

—एतदाद्यप्रवेशने ॥११८६॥ 1211

आद्य वस्तु के प्रवेश करने के अभिनय मे **समनख करण** का विनियोग होता है ।

२४ **स्वस्तिकरेचित और उसका विनियोग**

चतुरस्रः स्थितो यत्र विधाय त्वरितभ्रमौ ।
हंपक्षाभिधौ हस्तौ व्यावृत्त्योर्ध्वं शिरःस्थलात् ॥११८७॥ 1212
सम्प्राप्य परिवृत्त्याधः प्राप्तावाविद्धवक्रकौ ।
स्वस्तिकौ हृदयक्षेत्रे क्रियेते तदनन्तरम् ॥११८८॥ 1213
विप्रकीर्णौ ततः कट्यां पक्षवञ्चितकौ ततः ।
पक्षप्रद्योतकौ हस्तौ चारी तदनुगा ततः ॥११८९॥ 1214
अवहित्थाभिधं स्थानमेतत्स्वस्तिकरेचितम् ।

पहले चतुरस्र मुद्रा मे एक हाथ को अवस्थित किया जाय, फिर हमपक्ष दोनो हाथो को शीघ्रता से घुमा दिया जाय, तदनन्तर उन्हे ऊपर मस्तक प्रदेश से घुमाते हुए नीचे लाकर आविद्धवक्र हाथो मे परिवर्तित कर दिया जाय, तत्पश्चात् दोनो हाथो मे स्वस्तिक मुद्रा धारण कर उन्हे हृदय पर रख दिया जाय, पुन उन्हे विप्रकीर्ण मुद्रा मे रच कर कटि मे रख दिया जाय, फिर उन्हे क्रमश पक्षवचितक ओर पक्षप्रद्योतक मुद्राओ मे अवस्थित किया जाय, ओर तदनन्तर चारी ओर तदनुरूप अवहित्थ स्थानक की रचना की जाय । इस अभिनय-भेद को **स्वस्तिकरेचित करण** कहते है ।

निरूपितमिदं धीरैः हर्षस्थादिनिरूपणे ॥११९०॥ 1215

आनन्दित व्यक्ति आदि के भावाभिव्यजन मे, धीर पुरुषो के मत से, **स्वस्तिकरेचित करण** का विनियोग करना चाहिए ।

२५ **मत्तल्लि और उसका विनियोग**

स्वस्तिकं गुल्फयोर्बद्ध्वा यत्राङ्घ्र्योरपसर्पणम् ।
सममुद्वेष्टितौ पाणी तथा तावपवेष्टितौ । 1216
विदध्यादसकृत् तत् स्यान्मत्तल्लि–

यदि दोनो टखनो को स्वस्तिकाकार मे बाँधकर पैरो से लुढकते हुए चला जाय और साथ ही दोनो हाथो को मोडकर फिर खोल दिया जाय, इस प्रकार बार-बार करते रहने से जो अभिनय-मुद्रा बनती है, उसे **मत्तल्लि करण** कहते है ।

–मदसूचकम् ॥११६१॥

मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२६ **अर्धमत्तल्लि और उसका विनियोग**

स्खलितापसृतावङ्घ्री चेद्वामो रेचितः करः । 1217
परः कटौ तदा चार्धमत्तल्लि–

यदि दोनो पैर फिसलते तथा लुढकते हो और बायाँ हाथ रेचित मुद्रा मे तथा दाहिना हाथ कटि पर अवस्थित हो, तो उसे **अर्धमत्तल्लि करण** कहते है ।

–तरुणे मदे ॥११६२॥

अत्यन्त मदमत्तता के अभिनय मे **अर्धमत्तल्लि करण** का विनियोग होता है ।

२७ **वलित**

अपसर्पति सूच्याख्ये देहदेशात्करे यदा । 1218
अपेतश्चरणः सूची चारी तु भ्रमरी क्रमात् ।
एवमङ्गान्तरेणापि यत्र तद्वलितं तदा ॥११६३॥ 1219

जब शरीर से सूचास्य हस्त अपसर्पित हो और पैर से क्रमश सूची, चारी तथा भ्रमरी मुद्रा धारण कर गमन किया जाय, और दूसरे अगो से भी इसी प्रकार की क्रिया की जाय, तब उसे **वलित करण** कहते है ।

२८. अर्धरेचित

मण्डलस्थानमाश्रित्य खटकास्यं यदा हृदि ।
कृत्वा कुर्यात्करं सूची [मुख चैव] तदन्तिके ॥११६४॥ 1220
तद्दिक्कं पादमुद्घाट्य सन्नतं पार्श्वमाचरेत् ।
तदापसरणे प्रोक्तं नृत्तज्ञैरर्धरेचितम् ॥११६५॥ 1221

जब मण्डल स्थानक मे अवस्थित होकर खटकामुख हस्त को हृदय पर रख दिया जाय, फिर उसे सूचीमुख हस्त बना दिया जाय। जिस दिशा मे हाथ हो उसी दिशा मे एक पैर को बढाया जाय, पार्श्व को सन्नत मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, उसके बाद पीछे हटा जाय, तव उस क्रिया को **अर्धरेचित करण** कहते है।

२९ ऊर्ध्वजानु

ऊर्ध्वजानौ यदा चार्या कुञ्चितेऽङ्घ्रावसो करः ।
अलपद्मोऽथवारालः पक्षवञ्चितकोऽथवा ॥११६६॥ 1222
ऊर्ध्वास्यः कुचसाम्यस्थजानुनः खटकोऽपरः ।
वक्षःस्थः स्यात्तदा धीरैरूर्ध्वजानु प्रकीर्त्तितम् ॥११६७॥ 1223

जब ऊर्ध्वजान् नामक चारी तथा कुञ्चित नामक पैरो की स्थिति मे अलपद्म या अराल अथवा पक्षवचितक नामक हाथ ऊर्ध्वमुख रहे ओर दूसरा खटकामुख हाथ कुच की समानता मे अवस्थित, घुटने पर से होते हुए वक्ष पर रख दिया जाय, तो धीर पुरुषो ने उसे **ऊर्ध्वजानु करण** कहा है।

३० कटिभ्रान्त और उसका विनियोग

अपसर्पे द्रुतं वामं चरणं यत्र तस्य तु ।
पार्श्वे न्यस्येत्परं सूची ततश्चेद्भ्रामयेत्कटिम् ॥११६८॥ 1224
कुर्याद्वा भ्रमरी पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।
वैष्णवस्थानमन्ते तत् कटिभ्रान्तं तदा मतम् ॥११६९॥ 1225

पीछे हटने की शीघ्रता की स्थिति मे बाये चरण को पार्श्व भाग मे रख दिया जाय, फिर दूसरे दाये पैर को सूची मुद्रा मे कर दिया जाय आर तत्पश्चात् कटि को घुमाया जाय, अथवा भ्रमरी चारी की रचना कर दोनो हाथो को व्यावृत्त-परिवृत्त किया जाय, अन्त मे वैष्णव नामक स्थानक का निर्माण किया जाय, इस क्रिया को **कटिभ्रान्त करण** कहते है।

तालानामन्तरालेषु गतीना च परिक्रमे ।
यतीना परिपूर्तौ च सद्भिरेतन्नियुज्यते ॥१२००॥ 1226

सज्जनो के मतानुसार तालो के मध्य भाग, गतियो के घुमाव और यतियो (सन्यासियो) की पूर्ति के अभिनय मे **कटिभ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

३१ छिन्न और उसका विनियोग

क्रमात् करौ कटीपार्श्वदेशे चेदलपल्लवौ ।
छिन्ना कटी च वैशाखस्थानं छिन्न तदोदितम् । 1227

यदि अलपल्लव मुद्रा मे दोनो हाथो को क्रमश कटिपार्श्व मे रख दिया जाय, कटि छिन्ना मुद्रा मे हो, ओर अन्त मे वैशाख स्थानक की रचना की जाय, तो उसे **छिन्न करण** कहते है ।

तदङ्गप्रतिसारे स्यात् तथा तालप्रभञ्जने ॥१२०१॥

अगो को फैलाने और ताल ठोकने के अभिनय मे **छिन्न करण** का विनियोग होता है ।

३२ पादापविद्धक

खटकास्यौ यदा पाणी नाभिक्षेत्रे पराङ्मुखौ । 1228
सूच्याङ्घ्रिः परपादेन युक्तोऽपक्रान्तया युतः ।
अपरश्चरणोऽथैव तदा पादापविद्धकम् ॥१२०२॥ 1229

जब खटकास्य नामक दोनो हाथ नभिदेश मे पराङ्मुख होकर रहे, सूची नामक पैर दूसरे पैर से जुडा हो, और दूसरा पैर अपक्रान्ता नामक चारी मे हो, तब वह **पादापविद्धक करण** होता हे ।

३३ भ्रमर और उसका विनियोग

कुर्वन्नाक्षिप्तचार्याङ्घ्रि पाणिमुद्वेष्टच चेत्ततः ।
वलितं तु त्रिकं कुर्यात् स्वस्तिकं पादसम्भवम् ॥१२०३॥ 1230
यत्रापराङ्गमेवं स्यादुल्बणावेकदा करौ ।
तत् तदा भ्रमरं ज्ञेयम्—

जब पहले हाथ-पैर मे आक्षिप्ता नामक चारी को धारण करके त्रिक का वलय किया जाय (कटि भाग को झुका दिया जाय), फिर पैरो की स्वस्तिक मुद्रा बना ली जाय, इसी प्रकार अन्य अगो की भी रचना की जाय, अन्त मे एक बार उल्वण हाथो की रचना की जाय, तब उसे **भ्रमर करण** कहते है ।

—उद्धृतस्य परिक्रमे ॥१२०४॥ 1231

वेग से चक्कर काटने के अभिनय मे **भ्रमर करण** का विनियोग होता है ।

३४ दण्डपक्ष

चारी यत्रोर्ध्वजानुः स्यात् करौ स्यातां लताकरौ ।
तत्रैकं निक्षिपेदूर्ध्वजानूपरि यदा पुनः । 1232
एवमङ्गान्तरेणापि दण्डपक्षमिदं तदा ॥१२०५॥

जहाँ ऊर्ध्वजानु चारी तथा दोनो लताहस्त हो और फिर एक हाथ को ऊर्ध्वजानु के ऊपर रख दिया जाय, इसी प्रकार अन्य अगो को भी सचालित किया जाय, वहाँ **दण्डपक्ष करण** होता हे ।

३५ नूपुर

विरच्य भ्रमरीं चारीमथ नूपुरपादिकाम् । 1233
अङ्घ्रिणैकेन तत्पाणि विदध्याद्रेचितं यदि ।
परं लताकरं हस्तं तदोक्तं नूपुरं बुधैः ॥१२०६॥ 1234

यदि एक पैर से भ्रमरी नामक चारी की रचना करने के पश्चात् नूपुरपादिका नामक चारी को बनाया जाय, फिर एक हाथ को रेचित और दूसरे को लता मुद्रा मे अवस्थित किया जाय, तो बुधजनो के मतानुसार उसे **नूपुर करण** कहते है ।

३६ ललित और उसका विनियोग

सव्यः करः केशबन्धनितम्बादिकवर्तनाः ।
यत्राऽथ हस्तको वामो भवेत् करिकरस्ततः ॥१२०७॥ 1235
उद्घट्टितोऽङ्घ्रिरन्याङ्गमप्येवं ललितं तु तत् ।

जहाँ दायाँ हाथ केशबन्ध तथा नितम्ब आदि वर्तना मे हो और बायाँ हाथ कटिहस्त मुद्रा मे हो, एक पैर उद्घट्टित और अन्य अग भी इसी प्रकार सचालित होते हो, वहाँ **ललित करण** होता है ।

विलासिनि सुधीधुर्याशोकमल्लेन कीर्तितम् ॥१२०८॥ 1236

नाटचाचार्य अशोकमल्ल के मत से विलासी के अभिनय मे **ललित करण** का विनियोग होता है ।

३७ व्यसित और उसका विनियोग

पाणिमुद्वेष्टच यत्रैकोऽधोगतो विप्रकीर्णितः ।
परावृत्य परस्तादूर्ध्वं हृदयगस्ततः ।।१२०९।। 1237
उत्तानितो रेचितः स्यादेकोऽन्योऽधोमुखस्तथा ।
स्थानमालीढसंज्ञं चेत् तत्तदा व्यंसितं मतम् । 1238

जहाँ एक हाथ को उद्वेष्टित करके दूसरे विप्रकीर्ण हस्त को उसके नीचे लाया जाय, फिर घुमाकर उसे ऊपर हृदय पर अवस्थित किया जाय, तत्पश्चात् एक रेचित हाथ को उत्तान और दूसरे को अधोमुख किया जाय, फिर आलीढ स्थानक धारण किया जाय, वहाँ **व्यसित करण** होता है ।

नियोज्यं वायुसून्वादिबृहत्कपिपरिक्रमे ।।१२१०।।

हनुमान तथा बालि, सुग्रीव (बृहत्कपि) आदि के अभिनय मे **व्यसित करण** का विनियोग होता है ।

३८ चतुर और उसका विनियोग

यत्रालपल्लवो वामो हृदयक्षेत्रसंस्थयोः । 1239
करयोश्चतुरोऽन्योऽथ पादस्तूद्घट्टितो यदि ।।१२११।।
—चतुरमीरितम् ।

जहाँ दोनो हाथ हृदय मे अवस्थित हो, बायाँ अलपल्लव और दायाँ चतुर मुद्रा मे हो, और एक पैर उद्घट्टित हो, वहाँ **चतुर करण** होता है ।

तदा विस्मयसूचायामिदम्— 1240
वैदूषिक्यां नृपाग्रण्याशोकमल्लेन धीमता ।।१२१२।।

विद्वान् राजा अशोकमल्ल के मत से विस्मय, असूया तथा विद्वता के अभिनय मे **चतुर हस्त** का विनियोग होता है ।

३९ क्रान्त

यत्रातिक्रान्तचार्याङ्घ्रिं पात्यमानं निकुञ्च्य चेत् । 1241
पृष्ठतः स्थापयित्वा तु पुरोदेशे प्रसारयेत् ।।१२१३।।
व्यावर्त्य तत्करं न्यस्योरस्यतः परिवृत्तितः । 1242

निष्क्रम्य तद्वदाक्षिप्य हृदि तं खटकामुखम् ।
कुर्यादेव पराङ्गं च तत् तदाक्रान्तमीरितम् ।।१२१४।। 1243

जहाँ अतिक्रान्ता चारी के द्वारा एक पैर को पतित करते हुए सिकोड कर पीठ की ओर स्थापित करके आगे की ओर प्रसारित किया जाय, फिर उसे घुमाकर वक्ष की ओर ले जाया जाय, और तत्पश्चात् वहाँ से हटाकर उसे खटकामुख मुद्रा मे हृदय पर अवस्थित किया जाय, इमी प्रकार दूसरे पैर को भी किया जाय, वहाँ **क्रान्त करण** होता है ।

४० भुजगत्रस्तरेचित

भुजङ्गत्रासिता यत्र चारी स्याद् रेचितौ करौ ।
वामपार्श्वे तदाख्यातं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ।।१२१५।। 1244

जहाँ पैरो मे भुजगत्रासिता चारी हो और दोनो रेचित हाथ वाम पार्श्व मे अवस्थित हो, वहाँ **भुजगत्रस्त रेचित करण** होता है ।

४१ भुजगाञ्चित

सव्याङ्घ्रिणा यदा चारी भुजङ्गत्रासिताभिधा ।
रेचितः स्यात् करः सव्यो वामपाणिर्लताकरः । 1245
यत्र धीरैस्तदाख्यातं भुजङ्गाञ्चितकं त्वदः ।।१२१६।।

जहाँ दाहिने पैर से भुजगत्रासिता चारी बनायी जाय, दाहिना हाथ रेचित मुद्रा आर बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा मे हो, धीर पुरुषो के मत से, वहाँ **भुजगाञ्चित करण** होता है ।

४२ आक्षिप्त और उसका विनियोग

चार्याक्षिप्ता यदा क्षिप्तः खटकश्चतुरोऽथवा । 1246
तदाक्षिप्तमिदं धीरै–

जब पैर आक्षिप्ता चारी मे और हाथ खटक या चतुर मुद्रा मे हो, धीर पुरुषो के मत से उसे **आक्षिप्त करण** कहते हे ।

–विदूषकगतौ स्मृतम् ।।१२१७।।

विदूषक की चाल के अभिनय मे **आक्षिप्त करण** का विनियोग होता है ।

४३ उद्घट्टित

यदोद्घट्टितपादः स्यात्तत्पार्श्वं सन्नतं करौ । 1247
तालिकाकरणोद्युक्तौ तत्तदोद्घट्टितं मतम् ॥१२१८॥

जब पैर उद्घट्टित , पार्श्व सन्नत और दोनो हाथ तालिका बनाने मे तत्पर हो, तो उसे **उद्घट्टित करण** कहते है ।

४४ दण्डरेचित और उसका विनियोग

दण्डपादा यदा चारी दण्डपक्षाभिधौ करौ । 1248
तदा प्रमोदनृत्ते स्यात्करणं दण्डरेचितम् ।
प्रयोगं केचिदिच्छन्ति तस्योद्धतपरिक्रमे ॥१२१९॥ 1249

जब पैर दण्डपादा चारी और दोनो हाथ दण्डपक्ष मुद्रा मे हो, तब उसे **दण्डरेचित करण** कहते है । प्रमोद-नृत्त के अभिनय मे उसका विनियोग होता है । उद्धत व्यक्ति के घूमने के अभिनय मे भी कोई आचार्य उसका विनियोग बताते है ।

४५ वृश्चिक और उसका विनियोग

करौ करिकरौ पश्चाद् दूरे वृश्चिकपुच्छवत् ।
अङ्घ्रिश्चेत् सन्नतं पृष्ठ तदा वृश्चिकमीरितम् । 1250

यदि दोनो हाथ पीठ पीछे (कन्धे के समतर) कटिहस्त मुद्रा और एक पैर (उनके कुछ) दूर पर बिच्छू की पूँछ (डक) की तरह अवस्थित हो, पृष्ठ भाग सन्नत हो, तो वहाँ **वृश्चिक करण** होता है ।

इदमैरावणादीनामाकाशगमने मतम् ॥१२२०॥

इन्द्र के हाथी (ऐरावत) और आकाश मे उडने के अभिनय मे **वृश्चिक करण** का विनियोग होता है ।

४६ वृश्चिकरेचित और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽङ्घ्रौ यदा पाणी स्वस्तिकीभूय रेचितौ । 1251
विश्लिष्यापि तदाकाशगतौ वृश्चिकरेचितम् ॥१२२१॥

जब दोनो पैर वृश्चिक और दोनो हाथ स्वस्तिक होकर फिर उन्हे खोलकर रेचित मे किया जाय, तब उसे **वृश्चिकरेचित करण** कहते है । आकाश मे उड़ने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४७. वृश्चिक कुट्टित और उसका विनियोग

वृश्चिकं चेद्विधायाङ्घ्रि भुजशीर्षे करौ क्रमात् । 1252
अलपद्मौ निकुट्ट्येते तदा वृश्चिककुट्टितम् ।

यदि एक पैर वृश्चिक मुद्रा ओर दोनो हाथो को क्रमश अलपद्म तथा निकुट्ट मे धारण किया जाय, तो उसे **वृश्चिक कुट्टित करण** कहते है ।

साश्चर्याकाशगमनवाञ्छादौ तत्प्रयुज्यते ॥१२२२॥ 1253

आश्चर्य के साथ आकाश गमन और इच्छा आदि के अभिनय मे **वृश्चिककुट्टित करण** का विनियोग होता है ।

४८ लतावृश्चिक और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽङ्घ्रिर्यदा वामः करश्चेत्स्याल्लताकरः ।
तदा लतावृश्चिकम्–

जब एक (दाहिना) पैर वृश्चिक मुद्रा मे और बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा मे हो, तब उसे **लतावृश्चिक करण** कहते है ।

–तदाकाशोत्पतने मतम् ॥१२२३॥ 1254

आकाश मे उडने के आशय मे **लतावृश्चिक करण** का विनियोग होता है ।

४९ वैशाखरेचित

रेचितं यत्र पाण्यङ्घ्रिकटिग्रीवं यदा भवेत् ।
वैशाखस्थानके तत् स्यात् तदा वैशाखरेचितम् ॥१२२४॥ 1255

जहाँ दोनो हाथ, पैर, कमर तथा ग्रीवा रेचित मे रखे जाँय और वैशाख स्थानक की रचना की जाय, तब उसे **वैशाखरेचित करण** कहते है ।

५० चक्रमण्डल और उसका विनियोग

चरयित्वाड्डितां चारी चक्राकारं भ्रमेद्यदि ।
यत्र दोलाख्यहस्ताभ्यां देहेनान्तर्नतेन चेत् ॥१२२५॥ 1256
तत्तदा सद्भिराख्यातं करणं चक्रमण्डलम् ।

यदि अड्डिता चारी बनाकर और दोनों हाथों को दोलाहस्त में प्रयुक्त कर पूरा शरीर अन्दर की ओर झुका दिया जाय तथा दोनों हाथों को जमीन में टेक दिया जाय और तब उसे चक्राकार में घुमाया जाय, तो उसे **चक्रमण्डल करण** कहते हैं।

[भवेत्] तद् वरिवस्यायां तथोद्धतपरिक्रमे ॥१२२६॥ 1257

पूजा और शीघ्रतापूर्वक परिक्रमा के अभिनय में **चक्रमण्डल करण** का विनियोग होता है।

५१ आवर्त्त और उसका विनियोग

चाषगत्या समं चार्या हस्तौ दोलाभिधौ यदि ।
विधायोद्वेष्टितौ यत्र कुर्यात्तावपवेष्टितौ । 1258
तदावर्तमिदं प्रोक्तं धीरैः–

यदि चाषगति चारी के समान ही दोनों दोला हस्तों की रचना करके उन्हें उद्वेष्टित (खोला) तथा अपवेष्टित (बन्द) कर दिया जाय, तो विद्वान् उसे **आवर्त करण** कहते हैं।

–भीत्यपसर्पणे ॥१२२७॥

भयपूर्वक पीछे हटने के अभिनय में **आवर्त करण** का विनियोग होता है।

५२ कुञ्चित और उसका विनियोग

वामपार्श्वे यदोत्तानोऽलपद्माकारतां दधत् । 1259
करः सव्योऽथ वामोऽग्रतलसञ्चरसञ्ज्ञकः ।
आड्घ्रिस्तदा कुञ्चितं स्यात्–

जब अलपद्म दाहिना हस्त बायें पार्श्व में उत्तान करके रख दिया जाय और बायाँ पर अग्रतलसचर मुद्रा में (पीठ की ओर घूमा हुआ नत रूप में) अवस्थित किया जाय, तब उसे **कुञ्चित करण** कहते हैं।

–सानन्दसुरगोचरम् ॥१२२८॥ 1260

आनन्दपूर्वक देवताओं के प्रत्यक्ष (पूजन, आवाहन) करने में **कुञ्चित** हस्त का विनियोग होता है।

५३ दोलापाद

यत्रोर्ध्वजानुश्चारी स्याद्दोलापादाभिधापि च ।
करो दोलाभिधश्चैत्तद्दोलापादमुदीरितम् ॥१२२९॥ 1261

जहाँ पैरो को ऊर्ध्वजानु तथा दोलापाद (पैर झुलाना) चारियो मे अवस्थित किया जाय और हाथ भी उसी (दोल) का अनुसरण करे, वहाँ **दोलापाद करण** होता है ।

५४ तलविलासित और उसका विनियोग

अङ्घ्रिस्तूर्ध्वाङ्गुलितलः पार्श्वे तूर्ध्व प्रसारितः ।
तदग्रगः पताकश्चेदेमङ्गान्तरे क्रमात् । 1262
सूत्रधारादिविषयं तदा तलविलासितम् ।।१२३०।।

जब एक पैर की उँगलियो का तल भाग ऊपर उठा हो ओर पैर पार्श्व मे ऊपर की ओर प्रसारित किया गया हो, तदनन्तर उसके आगे पताक हस्त हो, और इसी प्रकार अन्य अगो की भी रचना की जाय, तो उसे **तलविलासित करण** कहते हैं । सूत्रधार आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५५ विवृत्त और उसका विनियोग

चार्या चरणमाक्षिप्यासकृदाक्षिप्तया यदा । 1263
विधाय हस्तौ व्यावृत्तिपरिवर्त्तनसयुतौ ।।१२३१।।
विदध्याद्भ्रमरी यत्र ततस्तौ रेचयेन्नट. । 1264
तद्विवृत्त समाख्यातम्–

जब नर्तक या अभिनेता आक्षिप्ता नामक चारी के द्वारा पैर को वार-वार फेक कर दोनो हाथो को व्यावर्तित तथा परिवर्तित करता है, और पुन भ्रमरी की रचना करने के उपरान्त दोनो हाथो को रेचित मे कर दिया जाता है, तब इसे **विवृत्त करण** कहते है ।

–उद्धतस्य परिक्रमे ।।१२३२।।

उद्धत गति के अभिनय मे **विवृत करण** का विनियोग होता है ।

५६ विनिवृत्त और उसका विनियोग

यत्र सूच्यङ्घ्रिणान्योऽङ्घ्रिः पार्ष्णौ स्वस्तिकमाचरेत् । 1265
ततस्त्रिकस्य चलनं व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ।।१२३३।।
एकपार्श्वे विधायाथ चारी बद्धाभिधां करौ । 1266
रेचितौ तौ चरेत् तत् स्याद्विनिवृत्तम्–

जहाँ सूची नामक एक पैर के साथ दूसरा पैर एड़ी मे स्वस्तिक मुद्रा धारण किये हो, कटि प्रदेश को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय, फिर एक पार्श्व मे बद्धा चारी को धारण किया जाय, ओर अन्त मे दोनो हाथो की रेचित मे रचना की जाय, तो उसे **विनिवृत्त करण** कहते है।

—परिक्रमे ॥१२३४॥

परिक्रमा करने के अभिनय मे **विनिवृत्त करण** का विनियोग होता है।

५७ ललाटतिलक और उसका विनियोग

वृश्चिकाङ्घ्रेर्यदाङ्गुष्ठ पादस्य तिलकं लिखेत् । 1267
ललाटेऽथ तदा ज्ञेय ललाटतिलकं बुधैः ।

यदि वृश्चिक पैर का अँगूठा ललाट पर पैर का तिलक लिखे, तब विद्वान् लोग उसे **ललाटतिलक करण** समझे ।

विद्याधरगतावेतन्नियोज्यं —नृत्तवेदिभिः ॥१२३५॥ 1268

नृत्तवेत्ताओ को चाहिए कि विद्याधर की गति के अभिनय मे वे **ललाटतिलक करण** का विनियोग करे।

५८ विवर्तित

पाणिपादं समाक्षिप्य कुर्यात्त्रिकविवर्त्तनम् ।
रेचितं च परं पाणि यत्रैतत्स्याद्विवर्त्तितम् ॥१२३६॥ 1269

यदि एक हाथ और एक पैर को चलाकर कटिदेश मे घुमाया जाय, ओर फिर दूसरे हाथ को रेचित मे परिणत किया जाय, तो उसे **विवर्तित करण** कहा जाता है।

५९ अतिक्रान्त

अतिक्रान्तं विधायाङ्घ्रि पुरो यत्र प्रसारयेत् ।
करौ प्रयोगयोग्यौ च तदतिक्रान्तमुच्यते ॥१२३७॥ 1270

जहाँ पैर को अतिक्रान्त क्रम करके उसे आगे फैला दिया जाय ओर दोनो हाथो को भी उसी के अनुसार सचालित किया जाय, वहाँ **अतिक्रान्त करण** होता है।

६० विद्युद्भ्रान्त और उसका विनियोग

विद्युद्भ्रान्ता यत्र चारी करौ तदनुगामिनौ ।
विद्युद्भ्रान्तमिदं प्रोक्तम्—

जहाँ पैर विद्युद्भ्रान्ता चारी मे हो ओर दोनो हाथ भी उसी का अनुगमन करे । वहाँ **विद्युद्भ्रान्त करण** होता है ।

—उद्धतस्य परिक्रमे । 1271

तीव्र वेग से घूमने के अभिनय मे **विद्युद्भ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

अत्रौचित्यात्पुरः केचिदुशन्तिचरणक्रियम् ।।१२३८।।

कुछ नाटयाचार्यो का मत है कि **विद्युद्भ्रान्त करण** मे पहले पैर का सचालन होना चाहिए ।

६१ निशुम्भित और उसका विनियोग

कुञ्चितोड्घ्रिः पार्ष्णिदेशे द्वितीयचरणस्य चेत् । 1272
वक्षः समुन्नत यत्र खटकास्य करस्य तु ।।१२३९।।
अङ्गुलिर्मध्यमा भाले करोति तिलक तदा । 1273
तन्निशुम्भितमाख्यातम्—

यदि एक निकुञ्चित पैर को दूसरे पैर की एडी पर रख दिया जाय, छाती उठा ली जाय ओर खटकास्य मुद्रा को हाथ की मध्यमा उँगली से ललाट पर तिलक रचना की जाय, तो उसे **निशुम्भित करण** कहते हे ।

—ईशाभिनयगोचरम् ।।१२४०।।

भगवान् शकर के अभिनय मे **निशुम्भित करण** का विनियोग होता हे ।

खटकास्यकरस्थाने त्रिपताकोऽथवात्र हि । 1274
प्राहात्राधोमुखं सूचीकरं कीर्त्तिधरः सुधीः ।
उशन्ति चरणं केचित् सूची नृत्तविचक्षणाः ।।१२४१।। 1275

पण्डित कीर्तिधर इस करण मे खटकास्य के स्थान पर त्रिपताक या अधोमुख सूची हस्त का विनियोग बताते है । कुछ नाटयाचार्यो का मत है कि उसमे सूचीपाद का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

६२ उरोमण्डल

बद्धां चारी स्थितावर्ता रचयन् रचयेत्करौ ।
उरोमण्डलिनौ यत्र तदुरोमण्डलं भवेत् ।।१२४२।। 1276

जहाँ स्थितावर्ता नामक चारी और उरोमण्डलिन् नामक दोनो हाथों की रचना की जाय, वहाँ **उरोमण्डल करण** होता है ।

६३ विक्षिप्त और उसका विनियोग

विद्युद्भ्रान्तां दण्डपादा चारी च क्रमतो यदि ।
विधायोद्वेष्टनेनापवेष्टनेनापि हस्तकौ ।।१२४३।। 1277
एकाध्वयायिनौ यत्र रेचयन्पुरतोऽनु च ।
पार्श्व[योर्वि]क्षिपेत् तत् स्याद्विक्षिप्तकरण तदा । 1278

यदि क्रमश समुदभ्रान्ता और दण्डपादा चारियो को बनाकर दोनो हाथों को उद्वेष्टित तथा अपवेष्टित के द्वारा समस्थिति मे लाया जाय, पुन उन्ह रेचित कर आगे-पीछे तथा अगल-बगल मे चलाया तथा फेका जाय, तो उसे **विक्षिप्त करण** कहते है ।

विनियोगोऽस्य कथित उद्धतस्य परिक्रमे ।।१२४४।।

उद्धतपूर्ण गति मे **विक्षिप्त करण** का विनियोग होता है ।

६४ पार्श्वनिकुट्टक और उसका विनियोग

विधाय स्वस्तिकौ हस्तौ यत्रोर्ध्वास्यस्तयोः करः । 1279
एको निकुट्टितः पार्श्वे द्वितीयोऽधोमुखस्तथा ।।१२४५।।
तद्वन्निकुट्टितौ पादावेतत्पार्श्वनिकुट्टकम् । 1280

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा मे बनाकर उनमे से एक को ऊर्ध्वमुख करके पार्श्व मे कुट्टित किया जाय और दूसरे को अधोमुख करके दूसरे पार्श्व मे कुट्टित किया जाय, उसी प्रकार दोनो पैरो को भी कुट्टित किया जाय तो उसे **पार्श्वनिकुट्टक करण** कहते है ।

सद्भिः सञ्चरणाभ्यासे प्रकाशेन समीरितम् ।।१२४६।।

चलने या घूमने के अभ्यास के अभिनय मे सज्जनो ने **पार्श्वनिकुट्टक करण** का विनियोग बताया है ।

६५ तलसस्फोरित

अतिक्रान्ताख्यया चार्या दण्डपादाख्ययाथवा । 1281
क्षिप्रमुत्क्षिप्य पादेऽग्रे पात्यमाने यदा करौ ।

सशब्दां कुरुतस्ताली तलसंस्फोटितं तदा ॥१२४७॥ 1282

यदि अतिक्रान्ता या दण्डपादा चारी के द्वारा एक पैर को तेजी से ऊपर उठा कर आगे फेक दिया जाय और दोनो हाथो से ताली बजायी जाय, तो उसे **तलसस्फोटित करण** कहते है ।

६६ **गण्डसूचि और उसका विनियोग**

अङ्घ्रिः सूची नत पार्श्व खटकास्यो हृदि स्थितः ।
यत्र गण्डे [भ] वेद्वामोऽलपद्मो गण्डसूच्यदः ॥१२४८॥ 1283
अलपद्मकरस्थाने सूचीपादं परे जगुः ।
केचित्सूची नृत्तपाणि परेऽभिनयहस्तकम् । 1284

जहाँ पैर सूची मुद्रा मे पार्श्व नत तथा दायाँ खटकामुख हस्त हृदय पर ओर बायाँ अलपद्म हस्त कपोल पर अवस्थित हो, वहाँ **गण्डसूचि करण** होता है । अन्य आचार्य अलपद्म हस्त के स्थान पर सूचीपाद का निर्देश करते है । कुछ आचार्यो के मत से सूची नामक नृत्तहस्त का और कुछ के मत से केवल अभिनय-हस्त का ही विनियोग करना चाहिए ।

अनेनाभिनयेद्धीरः कपोलाभरणादिकम् ॥१२४९॥

धीर पुरुष को कपोल और आभरण आदि के अभिनय मे **गण्डसूचि करण** का विनियोग करना चाहिए ।

६७ **सूचि और उसका विनियोग**

कुञ्चितोऽङ्घ्रि. समुत्क्षिप्य स्थाप्यते [भूमिमस्पृश]न् । 1285
अथोरःस्थो भवेदेकः खटकास्याभिधः करः ॥१२५०॥
परोऽलपद्मः शीर्षस्थोऽन्याङ्गमेवं क्रमाद्यदा । 1286
तदैतत्करणं सूचि–

यदि कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर भूमि का स्पर्श किये बिना ही स्थापित किया जाय, खटकास्य एक हाथ को वक्ष पर और अलपद्म दूसरे हाथ को शिर पर रख दिया जाय, अन्य अग भी इसी क्रम से सचालित हो, तो उसे **सूचि करण** कहते है ।

–विस्मयाभिनये मतम् ॥१२५१॥

विस्मय के अभिनय मे **सूचि करण** का विनियोग होता है ।

६८ **अर्धसूचि**

एकाङ्गनिर्मितं त्वेतदर्धसूचि मतं बुधैः ॥१२५२॥ 1287

उक्त सूचि करण यदि एक अंग मे बनाया जाय तो उसे विद्वान **अर्धसूचि करण** कहते है ।

६९ गजक्रीडितक

दोलापादा यदा चारी करः करिकराभिध ।
व्यापारवान् कर्णदेशे गजक्रीडितक तदा ॥१२५३॥ 1288

यदि पैर दोलापाद चारी मे और हाथ कटिहस्त मे वर्तमान रहकर वे कान के पास क्रियाशील रहे, तो उसे **गजक्रीडितक करण** कहते ह ।

७० पार्श्वजानु और उसका विनियोग

ऊरुपृष्ठे समस्याङ्घ्रेः पादश्चेत्स्थापितः पर. ।
अर्धचन्द्र. कर· कट्यां मुष्टिस्तूरसि हस्तक. । 1289
यत्रैतत्पार्श्वजानूक्तम्–

यदि एक पर सम (साधारण) स्थिति मे हो और दूसरा पैर जाँघ पर रख दिया जाय, एक हाथ अर्धचन्द्र मे कटि पर तथा दूसरा मुष्टि मुद्रा मे छाती पर रख दिया जाय, तो उसे **पार्श्वजानु करण** कहते हे ।

–सद्भिर्युद्धनियुद्धयोः ॥१२५४॥

सज्जनो के मत से युद्ध तथा कुस्ती के अभिनय मे **पार्श्वजानु करण** का विनियोग होता है ।

७१ गरुडप्लुत

लतारेचितकौ यत्र करौ पादस्तु वृश्चिकः । 1290
वक्षः समुन्नतं चेत् स्यात् तत् तदा गरुडप्लुतम् ॥१२५५॥

यदि दोनो हाथो को लता रेचितक मे रख दिया जाय, पैर वृश्चिक मे कर दिया जाय, और छाती समुन्नत (भली भाँति उठी हुई) हो, तो वहाँ **गरुडप्लुत करण** होता है ।

७२ गृध्रावलीनक और उसका विनियोग

पृष्ठप्रसारितस्याङ्घ्रेरङ्गुष्ठो भुवमाश्रितः । 1291
लताकरौ करौ चेत्स्यात्तदा गृध्रावलीनकम् ।

यदि पैर को पीछे की ओर फैलाकर घुटने को कुछ मोड दिया जाय और अँगूठा भूमि को स्पर्श करता हो, दोनो हाथ लता हस्त मुद्रा मे हो, तो वहाँ **गृध्रावलीनक करण** होता है ।

तदवाचि महापक्षियुद्धाभिनयने बुधैः ॥१२५६॥ 1292

विद्वानो के मत से गरुड आदि बडे पक्षियो के युद्ध के अभिनय मे **गृध्रावलीनक करण** का विनियोग होता है ।

७३ दण्डपाद और उसका विनियोग

यत्र नूपुरपादाख्या दण्डपादाभिधा तथा ।
चारी स्यादथ चेत् क्षिप्रं पाणिः स्थाप्येत दण्डवत् । 1293
तत्तदा दण्डपादं स्यात्–

यदि परो से नूपुरपादा ओर दण्डपादा नामक चारियाँ बना ली जायँ, हाथ को वेग से दण्डवत् रखा जाय, तो उसे **दण्डपाद करण** कहते है ।

–साटोपे तु परिक्रमे ।।१२५७।।

आडम्बर सहित (या अभिमानपूर्ण) गति के अभिनय मे **दण्डपाद करण** का विनियोग होता है ।

७४ सन्नत और उसका विनियोग

मृगप्लुतां विधायाङ्घ्रिः स्वस्तिकः पुरतः करौ । 1294
दोलौ यदा सन्नतं स्यात्–

यदि मृगप्लुता की रचना करके पैरो को स्वस्तिक मे आगे रख दिया जाय और दोना हाथो को दोला मुद्रा मे किया जाय, तो उसे **सन्नत करण** कहते है ।

–नीचापसरणे तदा ।।१२५८।।

नीचो को हटाने के अभिनय मे **सन्नत करण** का विनियोग होता है ।

७५ सर्पित और उसका विनियोग

पराङ्घ्रेरञ्चिते पादे त्वपसर्पति मस्तकम् । 1295
नामितं रेचितः पाणिरसौ तत्पार्श्वके यदि ।।१२५९।।
एवं पराङ्गं यत्रेदं सर्पितं करणं तदा । 1296

यदि दोनो पैर अञ्चित मे, मस्तक अपसर्प मे हो, एक हाथ नमित ओर दूसरा रेचित होकर उसके पार्श्व मे अवस्थित रहे, ओर अन्य अग भी उसी का अनुसरण करे, तो वहाँ **सर्पित करण** होता है ।

उपसृत्यापसरणे मत्तस्य परिकीर्त्तितम् ।।१२६०।।

मदमत्तता या भाववेग मे लडखडाकर अपसारित करके चलने के अभिनय मे **सर्पित करण** का विनियोग होता है ।

७६ मयूरललित

> आचरेद् रेचितौ हस्तावूरावाकुञ्च्य वृश्चिकम् । 1297
> अर्ड्घ्रि यत्र भ्रमरिकां विदध्यान्नर्तको यदि ।
> तत्तदा करणं प्रोक्तं मयूरललिताभिधम् ॥१२६१॥ 1298

यदि अभिनेता दोनो हाथो मे रेचित की रचना कर फिर पैर को जाँघ पर सिकोड कर वृश्चिक बनाये, अन्त मे भ्रमरिका चारी धारण करे, तो उसे **मयूरललित करण** कहते है ।

७७ सूचीविद्ध और उसका विनियोग

> पक्षवञ्चितकः कट्यां यद्वा स्यादर्धचन्द्रकः ।
> वक्षःस्थः खटकास्योऽन्यः सूच्यङ्घ्रिः परपार्ष्णिगः । 1299
> यत्रैतत्करण सूचीविद्धम्–

यदि पक्षवचितक या अर्धचन्द्र एक हस्त कटि पर और खटकास्य दूसरा हस्त वक्ष पर अवस्थित हो, एक सूचीपाद दूसरे सूचीपाद के समान एडी पर रहे, तो उसे **सूचीविद्ध करण** कहते है ।

> –चिन्तादिषु स्मृतम् ॥१२६२॥

चिन्ता आदि के अभिनय मे **सूचीविद्ध करण** का विनियोग होता है ।

७८ प्रेङ्खोलित और उसका विनियोग

> दोलापादं विधायैकपादेनाथ पराङ्घ्रिणा । 1300
> उत्प्लुत्य भ्रमरी यत्र विदध्यान्नर्तको यदि ।
> प्रेङ्खोलितं तदा–

यदि अभिनेता एक पैर से दोलापाद की रचना कर दूसरे पैर से उछलकर भ्रमरी का अवलम्बन करे, तो उसे **प्रेङ्खोलित करण** कहते है ।

> –योज्यमेतल्लीलापरिक्रमे ॥१२६३॥ 1301

लीला की गति प्रदर्शित करने मे **प्रेङ्खोलित करण** का विनियोग होता है ।

७९ स्खलित

गत्यागतौ यदा दोलापादाङ्घ्रेर्हंसपक्षक. ।
अनुगच्छेदेवमङ्गमपरं स्खलितं तदा ॥१२६४॥ 1302

यदि एक पैर से दोलापाद बनाकर दूसरे पैर से हंसपक्षक धारण किया जाय, ओर हाथ भी तदनुसार चलाये जाय, तो उसे **स्खलित करण** कहते है ।

८० परिवृत्त

उर्ध्वमण्डलिनौ पाणी चार्या बद्धाख्यया यदि ।
सूचीपादो विवृत्तः स्याद्यत्राथ भ्रमरी भवेत् । 1303
तदेदं परिवृत्ताख्य करणं समुदीरितम् ॥१२६५॥

यदि दोनो हाथ ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा मे हो, पैर बद्धा चारी मे होकर सूची चारी मे घुमाया जाय आर तदनन्तर त्रिक भी भ्रमरी मे हो, तो उसे **परिवृत्त करण** कहते हे ।

८१ करिहस्त

खटकास्यः करो वामो हृद्यन्योद्वेष्टनेन चेत् । 1304
कर्णेऽन्यस्त्रिपताकोऽथ सपादः पुरतोऽञ्चितः ।
निर्गच्छति तदैतत्स्यात्करणं करिहस्तकम् ॥१२६६॥ 1305

यदि खटकास्य नामक बॉया हाथ दूसरे हाथ से उद्वेष्टित होकर हृदय पर रहे, फिर दूसरा दॉया त्रिपताक हाथ कान पर रहे, और अञ्चित नामक पैर आगे निकल कर सचलित हो, तो उसे **करिहस्त करण** कहते है ।

८२ प्रसर्पित और उसका विनियोग

रेचितो यः करः सोऽङ्घ्रिर्यत्र घर्षन्न भुव व्रजेत् ।
शनैः शनैरन्यपादादपरश्चेल्लताकरः । 1306
प्रसर्पितमिदं धीरैस्तदा—

यदि एक हाथ रेचित मे और दूसरा लता मे रखा जाय, दोनो पैर प्रसर्प मे धीरे-धीरे भूमि पर सचालित किये जॉय, तो धीर पुरुषो के मत मे उसे **प्रसर्पित करण** कहते है ।

—खगगतौ मतम् ॥१२६७॥

आकाशचारी जीवो की गति के अभिनय मे **प्रसर्पित करण** का विनियोग होता है ।

८३ पार्श्वक्रान्त और उसका विनियोग

पार्श्वक्रान्ता यदा चारी पाणी पादानुगामिनौ । 1307
पार्श्वक्रान्तं तदा–

यदि पैर पार्श्वक्रान्ता चारी में हों और दोनों हाथों को भी उसी मुद्रा में सचालित किया जाय, तो उसे **पार्श्वक्रान्त करण** कहते हैं ।

–रौद्रभीमादीनां परिक्रमे ।।१२६८।।

रौद्र रस और भीम आदि वीर पुरुषों के अभिनय में **पार्श्वक्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

८४ निवेश

हस्तौ वक्षःस्थितौ यत्र वक्षो निर्भुग्नसंज्ञितम् । 1308
स्थानक मण्डल सद्भिर्निवेश तदुदीरितम् ।।१२६९।।

यदि दोनों हाथ छाती पर रख दिये जाँय, वक्ष निर्भुग्न (सीधा तना हुआ) हो, और मण्डल स्थानक बना लिया जाय, तो सज्जनों के अनुसार उसे **निवेश करण** कहते हैं ।

८५ नितम्ब

अधोमुखाङ्गुली पाणी पताकौ प्राप्य मूर्धनि । 1309
निष्क्रम्य परिवृत्योर्ध्व स्कन्धयोः स्वीययोस्ततः ।।१२७०।।
न्यस्यान्योन्यमुखौ यत्र स्वगात्राभिमुखाङ्गुली । 1310
कुर्यात् नितम्बहस्तौ तन्नितम्बकरणं मतम् ।।१२७१।।

यदि दोनों पताक हस्तों को अधोमुख करके शिर पर रख दिया जाय, तदुपरान्त उन दोनों हस्तों को अपने दोनों कन्धों के ऊपर निकाल कर घुमा दिया जाय, फिर दोनों को आमने-सामने करके उनकी उँगलियों को अपने शरीर के सम्मुख रख दिया जाय, और उन्हें नितम्बाकार बना दिया जाय, तो उस मुद्रा को **नितम्ब करण** कहते हैं ।

८६ हरिणप्लुत और उसका विनियोग

हरिणप्लुतया चार्या भवेता यदि हस्तकौ । 1311
खटकामुखदोलाख्यौ तदैतद्धरिणप्लुतम् ।

उक्तं श्रीमदशोकेन–

यदि पैर हरिणप्लुत चारी मे ओर दोनो हाथ खटकामुख तथा दोला मे अवस्थित किये जॉय, तो नृपति अशोकमल्ल ने उसे **हरिणप्लुत करण** कहा है ।

–हरिणप्लुतिगोचरम् ॥१२७२॥ 1312

हरिणो की छलॉग के अभिनय मे **हरिणप्लुत करण** का विनियोग होता है ।

८७ सिहविक्रीडित और उसका विनियोग

पुरः कृत्वालातपादं यत्र हन्तुमिवोद्यतः ।
पाणिस्तथापराङ्गं स्यात्सिहविक्रीडितं तदा । 1313

यदि पैर मे अलात बनाकर उसे आगे करके और हाथ को मारने की स्थिति मे किया जाय, तथा दूसरे हाथ-पैरो को भी तदनुसार सचालित किया जाय, तो वहाँ **सिहविक्रीडित करण** होता हे ।

रौद्रगत्यामिदं प्रोक्तं नृत्तविद्याविशारदैः ॥१२७३॥

नाट्याचार्यो ने रौद्र गति के अभिनय मे **सिहविक्रीडित करण** का विनियोग कहा है ।

८८ सिहार्कषित और उसका विनियोग

वामोऽड्घ्रिर्वृश्चिकः पद्मकोशौ यद्वोर्णनाभकौ । 1314
पराङ्घ्रौ वृश्चिकीकृतो भङ्क्त्वा चेत्प्राक्तनौ करौ ।
पुनस्तथा कृतौ सिहे सिहार्कषितकं तदा ॥१२७४॥ 1315

यदि बॉया पैर वृश्चिक मे, दोनो हाथ पद्मकोश या ऊर्णनाभ मे किये जायॅ, फिर दूसरे पैर पर, वृश्चिकाकार दोनो हाथो को भग करके फिर उन्हे वृश्चिकाकार बना दिया जाय (अर्थात् इस क्रिया को बार-बार दुहराया जाय), तो उसे **सिहार्कषित करण** कहते हे । सिह के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

८९ जनित और उसका विनियोग

जनिता यत्र चारी स्यान्मुष्टिर्वक्षःस्थलेऽपरः ।
करौ लताकरस्तत् स्यादारम्भे जनितं कृते ॥१२७५॥ 1316

यदि पैरो मे जनिता चारी, हाथ वक्षस्थ पर और दूसरा हाथ लता मुद्रा मे हो, तो उसे **जनित करण** कहते है । (सब प्रकार के) अभिनयो के आरम्भ करने मे इस करण का विनियोग होता है ।

९० अवहित्थ और उसका विनियोग

चारीमारच्य जनिता चेदरालालपल्लवौ ।
भालवक्षःस्थितौ हस्तौ क्रमादभिमुखाङ्गुली ॥१२७६॥ 1317
विधायोद्वेष्टितेनाथ पार्श्वगौ परिवृत्तितः ।
ततोपवेष्टच्य वक्षोगौ परिवृत्त्या पुनस्तथा ॥१२७७॥ 1318
न्यस्येते सम्मुखौ यत्र मिथस्तदवहित्थकम् ।

पैरो मे जनिता चारी की रचना करके यदि अराल और पल्लव दोनो हाथो को क्रमश ललाट तथा वक्ष पर रख दिया जाय, उनकी उँगलियाँ एक-दूसरे के आमने-सामने कर दी जाँय, फिर उन्हे उद्वेष्टित करके पार्श्व मे घुमा कर अलग कर दिया जाय और छाती पर रख दिया जाय, तत्पश्चात् पुन घुमाकर दोनो को पूर्ववत् आमने-सामने रख दिया जाय, तो उस मुद्रा को **अवहित्थ करण** कहते है ।

गोपनाप्रायवाक्यार्थगोचरं परिकीर्त्तितम् ॥१२७८॥ 1319
इदं परेऽवहित्थाख्यं करयोगाद्बभाषिरे ।
चिन्तादौर्बल्यविषयं नृत्तविद्याविशारदाः ॥१२७९॥ 1320

अगोचर अर्थयुक्त वाक्यो के अभिनय मे बहुधा **अवहित्थ करण** का विनियोग होता है । कुछ नृत्ताचार्यो का कहना है कि इस **अवहित्थ करण** को, हाथ के योग से, चिन्ता तथा दुर्बलता का भाव प्रकट करने के अभिनय मे प्रयुक्त किया जाता है ।

९१ उद्वृत्त

प्रसार्याक्षिप्यते क्षिप्रं पाणिपादं यदैकदा ।
अङ्गमुद्वृत्तचारीकमुद्वृत्तं तदुदीरितम् ॥१२८०॥ 1321

यदि एक हाथ-पैर को एक ही बार मे शीघ्रतापूर्वक फैलाकर आक्षिप्त कर दिया जाय, दूसरे पैर और हाथ मे उद्वृत्ता चारी और धड भी उद्वृत्त कर दिया जाय, अर्थात् उठा दिया जाय, तो उसे **उद्वृत्त करण** कहते है ।

९२ तलसघट्टित

दोलापादाभिधां चारीमाचरन्न यदि हस्तकौ ।
सङ्घट्टिततलौ कृत्वा पताकौ वैष्णवे स्थितः ॥१२८१॥ 1322

स्थानकेऽथ करं सव्यं कट्यां न्यस्येत् ततः पराम् ।
विदध्याद्रेचितं पाणि तलसङ्घट्टितं तदा ॥१२८२॥ 1323

यदि दोलापाद नामक चारी की रचना करके दोनो पताक हस्तो की हथेलियो को मिला दिया जाय, फिर वैष्णव स्थानक धारण किया जाय, तत्पश्चात् दाहिने हाथ को कटि पर रख कर दूसरे बाये हाथ को रेचित मे कर दिया जाय, तो उस मुद्रा को **तल सघट्टित करण** कहते है।

९३ लोलित

यदैको रेचितो हस्तोऽन्योऽलपद्मो हृदि स्थितः ।
शिरस्तु लोलितं पार्श्वद्वये विश्रान्तिमत् ततः । 1324
वैष्णवं स्थानकं यत्र तदा तल्लोलितं मतम् ॥१२८३॥

यदि एक हाथ रेचित और दूसरा अलपद्म बना कर हृदय पर रख दिया जाय, फिर शिर को भी लोलित करके उसे (क्रमश) दोनो पार्श्वो मे अवस्थित किया जाय, तदनन्तर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय, तो उसे **लोलित करण** कहते है।

९४ शकटास्य और उसका विनियोग

शकटास्याभिधा चारी पाणिरेकोऽङ्घ्रिणा समम् । 1325
प्रसृतोऽथ परो हस्तः खटकास्यो हृदि स्थितः ।
यत्रेदं शकटास्यं स्याद्–

यदि शकटास्य चारी की रचना करके एक हाथ एक पैर के समान फैला हो और दूसरा खटकास्य मुद्रा मे हृदय पर अवस्थित हो, तो वहाँ **शकटास्य करण** होता है।

–बालखेलनगोचरम् ॥१२८४॥ 1326

बालक्रीडा के अभिनय मे **शकटास्य करण** का विनियोग होता है।

९५ वृषभक्रीडित

चारीं कुर्वन्नलातां चेदाचरेद्रेचितौ करौ ।
व्यावर्त्तनेन चाकुञ्च्य स्थापयेद् भुजशीर्षयोः । 1327
अलपद्माकृती कृत्वा वृषभक्रीडितं तदा ॥१२८५॥

यदि अठान चारी की रचना करके दोनो हाथो को रेचित मे कर दिया जाय फिर उन्हे अलपद्म मे परिणत करके तनाव के माथ भीतर की ओर सिकोड कर भुजा और सिर पर रख दिया जाय, तो उसे **वृषभक्रीडित करण** कहते है ।

९६ एलकाक्रीडित और उसका विनियोग

एलकाक्रीडिता चारी चेद्दोलखटकामुखौ । 1328
सन्नतं वलित चाङ्गमेलकाक्रीडितं तदा ।

यदि एलकाक्रीडिता चारी की रचना करके दोनो हाथो को दोल तथा खटकामुख मे कर दिया जाय, शरीर झुका तथा वलित हो, तो उसे **एलकाक्रीडित करण** कहते है ।

गमने त्वधमानां तन्नियोज्यं नृत्तवेदिभिः ॥१२८६॥ 1329

नाट्याचार्यो के मत से तुच्छ व्यक्तियो की गति के अभिनय म **एलकाक्रीडित करण** का विनियोग होता है ।

९७ विष्कम्भ

अपसृत्य यदा वामं सव्यः सूचीमुख. कर. ।
उपगच्छेन्निकुट्टचेत सपादोऽन्यः करो हृदि ॥१२८७॥ 1330
विधायैवं पराङ्गं च सूचीपादस्तु दक्षिणः ।
एषोऽलपल्लव पाणिरपरः पूर्ववद्भवेत् । 1331
पौनः पुन्येन यत्रैवं विष्कम्भं त्तदोदितम् ॥१२८८॥

यदि बाँये हाथ को हटाकर उसे दाहिने सूचीमुख हाथ के समीप लाया जाय और पैर सहित कुट्टित किया जाय, फिर दूसरे दाहिने हाथ को हृदय पर अवस्थित किया जाय, शरीर को भी तद्वत् सचालित किया जाय, तत्पश्चात् दाँये सूचीपाद और बाँये अलपल्लव हस्त को बार-बार इसी प्रकार किया जाय, तो उसे **विष्कम्भ करण** कहते है ।

९८ उपसृत और उसका विनियोग

कृत्वा क्षिप्ताभिधा वामभागे चारी तत. करम् । 1332
व्यावृत्तं परिवृत्तं च सव्ये पार्श्वे नते यदि ॥१२८९॥
अरालतां नयेदेनं तदोपसृतमीरितम् । 1333

यदि बाँये पैर से आक्षिप्ता चारी का निर्माण कर हाथ को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय, दाहिने पार्श्व को नत किया जाय, फिर उसे अराल मुद्रा मे परिणत कर दिया जाय, तो उसे **उपसृत करण** कहते है।

श्रीमदशोकमल्लेन विनयेनोपसर्पणे ॥१२६०॥

नृपति अशोकमल्ल के अनुसार विनयपूर्वक समीप आने के अभिनय मे **उपसृत करण** का विनियोग होता है।

९९. विष्णुक्रान्त और उसका विनियोग

यत्रोर्ध्वं प्रसरत्यग्रे चरणश्चलनोन्मुखः । 1334
कुञ्चितोऽथ यदा स्यातां हस्तकौ रेचितौ तदा ।
विष्णुक्रान्तमिदं प्रोक्तम्–

आगे चलने के लिए उन्मुख ऊपर की ओर प्रसारित पैर यदि मोड दिया जाय ओर दोनो हाथो को रेचित कर दिया जाय, तो उसे **विष्णुक्रान्त करण** कहते है।

–विष्णुक्रमणगोचरम् ॥१२६१॥ 1335

भगवान् विष्णु की गति के अभिनय मे **विष्णुकान्त करण** का विनियोग होता है।

१०० अपक्रान्त

बद्धां चारीमपक्रान्तां चाचरन् रचयेत्करौ ।
प्रयोगानुगतौ यत्र तदपक्रान्तमीरितम् ॥१२६२॥ 1336

यदि बद्धा और अपक्रान्ता चारियो की रचना करते हुए (अर्थात् दोनो जाँघो से वलिन करके टाँगे अपक्रान्त क्रम मे चलायी जाँय), दोनो हाथो को भी तदनुसार सचालित किया जाय, तो उसे **अपक्रान्त करण** कहते है।

१०१ ऊरूद्वृत्त और उसका विनियोग

चार्योरूद्वृत्तया सार्धमरालखटकामुखौ ।
यत्रोरुपृष्ठयोर्न्यस्येद्वर्तनापूर्वकौ करौ ॥१२६३॥ 1337
ऊरूद्वृत्तमिदं प्रोक्तम्–

यदि ऊरुद्वृत्ता चारी के साथ अराल और खटकामुख हस्तो को वर्तना क्रिया के उपरान्त, ऊरु के पृष्ठभाग पर रख दिया जाय, तो उसे **ऊरुद्वृत्त करण** कहते है।

—ईर्ष्याप्रणयकोपयोः ।

प्रार्थनायामपि नृपाशोकमल्लेन धीमता ॥१२६४॥ 1338

नृपति अशोकमल्ल के मत मे ईर्ष्या, प्रणय-कोप और प्रार्थना के अभिनय मे **ऊरुद्वृत्त करण** का विनियोग होता हे ।

१०२ अञ्चित और उसका विनियोग

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां नासिकाक्षेत्रसश्रितः ।

करिहस्तो यदा धत्तेऽलपद्मत्व तदाञ्चितम् । 1339

यदि करिहस्त हाथ व्यावृत्त-परिवृत्त द्वारा (अर्थान् घुमाकर तथा मोडकर) नासिका स्थान पर पहुँच कर अलपद्म हस्त का स्वरूप धारण कर लेता है, तो उसे **अञ्चित करण** कहते है ।

आत्मनः कौतुकादेतत् सम्मुस्यावलोकने ॥१२६५॥

जब कोई नर्तकी अन्य नर्तकी के सामने अपने कोतुकवश ताकती हैं, तब उस अभिनय मे **अञ्चित करण** का विनियोग होता है। (अथवा अपने कोतुकवश सामने ताकने के आशय मे उसका विनियोग होता है)

१०३ सम्भ्रान्त और उसका विनियोग

विधायाविद्धचारी चेद्व्यावर्त्य परिवृत्तितः । 1340

अलपद्माभिधं पाणि स्थापयेदूरुपृष्ठके ।

तदा सम्भ्रान्तमादिष्टम्—

यदि अविद्धा चारी की रचना करके अलपद्म हस्त को चारो ओर घुमाकर ऊरु के पृष्ठ भाग पर रख दिया जाय, तो उसे **सम्भ्रान्त करण** कहते है ।

—ससाध्वसपरिक्रमे ॥१२६६॥ 1341

भयपूर्ण या घवराहट युक्त की गति के अभिनय मे **सम्भ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

१०४ मदस्खलित और उसका विनियोग

स्वस्तिकीभूय यत्राङ्घ्री क्रमेणैवापसर्पतः ।

परिवाहितसंज्ञं च शिरो दोलाभिधौ करौ । 1342

इदं मदस्खलितकं कथितम्—

यदि दोनो पैर स्वस्तिक मुद्रा मे क्रमश पीछे की ओर हटते जॉय, शिर परिवाहित मे और दोनो हाथ डोला मे हो, उसे **मदस्खलित करण** कहते है ।

—मध्यमे मदे ।।१२९७।।

मध्यम मद के अभिनय मे **मध्यस्खलित करण** का विनियोग होता है ।

१०५. अर्गल और उसका विनियोग

वामस्याङ्घ्रेःकनिष्ठायाःभागेऽङ्घ्रिर्दक्षिणःस्थितः । 1343
अथान्यः स्तब्धजङ्घः सन् सार्धतालद्वयान्तरे ।।१२९८।।
प्रसारितोऽथपाणिः सन् स्तब्धबाहुः स्वपार्श्वके । 1344
यदालपल्लवः किञ्चित्प्रसृताग्रोऽपरस्तदा ।
अर्गलं गदितं धीरैः—

यदि बाये पर की कनिष्ठा उगली के अग्रभाग मे दाहिना पैर अवस्थित किया जाय, दूसरे पैर की जॅघा निश्चल रहे, एक पैर दूसरे पैर के ढाई ताल आगे रख दिया जाय, उसके बाद एक हाथ की बॉह निश्चल रहे और वह अपने पाश्व मे अलपल्लव मुद्रा मे हो, दूसरा हाथ (पैरो की उक्त स्थिति के अनुरूप) अग्रभाग मे कुछ प्रसृत होकर अवस्थित रहे, तो विद्वानो के मत से उसे **अर्गल करण** कहा जाता है ।

—अङ्गदादि परिक्रमे ।।१२९९।। 1345

अगद आदि की गति के अभिनय मे **अर्गल करण** का विनियोग होता है ।

१०६ रेचकनिकुट्टक

सव्यः स्याद्रेचितः पाणिः सपादस्तु निकुट्टितः ।
वामो दोलाकरो यत्र तद्रेचकनिकुट्टकम् ।।१३००।। 1346

यदि दाहिना रेचित हस्त, पैर सहित कूटा जाय और बाये हाथ दोलाकर मुद्रा मे हो, तो उसे **रेचकनिकुट्टक करण** कहते है ।

१०७ नागापसर्पित और उसका विनियोग

[हस्तौ चेद् रेचितौ स्यातां शिरस्तु परिवाहितम्[१]] ।
स्वस्तिकीभूय चेदङ्घ्री कुरुतोऽपसृति तदा । 1347
नागापसर्पितं प्रोक्तं नृत्तज्ञैः —

यदि दोनो हाथ रेचित मुद्रा मे हो, शिर परिवाहित हो और दोनो पैर स्वस्तिक होकर पीछे की ओर चले, तो नृत्तवेत्ताओ ने उसे **नागापसर्पित करण** कहा है ।

---

१. देखिए . सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७४५ (अडियार सस्करण) ।

—तरुणे मदे ॥१३०१॥

तरुण मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

१०८ गगावतरण और उसका विनियोग

अङ्घ्रेस्तु क्षेपनिक्षेपौ भवेतां चेद्यथा यथा। 1348
तथा पाणी पताकाख्यावुभावुन्नतिसन्नती ॥१३०२॥
कुरुतः संनतं शीर्षं गङ्गावतणं तदा। 1349

पैर जैसे-जैसे चले, तदनुसार दोनो पताक हस्त उन्नति तथा अवनति को धारण करे और शिर सनत मुद्रा मे अवस्थित हो, तो ऐसी क्रिया को **गगावतरण करण** कहते है।

गङ्गावतरणे योज्यमिद नृत्तविचक्षणैः ॥१३०३॥

नाट्याचार्यो ने गगा जी के पृथ्वी पर उतरने के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

करण प्रयोग के विशेष निर्देश

वामो बाहुल्यतः कार्यः करः करणकर्तृभिः। 1350
वक्षःस्थः करणेष्वन्यो ज्ञेयस्तत्करणानुगः ॥१३०४॥
अनुक्तनियमेऽप्येषा परिभाषोदिता बुधैः। 1351
करणेऽनुक्तचारीके चारी तच्चरणानुगा।
ज्ञेया ज्ञेयोऽथवा पादः करानुगतिसुन्दरः ॥१३०५॥ 1352

करणो के निर्माताओ या प्रयोक्ताओ को चाहिए कि वे बाये हाथ का प्रयोग अधिक करे। करणो मे दाहिने हाथ को छाती पर रखे ओर वह करणो का अनुगामी हो। किसी नियम विशेष का निर्देश न करते हुए भी विद्वानो ने यह परिभाषा (सामान्य नियम) बतायी है। जहाँ करण मे चारी का उल्लेख न किया गया हो, वहाँ करण के पैर के अनुसार चारी को योजना कर लेनी चाहिए, अथवा हस्त-सचालन के अनुसार पैर की सुन्दर रचना करनी चाहिए।

एक सौ आठ नृत्तकरणो का निरूपण समाप्त



उत्प्लुतिकरणो का निरूपण / बारह

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

अथोद्दिशति देशीविद् देशीस्थकरणानि च ।
उत्प्लुत्याद्यानि भूमीन्द्रो वैरिहा वीरसिहज. ॥१३०६॥ 1353

देश-विशेष की गति-विधियो को जानने वाले शत्रुहन्ता महाराज वीरसिह-पुत्र अशोकमल्ल ने देशविशेष मे किये जाने वाले उत्प्लुति आदि करणो को (इस प्रकार) निरूपित किया है ।

उछल कर किये जाने वाले करणो (उत्प्लुतिकरण) के भेद

अञ्चितं करणं पूर्वमेकपादाञ्चित परम् ।
समपादाञ्चितं तिर्यगञ्चितं भैरवाश्रितम् । 1354
भ्रान्तपादाञ्चितं दण्डप्रणामाञ्चितकं तथा ॥१३०७॥
अञ्चितं कर्तरीपूर्व लङ्कादाहाञ्चितं तथा । 1355
समकर्तर्यञ्चितं च बलिबन्धाञ्चितं तथा ॥१३०८॥
अथ क्षेत्राञ्चितं तद्वदन्यत् स्कन्धाञ्चिताभिधम् । 1356
करणं चालगं चोर्ध्वालगं स्यादन्तरालगम् ॥१३०९॥
कूर्मालगं लोहडी स्यादेकपादादिलोहडी । 1357
विचित्रलोहडी बाहुबन्धलोहड्यपीतरा ॥१३१०॥
कर्त्तर्याद्या लोहडी च समकर्त्तरिलोहडी । 1358
चतुर्मुखादिरन्यास्याल्लोहडी चालगाञ्चितम् ॥१३११॥
जलादिशयनं दर्पशरणं नागबन्धकम् । 1359
अथ स्यान्मत्स्यकरणं तिर्यक्करणमेव च ॥१३१२॥
कपालचूर्णनं तिर्यक्स्वस्तिकं नतपृष्ठकम् । 1360
कराद्यं स्पर्शनं स्कन्धभ्रान्तमेणप्लुतं तथा ॥१३१३॥
लोहडचञ्चितकं तद्वत्सूच्यन्तमथ लक्षणम् । 1361

उत्प्लुतिकरणो के अडतीस भेद होते है १ अञ्चित, २ एकपादाञ्चित, ३ समपादाञ्चित, ४ तिर्यगञ्चित, ५ भैरवाञ्चित, ६ भ्रान्तपादाञ्चित, ७ दण्डप्रणामाञ्चित, ८ कर्त्तर्यञ्चित, ९ लकादाहाञ्चित, १० समर्त्तर्यञ्चित, ११ बालिबन्धाञ्चित, १२ क्षेत्राञ्चित, १३ स्कन्धाञ्चित, १४ अलग, १५ ऊर्ध्वालग, १६ अन्तरालग, १७ कूर्मालग, १८ लोहडी १९ एकपादलोहडी, २० विचित्रलोहडी, २१ बाहुबन्धलोहडी, २२ कर्त्तरीलोहडी, २३ समकर्त्तरीलोहडी, २४ चतुर्मुखलोहडी, २५ अलगाञ्चित, २६ जलशयन, २७ दर्पशरण, २८ नागबन्ध, २९ मत्स्यकरण ३० तिर्यक्करण, ३१ तिर्यक्स्वस्तिक, ३२ कपालचूर्णन, ३३ नतपृष्ठक, ३४ करस्पर्श, ३५ स्कन्धभ्रान्त, ३६ एणप्लुत, ३७ लोहडयाञ्चित और ३८ सूच्यन्त ।

उच्यते क्रमतोऽमीषां मया लक्ष्यानुसारतः ॥१३१४॥

अब लक्ष्य के अनुसार इन करणो का क्रमश लक्षण निरूपित किया जा रहा है ।

१ अञ्चित

विधाय समपादाख्यं स्थानमुत्तानितो यदा । 1362
उत्पतेदञ्चितं प्रोक्तं तदा करणवेदिभिः ॥१३१५॥

जब समपाद नामक स्थानक को बनाकर उत्तान होकर उछला जाय, तब करण के ज्ञाताओ ने उसे **अञ्चित करण** बताया है ।

२ एकपादाञ्चित

एकपादाञ्चितं प्रोक्तमन्वर्थं करणं बुधैः ॥१३१६॥ 1363

विद्वानो ने **एकपादाञ्चित करण** को अर्थ के अनुरूप बताया है ।

३ समपादाञ्चित

कृत्वोर्ध्वास्यौ समौ पादौ स्कन्धेनाक्रम्य भूतलम् ।
पादाबुल्लालन्यत्र परिवर्तनमाचरेत् । 1364
तिर्यक्क्रमादिदं प्रोक्तं समपादाञ्चितं बुधैः ॥१३१७॥

यदि सम नामक दोनो चरणो को ऊर्ध्वमुख करके कन्धे से भूतल को छूकर दोनो चरणो को सहलाते हुए तिरछे क्रम से घुमाया जाय, तो उसे विद्वानो ने **समपादाञ्चित** करण कहा है ।

४ तिर्यगञ्चित

समपादात्कृते तिर्यगुत्प्लवे तिर्यगञ्चितम् ॥१३१८॥ 1365

समस्थित पैर से तिरछा कूदने पर **तिर्यगञ्चित करण** होता है ।

५ भैरवाञ्चित

ऊरुस्थितैकपादस्योत्प्लवने भैरवाञ्चितम् ।।१३१९।।

ऊरु पर एक पैर को रखकर उछलने से **भैरवाञ्चित करण** होता है ।

६. भ्रान्तपादाञ्चित

आक्रम्यांसद्वयेनोर्वीं भ्रामयित्वा तु दक्षिणम् । 1366
अर्ङ्घ्रि तदीयपृष्ठेन वामाङ्घ्रेस्तु निपीडयेत् ।।१३२०।।
जङ्घामध्य [मथा] रच्याश्चितं कृतविवर्तनम् । 1367
पादावुल्लालयेद्यत्र भ्रान्तपादाञ्चितं त्विदम् ।।१३२१।।

यदि दोनो कन्धो मे पृथ्वी का स्पर्श करके दाहिने पैर को घुमाकर उसके पृष्ठभाग से बाये पैर को पीडित किया जाय, फिर घुमाये हुए अञ्चित पैर को जँघा के बीच मे करके दोनो पैरो को सहलाया जाय, तो ऐसा करने से **भ्रान्तपादाञ्चित करण** बनता है ।

७ दण्डप्रणामाञ्चित

उत्प्लुत्याञ्चितवद्यत्र धराया दण्डवत्पतेत् । 1368
तदुक्तं करणं दण्डप्रणामाञ्चितसंज्ञकम् ।।१३२२।।

अञ्चित करण की तरह उछलकर पृथ्वी पर डडे की भाँति गिरने से **दण्डप्रणामाञ्चित करण** होता है ।

८ कर्तर्यञ्चित

कर्त्तर्यञ्चितमेतत्स्याद्यत्राङ्घ्रिस्वस्तिकाश्चितम् ।।१३२३।। 1369

जहाँ पैरो को स्वस्तिकाकार करके अञ्चित करण बनाया जाता है वहाँ **कर्तयञ्चित करण** होता है ।

९ लकादाहाञ्चित

अञ्चितं रचयन्देहविवृत्योरुपराङ्मुखः ।
महीतले यदासीनो विदध्यादुत्कटासनम् । 1370
तदा करणमादिष्टं लङ्कादाहाञ्चिताभिधम् ।।१३२४।।

जब अञ्चित करण की रचना करते हुए शरीर को घुमाकर ऊरु की ओर से मुँह फेरकर पृथ्वी पर बैठकर उत्टक आसन लगाया जाता है, तब **लकादाहाञ्चित करण** होता है ।

१०. समकर्तर्यञ्चित

समपादं समाधाय यदा कृत्वाञ्चितं नटः । 1371
रचयेत्स्वस्तिकौ तत्सत्समकर्मरिकाञ्चितम् ॥१३२५॥

जब नट सम स्थित पैर की रचना करके अञ्चित करण करने के उपरान्त स्वस्तिक हाथो का निर्माण करता है, तब **समकर्तर्यञ्चित करण** होता है ।

११ बलिबन्धाञ्चित

कृत्वाग्रे गजदन्तं तु विदध्यादञ्चितं यदा । 1372
बलिबन्धाञ्चितं ज्ञेयं तदा करणकोविदैः ॥१३२६॥

जब पहले गजदन्त नामक हाथ की रचना करके अञ्चित करण किया जाता है तब उसे करणवेत्ता विद्वानो को **बलिबन्धाञ्चित करण** जानना चाहिए ।

१२ क्षेत्राञ्चित

आदौ प्रान्ते च यत्र स्यादञ्चितस्योत्कटासनम् । 1373
इदं क्षेत्राञ्चितं प्रोक्तमशोकेन महीभुजा ॥१३२७॥

जहाँ अञ्चित करण के आदि और प्रान्त मे उत्कटासन किया जाता है, वहाँ राजा अशोकमल्ल ने **क्षेत्राञ्चित करण** बताया है ।

१३ स्कन्धाञ्चित

रचयित्वाञ्चितं यत्र स्कन्धालिङ्गितभूतलः । 1374
तिर्यगुल्लालयन्पादाववतिष्ठेत सत्वरम् ।
इदं स्कन्धाञ्चितं प्रोक्तं करणं प्राक्तनैर्बुधैः ॥१३२८॥ 1375

पुरातन आचार्यो का मत है कि जहाँ अञ्चित की रचना करके कन्धो से पृथ्वी का आलिगन किया जाय और तिरछे पैरो को सहलाते हुए शीघ्रता से उठा जाय, तो वहाँ **स्कन्धाञ्चित करण** होता है ।

१४ अलग

अधोमुखः समुत्प्लुत्य निपत्य पुरतो यदा ।
कुक्कुटासनमाबध्य स्थितश्चे [दलगं तदा] ॥१३२९॥ 1376

जब मुँह नीचे की ओर किये उछलकर तथा सामने गिरकर एव कुक्कुटासन बाँधकर स्थित हुआ जाय, तो वहाँ **अलग करण** होता है ।

१५ ऊर्ध्वालग

समाङ्घ्रेरूर्ध्वता स्थित्या निपत्योर्ध्वालगं मतम् ॥१३३०॥

गिरकर स्थित होने मे यदि सम नामक पैर ऊपर की ओर रहे तो **ऊर्ध्वालग करण** होता है।

१६ अन्तरालग

विधायालगमुत्तानोरःस्थलो भुवि चेत् पतेत्। 1377
शिरसा पृष्ठतः श्रोणेः संस्पर्शादन्तरालगम् ॥१३३१॥

अलग करण की रचना करके यदि छाती को उत्तान किये सिर के बल भूमि पर गिरा जाय ओर पीछे की ओर से कटि का स्पर्श किया जाय, तो वहाँ **अन्तरालग करण** होता हैं।

१७ कूर्मालग

कूर्मासनं चेदलगे तदा कूर्मालगं मतम् ॥१३३२॥ 1378

यदि अलग करण मे **कूर्मालग** लगा लिया जाय तो, वह **कूर्मालग करण** कहलाता हे।

१८ लोहडी

समावङ्घ्री विधायाथ विवर्त्य त्रिकमाचरेत्।
तिर्यगुत्प्लवनं यत्र सद्भिः सा लोहडी मता। 1379
लोहडी लुठितं केचिदेतामेव प्रचक्षते ॥१३३३॥

सम स्थित दोनो पैरो की रचना करके तीन बार घुमाकर जहाँ तिरछा कूदा जाय, वहा **लोहडी करण** होता है। इसी लोहडी को कोई विद्वान् लुठित कहते है।

१९ एकपादलोहडी

एकपादेन रचिता सैकपादादिलोहडी ॥१३३४॥ 1380

जो लोहडी एक पैर से रची जाती हे उमे **एकपादलोहडी करण** कहते है।

२० विचित्रलोहडी

गात्रस्य चक्रवद्भ्रान्तिस्तिर्यक्पार्श्वोपलक्षिता।
यत्र सोक्ता विचित्राद्या लोहडी नृत्तवेदिभिः ॥१३३५॥ 1381

नाटयाचार्यो को अभिमत है कि जहाँ शरीर को चक्र की तरह घुमाया जाय और पार्श्व तिरछा दिखाई पडे, वहाँ **विचित्रलोहडी करण** होता है।

२१ बाहुबन्धलोहडी

गजदन्तयुता त्वेषा बाहुबन्धादिलोहडी ।।१३३६।।

जिस लोहडी मे गजदन्त नामक हाथ का प्रयोग किया जाता है, वह **बाहुबन्धलोहडी** कहलाती है ।

२२ कर्तरीलोहडी

स्वस्तिकाङ्घ्रिकृता त्वेषा कर्त्तरीलोहडी मता ।।१३३७।। 1382

जो लोहडी स्वस्तिकाकार पैरो से की जाती है, वह **कर्तरीलोहडी** कहलाती है ।

२३ समकर्नरीलोहडी

आदौ प्रान्ते च यस्याः स्तः समौ स्वस्तिकतां गतौ ।

पादौ सा लोहडी ज्ञेया समकर्त्तरिपूर्वका ।।१३३८।। 1383

जिस लोहडी के आदि और प्रान्तभाग मे दोनो सम नामक पैर स्वस्तिक मुद्रा को धारण करे, वह **समकर्तरीलोहडी** कहलाती है ।

२४ चतुर्मुखलोहडी

लोहडी या चतुर्दिक्षु सा चतुर्मुखलोहडी ।।१३३९।।

जो लोहडी चारो दिशाओ मे की जाती है, वह **चतुर्मुख लोहडी** कहलाती है ।

२५ अलगाञ्चित

कृत्वालगं यदावेगादञ्चितं रचयेन्नटः । 1384

तदालगाञ्चितं ज्ञेयं सद्भिरन्वर्थनामकम् ।।१३४०।।

जब अलग करण की रचना करके नट वेग से अञ्चित पैर की रचना करता है, तब सज्जन लोग उसे अर्थ के अनुरूप नाम वाला **अलगाञ्चित करण** समझते है ।

२६ जलशयन

जलादिशयनं तत्स्याद्यत्रास्ते जलशायिवत् ।।१३४१।। 1385

जिस करण मे, जल मे सोने वाले की तरह अवस्थित होना पडता है, उसे **जलशयन करण** कहते है ।

२७ दर्पशरण

वैष्णवस्थानमाधाय पतेत्पार्श्वेन चेद् भुवि ।

तदाचष्ट नृपो दर्पशरणं वीरसिहजः ।।१३४२।। 1386

यदि वैष्णव स्थानक का आश्रय लेकर बगल से पृथ्वी पर गिरा जाय, तो राजा वीरसिह के पुत्र अशोकमल्ल ने उसे **दर्पशरण करण** कहा है ।

२८ नागबन्ध

[स्या[1]द्दर्पसरणस्यान्ते नागबन्धवदासनम् ।
यत्र तन्नागबन्धाख्यं करणं तद्विदो विदु: । 1387

जहाँ दर्पशरण के अन्त मे नागबन्ध के समान आसन लगाया जाय, वहाँ करणो के ज्ञाताओ ने उसे **नागबन्ध करण** कहा है ।

२९ मत्स्यकरण

उत्प्लुतेर्मध्यमावृत्या कुरुते वामपार्श्वतः ।
परिवृत्ति तदा यत्र तन्मत्स्यकरणं भवेत् । 1388

जहाँ उछलने के मध्य बार-बार वाम पार्श्व की ओर से चक्कर लगाया जाय, वहाँ **मत्स्यकरण** होता है ।

यद्वा कस्यापि करणस्यान्ते तु क्षितिमण्डले ।
उत्तानशयतो मध्यं नितम्बोन्नतिपूर्वकम् । 1389
आवर्त्य वामपार्श्वेन मत्स्यवत्परिवर्त्य च ।
अन्ते समुत्प्लुतिं कृत्वा पादोल्लालनया क्षणात् । 1390
उत्तिष्ठेद्यत्र तदपि मत्स्याद्यं करणं भवेत् ।

अथवा किसी करण के अन्त मे पृथ्वी पर उत्तान सोकर नितम्ब को उठाये हुए मध्यभाग को घुमाकर वामपार्श्व से मछली की तरह उलटकर तथा अन्त मे उछलकर पैर को सहलाते हुए क्षण भर मे उठा जाय, तो यह भी **मत्स्यकरण** कहलाता है ।

३० तिर्यक् करण

यत्रैकेनैव पादेन तिर्यगुत्प्लुत्य भूतले । 1391
निपत्यैकाङ्घ्रिणा तिष्ठेत्तत्तिर्यक्करणं भवेत् ।

जहाँ एक ही पैर से तिरछा उछलकर पृथ्वी पर गिरकर एक पैर पर खडा हुआ जाय, वहाँ **तिर्यक् करण** होता है।

३१ तिर्यक्स्वस्तिक

तिर्यक्स्वस्तिकमुत्प्लुत्य स्यात्तिर्यक्स्वस्तिके कृते । 1392

तिरछी स्वस्तिक मुद्रा मे उछलने से **तिर्यक्स्वस्तिक करण** होता है ।

---

१ देखिए : भरतकोश ।

३२ कपालचूर्णन

लोहडीमलगं यद्वा विधाय धरणीतलम् ।
स्पृष्ट्वैव शिरसा यत्र परिवृतिं करोति चेत् । 1393
कपालचूर्णनं नाम करणं तत्प्रचक्षते ।

लोहडी या अलग नामक करण को करके पृथ्वीतल को छूकर जहाँ सिर को घुमाया जाता है, वहाँ **कपालचूर्णन करण** होता है ।

३३ नतपृष्ठक

कपालचूर्णने जाते वक्षस्युत्तानिते नते । 1394
नतपृष्ठं परैरुक्तं वङ्कोलकरणं त्विदम् ।

कपालचर्णन करण के हो जाने पर तथा नत नामक वक्ष के उत्तान करने पर **नतपृष्ठ करण** होता है । दूसरे आचार्यो ने इसे **वङ्कोलकरण** कहा है ।

३४ करस्पर्श

अलगं विधाय करणं हस्तेनाश्रित्य नर्तकी भूमिम् । 1395
परिवर्तेन यदेदं स्पर्शनमुक्तं करात्चं तत् ।

यदि नर्तकी अलग करण की रचना करके हाथ से घूमते हुए भूमि का आश्रय ग्रहण करे, तो वह **करस्पर्श करण** कहलाता है ।

३५ स्कन्धभ्रान्त

पृथ्व्यां स्थितवांसयुग्मेन कृत्वा चैवोत्कटासनम् । 1396
करणञ्चाञ्चितं कृत्वा धृत्वाङ्गान्तरसञ्चरे ।
बाहुभ्यां भुवमाक्रम्य भ्रामं भ्रामं च पूर्ववत् । 1397
तिष्ठेत्प्रतिदिशं यत्र तत्स्कन्धभ्रान्तमुच्यते ।

दोनो कन्धो से भूमि पर अवस्थित होकर उत्कटासन तथा अञ्चित करण करके दूसरे अगो को चलायमान करते हुए भुजाओ से पृथ्वी को आक्रान्त किया जाय और पूर्ववत् प्रत्येक दिशा मे घूम-घूम कर खडा हुआ जाय, तो वहाँ **स्कन्धभ्रान्त करण** होता है ।

३६ एणप्लुत

कृत्वोत्प्लवनं सूचीमन्यतमां स्वे विधाय चेद्व्रजते । 1398
भूमावूर्ध्वस्थानं यदोत्कटासनं तदाप्लुतं चैणवम् ।

जब उछलने के पश्चात् सूची नामक चारी करके भूमि पर ऊर्ध्व स्थान वाले उत्कटासन को किया जाता है तब **एणप्लुत करण** होता है ।

३७ लोहड्यञ्चित

विधाय लोहडी पश्चादञ्चितं क्रियते द्रुतम् । 1399
यत्र तत्करण प्रोक्तं लोहड्यञ्चितसञ्ज्ञिकम् ।

जहाँ लोहडी करण करने के पश्चात् शीघ्रता से अञ्चित करण किया जाता हे वहाँ **लोहड्यञ्चित करण** होता है ।

३८ सूच्यन्त

करणे यत्र यत्रान्ते समसूच्यादि सूचिषु । 1400
एकं कुर्यात्तदा तत्तत्सूच्यन्तमिति कथ्यते ।

करण मे जहाँ-जहाँ अन्त मे समसूचि आदि सूचि-स्थानको मे से किसी एक को सम्पन्न किया जाता है, वहाँ-वहाँ **सूच्यन्त करण** होता है ।

अडतीस उत्प्लुतिकरणों का निरूपण समाप्त



अंगहार रेचक मण्डल प्रकरण / तेरह

अगहारो का निरूपण

अगहार (अग-विक्षेप)

[1]पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान् दृष्टादृष्टफलानपि । 1401
अङ्गहारान्प्रवक्ष्यामि नामतो लक्ष्मतस्तथा ।

पूर्वरग (नाटक आदि की आरम्भिक क्रिया) मे प्रयोग करने योग्य तथा दृष्ट एव अदृष्ट फल वाले अगहारो (अग-विक्षेपो) के नाम तथा लक्षणो का निरूपण किया जा रहा है ।

अङ्गानामुचिते देशे प्रापण सविलासकम् । 1402
मातृकोत्करसम्पाद्यमङ्गहारोऽभिधीयते ।

मातृका-समूह के योग से सम्पन्न होने वाले अगो को हाव-भाव के साथ समुचित स्थान पर पहुचाना **अगहार** कहलाता हे ।

यद्वा हारो हरस्यायं प्रयोगोऽङ्गैरिति स्मृतः । 1403
करणाभ्यां मातृका स्यात् कलापः करणैस्त्रिभिः ।
चतुर्भिः खण्डको ज्ञेयः संघातः पञ्चभिर्मतः । 1404
इति सङ्घविशेषेण संज्ञाभेदान्परे जगुः ।

अथवा, **हरस्य अयम् इति हार** इस व्युत्पत्ति के अनुसार हार का अर्थ है प्रयोग । अगो मे प्रयोग - यह अगहार शब्द का अर्थ है । दो करणो के योग से **मातृका** बनती है, तीन करणो के योग से **कलाप**, चार करणो के योग से **खण्डक**, और पाँच करणो के योग से **सघात** का निर्माण होता है । इस प्रकार अगो के समूह-विशेष के कारण अन्यान्य आचार्यों ने अगहारो के अनेक भेद बताये है ।

करणन्यूनताधिक्यं तेषां मेने मुनिः स्वयम् । 1405
द्वाभ्या त्रिचतुराभिर्वेत्येतद्वा शब्दसूचितम् ।

उन अगहारो मे करणो की न्यनता तथा अधिकता को स्वय भरत मुनि ने स्वीकार किया है । दो या तीन अथवा चार मातृकाओ के योग से अगहार का सम्पादन करना चाहिए, यह उन्होने शब्द द्वारा सूचित किया है ।

---

१ देखिए सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७९५–८१४ ।

अगहार के भेद

स्थिरहस्तोऽथ पर्यस्तः सूचीविद्धोऽपराजितः । 1406
वैशाखरेचितः पार्श्वस्वस्तिको भ्रमरोऽपरः ।
आक्षिप्तकः परिच्छिन्नो मदाद्विलसितस्ततः । 1407
आलीढाच्छुरितौ पार्श्वच्छेदसंज्ञोऽपसर्पितः ।
मत्ताक्रीडस्तथा विद्युद्भ्रान्तोऽमी षोडशोदिताः । 1408
चतुरस्रेण मानेनाङ्गहारा मुनिसत्तमैः ।

१ स्थिरहस्त, २ पर्यस्त, ३ सूचीविद्ध, ४ अपराजित, ५ वैशाखरेचित, ६ पार्श्वस्वस्तिक, ७ भ्रमर, ८ आक्षिप्तक, ९ परिच्छिन्न, १० मदविलसित, ११ आलीढ, १२ आच्छुरित, १३ पार्श्वच्छेद, १४ अपसर्पित, १५ मत्तक्रीड तथा १६ विद्युद्भ्रान्त—इन सोलह अगहारो को मुनिवरो ने चतुरस्र मान के हिसाब से बताया है ।

विष्कम्भापसृतौ (तो)मत्तस्खलितो गतिमण्डलः । 1409
अपविद्धश्च विष्कम्भोद्घट्टिताक्षिप्तरेचिताः ।
रेचितोऽर्धनिकुट्टश्च वृश्चिकापसृतस्ततः । 1410
अलातकः परावृत्तः परिवृत्तादिरेचितः ।
उद्वृत्तकश्च सम्भ्रान्तसंज्ञः स्वस्तिकरेचितः । 1411
षोडशेति त्र्यस्रमाना द्वात्रिंशदुभये मताः ।

१ विष्कम्भापसृत, २ मत्तस्खलित, ३ गतिमण्डल, ४ अपविद्ध, ५ विष्कम्भ, ६ उद्घट्टित, ७ आक्षिप्तरेचित, ८ रेचित, ९ अर्धनिकुट्ट, १० वृश्चिकापसृत, ११ अलातक, १२ परावृत्त, १३ परिवृत्तरेचित, १४ उद्वृत्तक, १५ सम्भ्रान्त और १६ स्वस्तिकरेचित—ये सोलह अगहार त्र्यस्रमान के हिसाब से बताये गये है । दोनो मानो के अगहारो को मिलाकर कुल बत्तीस अगहार होते है ।

करणव्रातसन्दर्भानन्त्यात्तेषामनन्तता । 1412
द्वात्रिंशत्ते तथाऽप्युक्ताः प्राधान्यविनियोगतः ।

करण-समूह के सन्दर्भो के अनन्त होने से अगहार अनन्त होते है । तो भी प्रधानता के हिसाब से बत्तीस बताये गये है ।

एकैकं करण कार्य कलया गुरुरूपया । 1413
सर्वेषामङ्गहाराणामित्याह करणाग्रणीः ।

गुरु रूप कला के क्रम से सभी अगहारो के एक-एक करण का निर्माण करना चाहिए, यह करणो के विशेषज्ञो का अभिमत है ।

१ **स्थिरहस्त**

चतुरस्र मान मे सोलह अगहार (१)

लीनं समनखं कृत्वा व्यंसित चात्र विच्युतौ । 1414
करौ कृत्वौज्झितालीढः प्रत्यालीढं व्रजेत्ततः ।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्यस्वस्तिकाक्षिप्तकान्यथ । 1415
नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।
करणैः स्थिरहस्तः स्याद्दशभि. शिववल्लभः । 1416
अङ्गहारेषु सर्वेषु प्रत्यालीढान्तमादितः ।
प्रयोक्तव्यमिति प्राहुः केचिन्नाट्यविशारदाः । 1417

१ **लीन**, २ **समनख**, तथा ३ **व्यंसित** करणो को करके दोनो हाथो को अलग-अलग करे, फिर आलीढ नामक स्थानक को छोडकर प्रत्यालीढ नामक स्थानक को प्राप्त करे, अनन्तर ४ **निकुट्टक**, ५ **ऊरूद्वृत्त** ६ **स्वस्तिक**, ७ **आक्षिप्त**, ८ **नितम्ब**, ९ **करिहस्त** और १० **कटीच्छिन्न**—कुल दस करणो को क्रमश करने से **स्थिरहस्त** अगहार बनता है, जो शिव को प्रिय है । कोई नाट्य-पण्डित कहते है कि सभी अगहारा मे आदि से प्रत्यालीढ तक सभी करणो का प्रयोग करना चाहिए ।

२ **पर्यस्तक**

तलपुष्पपुटं पूर्वमपविद्धं च वर्तितम् ।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्याक्षिप्तत्तोरोमण्डलान्यथ । 1418
नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।
दशभिः करणैरेभिः प्रोक्तः पर्यस्तको बुधैः । 1419

१ **तलपुष्पपुट**, २ **अपविद्ध**, ३ **वर्तित**, ४ **निकुट्टक**, ५ **ऊरूद्वृत्त**, ६ **आक्षिप्त**, ७ **उरोमण्डल**, ८ **नितम्ब**, ९ **करिहस्त** और १० **कटीच्छिन्न**—क्रमश इन दस करणो की रचना से **पर्यस्तक** अगहार का निर्माण करना चाहिए, ऐसा विद्वानो ने कहा है ।

३ सूचीविद्ध

अर्धसूच्यथ विक्षिप्तमावर्तं च निकुट्टकम् ।
ऊरूद्वृत्तमथाऽऽक्षिप्तमुरोमण्डलसंज्ञकम्] । 1420
करिहस्त कटीच्छिन्नं यत्रैतानि क्रमान्नव ।
सोऽङ्गहारोऽङ्गहारज्ञैः सूचीविद्धः प्रकीर्तितः ॥१३४३॥ 1421

१ अर्धसूची, २ विक्षिप्त, ३ आवर्त, ४ निकुट्टक, ५ ऊरूद्वृत्त, ६ आक्षिप्त, ७ उरोमण्डल, ८ करिहस्त ओर ९ कटीच्छिन्न—जिसमे ये नो करण प्रयुक्त होते है, उस अगहार को, अगहारो के ज्ञाताओ ने सूचीविद्ध कहा है ।

४ अपराजित

करणं दण्डपादाख्यं व्यंसितं च प्रसर्पितम् ।
ततो निकुट्टकं चार्धनिकुट्टाक्षिप्तके ततः ॥१३४४॥ 1422
उरोमण्डलसंज्ञं च करणं करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं च नवभिरेभि॰ स्यादपराजितः ॥१३४५॥ 1423

१ दण्डपाद, २ व्यसित, ३ असर्पित, ४ निकुट्टक, ५ अर्धनिकुट्ट, ६ आक्षिप्त, ७ उरोमण्डल, ८ करिहस्त ओर ९ कटिच्छिन्न—जिसमे इन नौ करणो की रचना से अपराजित अगहार का निर्माण होता है।

५ मदविलसित

मदस्खलितमत्तल्लितलसंस्फोटितानि चेत् ।
रचयेत् त्रिश्चतुः पञ्चकृत्वो वा चित्रितान्यथ ॥१३४६॥ 1424
निकुट्टोरूद्वृत्तके तु विदध्यात् करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं च सम्प्रोक्तो मदाद्विलसितस्तदा ॥१३४७॥ 1425

मदस्खलित, मत्तल्लि और तलसस्फोटित—इन करणो की तीन, चार या पाच बार रचना करके निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त, करिहस्त और कटिच्छिन्न करणो को करने से मदविलसित अगहार वनता है ।

६ मत्तक्रीड

भ्रमरं नूपुरं चैव भुजङ्गत्रासितं यदा ।
कृत्वा दक्षिणभागेन यत्र वैशाखरेचितम् ॥१३४८॥ 1426

आक्षिप्त च तथा छिन्नं वामतो भ्रमरं पुनः ।
नितम्बं करिहस्तं च कटिच्छिन्नं समाचरेत् ॥१३४९॥ 1427
तदाङ्गहारो दशभिरमीभिः करणैरसौ ।
मत्तक्रीडोऽथ गणनाभ्यासेन भ्रमरस्य सः । 1428
एकादशभिरादिष्टो बुधैः शङ्करशङ्करः ॥१३५०॥

जब दक्षिण भाग से १ भ्रमर, २ नूपुर, ३ भुजगत्रासित, ४ वैशाखरेचित, ५ आक्षिप्त तथा ६ **छिन्न करणो** की रचना करके वामभाग से पुन ७ **भ्रमर**, ८ **नितम्ब**, ९ **करिहस्त** तथा १० **कटिच्छिन्न**—इन दस करणो की रचना की जाती हे, तब **मत्तक्रीड** अगहार बनता है। यहाँ विद्वानो का कहना है कि **भ्रमर** की एक बार आर गणना करने से ११ करणो मे **मत्तक्रीड** अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय हे।

७ भ्रमर

नूपुराक्षिप्तके छिन्नसूचीनी च नितम्बकम् । 1429
करिहस्त च करणमुरोमण्डलसंज्ञकम् ।
कटिच्छिन्नं च करणैरमीभिर्भ्रमरो भवेत् ॥१३५१॥ 1430

१ **नूपुर**, २ **आक्षिप्तक**, ३ **छिन्नसूचि**, ४ **नितम्ब**, ५ **करिहस्त**, ६ **उरोमण्डल** ओर ७ **कटिच्छिन्न**—इन करणो की रचना से **भ्रमर** अगहार बनता है।

८ विद्युद्भ्रान्त

वामतश्चेदर्धसूचि विद्युद्भ्रान्तं तु सव्यतः ।
पुनरेतद् द्वयं चाङ्गविपर्यासाद् विधाय च ॥१३५२॥ 1431
अथाच्छिन्नमतिक्रान्तं वामाङ्गेऽथ समा[च]रेत् ।
तला(?लता)ख्यं वृश्चिकं पश्चात् कटिच्छिन्नमिति क्रमात् ॥१३५३॥
षड्भिस्तु करणैरेभिर्विद्युद्भ्रान्तो मतस्तदा । 1432
आद्यद्विकरणाभ्यासगणने स मतोऽष्टभिः ॥१३५४॥ 1433

वामभाग से **अर्धसूचि**, दक्षिण भाग से **विद्युद्भ्रान्त** और पुन इन दोनो को अगपरिवर्तन द्वारा सम्पन्न करके वामभाग मे **छिन्न** तथा **अतिक्रान्त** करणो की रचना करे, पश्चात् **लतावृश्चिक** और **कटिच्छिन्न** को क्रमश

सम्पन्न करे, इन छह करणो से विद्युद्भ्रान्त अगहार बनता है। यहाँ प्रारभ के दो करणो को दुहरा देने से गणना मे आठ करण होते है।

९ परिच्छिन्न

कृत्वा समनखं यत्र छिन्नं सम्भ्रान्तके ततः।
वामाङ्गे भ्रमरं चार्धसूचि चेद् रचयेत् ततः ॥१३५५॥ 1434
अतिक्रान्तं भुजङ्गाद्यं त्रासितं करिहस्तकम्।
कटिच्छिन्नं च कुर्यात् स परिच्छिन्नस्तदा मतः ॥१३५६॥ 1435

जहाँ **समनख** करण को करके **छिन्न** तथा **सम्भ्रान्तक** की रचना की जाय, वाम अग मे **भ्रमर** तथा **अर्धसूचि** को बनावे और पश्चात् **अतिक्रान्त, भुजगत्रासित, करिहस्त** ओर **कटिच्छिन्न** का निर्माण किया जाय, तो **परिच्छिन्न** अगहार बनता है।

१० पार्श्वच्छेद

कुट्टितं वृश्चिकाद्यं चेदूर्ध्वजानु च नूपुरम्।
आक्षिप्तस्वस्तिकं कृत्वा परिवृत्ति त्रिकस्य च ॥१३५७॥ 1436
उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बकरिहस्तके।
कटिच्छिन्नं च रचयेत् पार्श्वच्छेदस्तदा मतः ॥१३५८॥ 1437

पहले **कुट्टित, वृश्चिक, ऊर्ध्वजानु, नूपुर** और **आक्षिप्तस्वस्तिक** करणो को करके कटिभाग को घुमाकर पश्चात् **उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न** करणो की रचना की जाय, तो **पार्श्वच्छेद** अगहार बनता है।

११ अपसर्पित

अपक्रान्तं व्यंसितं च पाण्योरेवं यदा क्रिया।
करिहस्तकमर्धाद्यं सूचि विक्षिप्तकं ततः ॥१३५९॥ 1438
कटिच्छिन्नं च करणमुरूद्वृत्तमतः परम्।
आक्षिप्तं करि[ह]स्तं च कटिच्छिन्नं पुनस्तदा ॥१३६०॥ 1439
सप्तभिः करणैरेभिरपसर्पितको मतः।
अन्त्यद्विकरणाभ्यासगणने नवभिर्मतः ॥१३६१॥ 1440

पहले **अपक्रान्त** आर **व्यसित** हाथो की रचना की जाय, तत्पश्चात् **करिहस्त, अर्धसूचि, विक्षिप्तक, कटिच्छिन्न, ऊरूद्वृत** आर **आक्षिप्त** को किया जाय, पुन **करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न** करण धारण किया जाय, तो **अपसर्पितक** अगहार होता ह । **करिहस्त** ओर **कटिच्छिन्न** को दोहरा देने से यहाँ करणा की सख्या नौ (?दस) हो जाती हे ।

१२ आक्षिप्त

नूपुर यत्र विक्षिप्तमलातक्षिप्तके तत. ।
उरोमण्डलक चाथ नितम्ब करिहस्तकम् । 1441
कटिच्छिन्नमपि ज्ञेयोऽमीभिराक्षिप्तको बुधैः ।।१३६२।।

जहाँ **नूपुर, विक्षिप्त, अलात, क्षिप्तक, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त** आर **कटिच्छिन्न** करणो की क्रमश रचना की जाय, वहाँ विद्वानो ने **आक्षिप्त** अगहार बताया हे ।

१३ आच्छुरित

नूपुरं भ्रमरं चाथ व्यसित तदनन्तरम् । 1442
अलातक नितम्ब च सूच्यथो करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्न चाङ्गहारोऽमीभिराच्छुरिताभिधः ।।१३६३।। 1443

नूपुर, भ्रमर, व्यसित, अलात, नितम्ब, सूचि, करिहस्त तथा **कटिच्छिन्न** नामक करणा की क्रमश रचना से **आच्छुरित** अगहार बनता है ।

१४ आलीढ

विधाय व्यंसित वामे निकुट्टं नूपुरं यदा ।
अन्यतोऽलातमाक्षिप्तमुरोमण्डलकं तथा । 1444
करिहस्तकटिच्छिन्ने कुर्यादालीढकस्तदा ।।१३६४।।

जब वाम भाग मे **व्यसित, निकुट्ट** तथा **नूपुर** नामक करण किये जाते ह ओर दक्षिण भाग मे **अलात, आक्षिप्त, उरोमण्डलक, करिहस्त** ओर **कटिच्छिन्न** नामक करण रचे जाते ह, तब **आलीढ** अगहार बनता है ।

१५ वैशाखरेचित

पार्श्वयुग्मेन वैशाखरेचित यत्र नूपुरम् । 1445
भुजङ्गत्रासितोन्मत्तो मण्डलस्वस्तिकं ततः ।।१३६५।।

निकुट्टोरूद्वृत्ताकेचितिक्षप्तोरोमण्डले तत. । 1446
करिहस्त कटिच्छिन्नमित्येभिर्दशभि· क्रमात् ।
वैशाखरेचितोऽसौ स्यादङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६६॥ 1447

जहाँ दोनो पार्श्वो मे क्रमश **वैशाखरेचित**, **नूपुर**, **भुजगत्रासित**, **उन्मत्त**, **मण्डलस्वस्तिक**, **निकुट्ट** **ऊरूद्वृत्त**, **उरोमण्डल**, **करिहस्त** और **कटिच्छिन्न**––इन दश करणो की रचना की जाय, वहाँ **वैशाखरेचित** अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

१६ पार्श्वस्वस्तिक

दिक्स्वस्तिकमथैकेन गात्रेणार्धनिकुट्टकम् ।
दिक्स्वस्तिक पुनरथान्याङ्गेनार्धनिकुट्टकम् ॥१३६७॥ 1448
ततोऽपविद्धोरूद्वृत्ताक्षिप्तकानि नितम्बकम् ।
करिहस्तकटीछिन्नै करणैरष्टभिः क्रमात् । 1449
एभिः स्यादङ्गहारोऽय पार्श्वस्वस्तिकसज्ञकः ॥१३६८॥

एक अग से **दिक्स्वस्तिक**, **अर्धनिकुट्टक**, पुन **दिक्स्वस्तिक**, फिर अन्य अग से **अर्धनिकुट्टक**, तदनन्तर **अपविद्ध**, **ऊरूद्वृत्त**, **आक्षिप्त**, **नितम्ब**, **करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न**–क्रमश इन आठ करणो की रचना की जाय, तो वहाँ **पार्श्वस्वस्तिक** अगहार सम्पन्न होता है ।

त्र्यस्र मान मे सोलह अगहार (२)

१ अपविद्ध

अपविद्धं ततः सूचीविद्धमुद्वेष्टिते करे । 1450
चार्या बद्धाख्यया सार्ध भ्रामयेत् चेत् त्रिक ततः ॥१३६९॥
ऊरूद्वृत्तमुरः पूर्व मण्डलं च तत. परम् । 1451
पञ्चमं तु कटीच्छिन्नमपविद्धस्तदोदितः ॥१३७०॥

यदि **उद्वेष्टित** हाथ मे **अपविद्ध** तथा **सूचीविद्ध** करणो को रचकर **बद्धा** नामक चारी के साथ कटिदेश को घुमाया जाय, उसके बाद **ऊरूद्वृत्त**, **उरोमण्डल** तथा पाँचवे **कटीच्छिन्न** करण की रचना की जाय, तो वहाँ **अपविद्ध** **अगहार बनता है ।**

२ परावृत्त

जनितं दक्षिणाङ्गेन शक्टास्यमत. परम् । 1452
अलातभ्रमरे कुर्यात् वाममङ्गे निकुट्टितम् ।।१३७१।।
करिहस्त कटीच्छिन्न क्रमादेतानि यत्र षट् । 1453
परावृत्तः सोऽङ्गहारः सदा शङ्करशङ्कर ।
नमनोन्नमन प्रोक्त गात्रस्येह निकुट्टितम् ।।१३७२।। 1454

यदि दाहिने अग मे जनित, ओर बाये अग से शक्टास्य, अलात भ्रमर करणो की रचना की जाय, फिर **निकुट्टित** करके **करिहस्त** आर **कटीच्छिन्न**—क्रमश इन (मब मिलाकर) छह करणो के निर्माण मे **परावृत्त** अगहार सम्पन्न होता ह, जो सदा शकर को सन्तुष्ट करता ह । अग का झुकाना ओर उठाना यहा **निकुट्टित** कहलाता है ।

३ रेचित

आदौ स्वस्तिकपूर्व स्याद् रेचित तदनन्तरम् ।
अर्धाद्य रेचित वक्षः स्वस्तिकोन्मत्ताके तत. ।।१३७३।। 1455
आक्षिप्तरेचितं चार्धमत्तल्लिकरण ततः ।
रेचकाद्यं निकुट्ट च भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ।।१३७४।। 1456
नूपुरं च ततः कृत्वा कुर्याद् वैशाखरेचितम् ।
भुजङ्गाञ्चितकं दण्डरेचितं करण ततः ।।१३७५।। 1457
चक्रमण्डलकं पश्चाद् वृश्चिकाद्यं तु रेचितम् ।
व्यसित च विवृत्त च विनिवृत्तविवर्तिते ।।१३७६।। 1458
गरु[ड] प्लुतसज्ञं च करणं ललित तथा ।
मयूराद्यं ततः पश्चात् सर्पित स्खलितं तथा ।।१३७७।। 1459
प्रसर्पितं तलाद्य तु संघट्टितमतः परम् ।
वृषभक्रीडितं चाथ लोलित चेति विंशतिः ।।१३७८।। 1460
या षड्भिरधिकामीषां करणानामुदीरिता ।
रचयित्वा चतुर्दिक्षु भागैस्त विषमैर्नटः ।।१३७९।। 1461

परिवृत्तिप्रकारेण ततः प्रान्ते समाश्रयेत् ।
उरोमण्डलक पाश्चात् कटिच्छिन्नं स रेचितः ॥१३८०॥ 1462

पहले स्वस्तिकरेचित, पश्चात् अर्धरेचित, तदनन्तर वक्ष स्वस्तिक, उन्मत्त, आक्षिप्तरेचित, अर्धमत्तल्लि, रेचकनिकुट्टक, भुजगत्रस्तरेचित, नूपुर, वैशाखरेचित, भुजगाञ्चित, दण्डरेचित, चक्रमण्डल, वृश्चिकरेचित, व्यंसित, विवृत्त, विनिवृत्त , विवर्तित, गरुडप्लुत, मयूरललित, सर्पित, स्खलित, प्रसर्पित, तलसंघट्टित, वृषभक्रीडित और लोलित--इन छब्बीस करणो को क्रमश चारो दिशाओ मे रचकर नर्तक इनके विषम भाग करके घुमाते हुए किनारे मे ले आये । तदुपरान्त उरोमण्डल और कटिच्छिन्न करणो की रचना करे, ऐसा करने से रेचित नामक अगहार बनता है ।

४ आक्षिप्तरेचित

रचयेच्चातुरी योगाद् यत्र स्वस्तिकरेचितम् ।
पृष्ठाद्य स्वस्तिक चाथ दिक्स्वस्तिकमतः परम् ॥१३८१॥ 1463
कटीच्छिन्न सम पश्चाद् घूर्णित भ्रमर[त] तः ।
रेचितं वृश्चिकाद्यं च तत पार्श्वनिकुट्टकम् । 1464
उरोमण्डलसंज्ञं च करणं सन्नतं ततः ।
सिहाकर्षितक नामापसर्पितमथात्र तु ॥१३८२॥ 1465
वक्षःस्वस्तिकमिच्छन्ति केचिन्नृत्तमनीषिणः ।
दण्डपक्षं ललाटाद्यं तिलकं करणं ततः ॥१३८३॥ 1466
विलासित तलाद्यं च निशुम्भितमतः परम् ।
विद्युद्भ्रान्तं च करणं गजक्रीडितकं ततः ॥१३८४॥ 1467
नितम्ब विष्णुक्रान्तोरूद्वृत्ताक्षिप्तमतः परम् ।
उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बं करिहस्तकम् ॥१३८५॥ 1468
कटीच्छिन्नं भवेत् नो वा सा स्यादाक्षिप्तरेचितः ।
पञ्चविशतिसंख्याकैः करणैः प्राक्तने मते ॥१३८६॥ 1469
अनावृत्त्या नितम्बस्य तथोरोमण्डलस्य च ।
आवृत्त्या त्वनयोरेव सप्तविशतिभिर्भवेत् ॥१३८७॥ 1470

ये वक्षःस्वस्तिककटीच्छिन्ने नेच्छन्ति सूरयः ।
तन्मतेऽपि तदभ्यासात् पञ्चविंशतिभिर्भवेत् ॥१३८८॥ 1471

पहले चतुरता से स्वस्तिकरेचित की रचना की जाय, उसके बाद पृष्ठस्वस्तिक, दिक्स्वस्तिक, कटीच्छिन्न, घूर्णित, भ्रमर, वृश्चिकरेचित, पार्श्वनिकुट्टक, उरोमण्डल, सन्नत, सिंहाकर्षित, नागापसर्पित, वक्ष स्वस्तिक, दण्डपक्ष, ललाटतिलक, निशुम्भित, विद्युद्भ्रान्त, गजक्रीडित, नितम्ब, विष्णुक्रान्त, ऊरूद्वृत्त, आक्षिप्त, ऊरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटीच्छिन्न अथवा उसके बिना भी--इन पचीस करणो मे आक्षिप्तरेचित अगहार बनता है । किन्तु यह पचीस सख्या तब होगी जब नितम्ब तथा ऊरोमण्डल को दोहराया नही जाएगा । इनको दोहरा देने से करणो की सख्या सत्ताईस हो जाती है । जो विद्वान् वक्ष स्वस्तिक तथा कटीच्छिन्न करणो को यहाँ नही चाहते है, उनके मत मे भी उक्त दोनो करणो को दोहरा देने से पच्चीस सख्या हो जाती है ।

५ उद्वृत्त

विधाय नूपुरं यत्र भुजङ्गाञ्चितकं ततः ।
गृध्रावलीनकं पश्चाद्विक्षिप्तोद्वृत्तके तथा ॥१३८९॥ 1472
एकाङ्गेन ततः कुर्यादूरूद्वृत्त नितम्बकम् ।
लताद्यं वृश्चिकं चाथ कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ॥१३९०॥ 1473
नवभिः करणैरेभिरुद्वृत्तोऽसौ मतो बुधैः ।
विक्षिप्तोद्वृत्तयोरेषोऽभ्यासेन द्व्यधिको भवेत् ॥१३९१॥ 1474

पहले नूपुर करण करके भुजगाञ्चित, गृध्रावलीनक, विक्षिप्त तथा उद्वृत्त करणो की रचना की जाय, फिर एक अग से ऊरूद्वृत्त, नितम्ब, लतावृश्चिक और कटीच्छिन्न--इन नौ करणो को क्रमश किया जाय, तो उद्वृत्त अगहार बनता है । यहाँ विक्षिप्त और उद्वृत्त करणो को दोहरा देने से दो अधिक करण हो जाते है ।

६ उद्घट्टित

निकुट्टं करणं पश्चादुरोमण्डलसंज्ञकम् ।
नितम्बकरिहस्ते च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् । 1475
पञ्चभिः करणैरेभिरुद्घट्टित उदीरितः ॥१३९२॥

निकुट्ट, **उरोमण्डल**, **नितम्ब**, **करिहस्त** और **कटीच्छिन्न**––इन पाँच करणो को क्रमश करने से **उद्घट्टित** अगहार बनता है ।

७ अलात

स्वस्तिकं करणं पूर्वमथ द्विव्यसितं ततः । 1476
अलात चोर्ध्वजानु स्यान्निकुञ्चितमतः परम् ॥१३६३॥
अर्धसूच्यथ विक्षिप्तोद्वृत्तकाक्षिप्तकानि च । 1477
करिहस्तं कटीच्छिन्नं भवन्त्येतान्यलातके ।
एकादश तथाभ्यासगणने व्यंसितेऽधिकम् ॥१३६४॥ 1478

पहले **स्वस्तिक** करण, पश्चात् दो **व्यसित**, **अलात**, **ऊर्ध्वजानु**, **निकुञ्चित**, **अर्धसूचि**, **विक्षिप्त**, **उद्वृत्त**, **आक्षिप्त**, **करिहस्त** और **कटीच्छिन्न**––ये ग्यारह करण क्रमश **अलात** अगहार मे प्रयुक्त होते है । यहाँ **व्यसित** को दो बार दोहरा देने से करणो की सख्या एक अधिक अर्थात् बारह हो जाती है ।

८ सम्भ्रान्त

विक्षिप्ताञ्चितके दण्डपूर्व सूचि ततः परम् ।
गङ्गावतरणं चाथ सूच्यथो दण्डपादकम् ॥१३६५॥ 1479
वामाङ्गरचितं पश्चाच्चतुरं भ्रमरं ततः ।
नूपुराक्षिप्तके चार्धस्वस्तिकं च नितम्बकम् ॥१३६६॥ 1480
करिहस्तमुरः पूर्व मण्डलं कटिपूर्वकम् ।
छिन्नं चेति क्रमादेभिः पञ्चाद्यैर्दशभिर्मतः । 1481
सम्भ्रान्तनामको धीरैरङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६७॥

विक्षिप्त, **अञ्चित**, **दण्डसूचि**, **गगावरण**, **सूचि**, **दण्डपाद**, वाम अग मे रचे जायँ, तत्पश्चात् **चतुर**, **भ्रमर**, **नूपुर**, **आक्षिप्त**, **अर्धस्वस्तिक**, **नितम्ब**, **करिहस्त**, **उरोमण्डल** और **कटिच्छिन्न**––इन पन्द्रह करणो को क्रमश प्रयुक्त किया जाय, तो **सम्भ्रान्त** अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

९ अर्धनिकुट्ट

नूपुरं करणं पूर्व विवृत्तं तदनन्तरम् । 1482
निकुट्टार्धनिकुट्टार्धरेचितानि ततः परम् ॥१३६८॥

रेचकाद्यं निकुट्टं च करणं ललिताभिधम् । 1483
वैशाखरेचितं [पश्चात् चतुरं दण्डरेचितम्] ।।१३९९।।
वृश्चिकाद्य कुट्टित च तत· पार्श्वनिकुट्टकम् । 1484
सम्भ्रान्तोद्घट्टिताख्योरोमण्डलानि तत. परम् ।।१४००।।
करिहस्तकटिच्छिन्ने यत्रैतानि क्रमादसौ । 1485
भवेदर्धनिकुट्टाख्यस्त्वङ्गहार· शिवप्रिय· ।।१४०१।।

पहले नूपुर करण, पश्चात् निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, अर्धरेचित, रेचकनिकुट्ट, ललित, वैशाखरेचित, चतुर, दण्डरेचित, वृश्चिककुट्टित, पार्श्वनिकुट्टक, सभ्रान्त, उद्घट्टित, उरोमण्डल, करिहस्त और कटिच्छिन्न––ये करण क्रमश, शकर के प्रिय, अर्धनिकुट्ट नामक अगहार मे प्रयुक्त होते है ।

१० परिवृत्तरेचित

नितम्बं स्वस्तिकाद्यं तु रेचितं तदनन्तरम् । 1486
विक्षिप्ताक्षिप्तकं चाथ लतावृश्चिकसञ्ज्ञकम् ।।१४०२।।
उन्मत्तकरिहस्ते च भुजङ्गत्रासित तत. । 1487
आक्षिप्तं करिहस्तं च नितम्बं च नवेत्यथ ।।१४०३।।
भ्रमरेण सहेमानि परिवृत्त्याश्रयेत् ततः । 1488
स्थित्वा दिगन्तरास्यस्तु व्यावर्त्येतरयोर्दिशोः ।।१४०४।।
करिहस्तं कटिच्छिन्नं विदध्यात् पूर्वदिक् स्थितः । 1489
यत्रासो परिवृत्ताद्यो रेचितः परिकीर्तितः ।।१४०५।।
गङ्गावतरणं त्यक्त्वा तथा नागापसर्पितम् । 1490
परिवृत्तविधिर्ज्ञेयः सर्वत्रैवाङ्गहारकैः ।।१४०६।।

नितम्ब, **स्वस्तिकरेचित**, **विक्षिप्त**, **आक्षिप्त**, **लतावृश्चिक**, **उन्मत्त**, **करिहस्त**, **भुजगत्रासित**, **आक्षिप्त**, **करिहस्त** ओर **नितम्ब**––इन करणो को **भ्रमर** के साथ घुमाकर अन्य दिशा मे मुख करके अवस्थित हो, फिर अन्य दो दिशाओ मे घूमकर पूर्व दिशा मे खडा होकर **करिहस्त** एव **कटिच्छिन्न** करणो की रचना करे, ऐसा करने से **परिवृत्तरेचित** अगहार बनता है । **गगावतरण** और **नागापसर्पित** नामक करणो को छोडकर सर्वत्र अगहार करने वालो को **परिवृत्त** का प्रकार जान लेना चाहिए ।

११ स्वस्तिकरेचित

वैशाखरेचितं पूर्वं वृश्चिकं चाथ तद् द्वयम् । 1491
सव्यसव्येतराङ्गाभ्यां निकुट्टं सलताकरम् ॥१४०७॥
तुर्यं यत्र कटीच्छिन्नमसौ स्वस्तिकरेचितः । 1492
अभ्यासादाद्ययोरत्र करणानि भवन्ति षट् ।
स्वस्तिकापसृत केचिदिममेव प्रचक्षते ॥१४०८॥ 1493

पहले **वैशाखरेचित**, पश्चात् **वृश्चिक**, अनन्तर दाहिने-बायें अगों से **लताकर** हाथ के साथ **निकुट्ट** और चौथे **कटीच्छिन्न** नामक करणों के करने से **स्वस्तिकरेचित** अगहार बनता है। यहाँ **वैशाखरेचित** और **वृश्चिक** को दोहरा देने से छह करण हो जाते है। कोई आचार्य इसी अगहार को **स्वस्तिकापसृत** कहते है।

१२ विष्कम्भापसृत

निकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे कृत्वा पार्श्वद्वयेन चेत् ।
भुजङ्गत्रासितं कुर्याद् भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१४०९॥ 1494
आक्षिप्तकमुरःपूर्वं मण्डलं च लताकरौ ।
सप्तमं तु कटीच्छिन्नं विष्कम्भापसृतस्तदा ॥१४१०॥ 1495

दोनो पार्श्व से **निकुट्ट** तथा **अर्धनिकुट्ट** नामक करणो को करके **भुजगत्रासित**, **भुजगत्रस्तरेचित**, **आक्षिप्त**, **उरोमण्डल**, दोनो **लताकर** नामक हाथ और सातवें **कटीच्छिन्न** नामक करण के करने से **विष्कम्भापसृत** अगहार बनता है।

१३ विष्कम्भक

निकुट्टकं विधायाथ निकुञ्चितमथाञ्चितम् ।
ऊरूद्वृत्तकमप्यर्धनिकुट्टं तदनन्तरम् ॥१४११॥ 1496
भुजङ्गत्रासितं पाणिमुद्वेष्ट्य च भ्रमरं ततः ।
करिहस्तकटीच्छिन्ने कुर्याद् विष्कम्भकस्तु स. ॥१४१२॥ 1497

निकुट्टक करण को करने के पश्चात् **अञ्चित**, **ऊरूद्वृत्त**, **अर्धनिकुट्ट** और **भुजगत्रासित** करणो की रचना की जाय, अनन्तर एक हाथ को **उद्वेष्टित** करके **भ्रमर**, **करिहस्त** तथा **कटीच्छिन्न** करणो को बनाया जाय, तो **विष्कम्भक** अगहार होता है।

१४ गतिमण्डल

मण्डलस्वस्तिकं त्वाद्यं नूपुरोन्मत्तके तत ।
उद्घट्टित च मत्तल्ल्याक्षिप्तोरोमण्डलान्यथ । 1498
कटीच्छिन्नममीभि स्यादष्टभिर्गतिमण्डलः ।।१४१३।।

मण्डलस्वस्तिक, नूपुर, उन्मत्त, उद्घट्टित, मत्तल्लि, आक्षिप्त उरोमण्डल ओर कटीच्छिन्न--इन आठ करणो के क्रमश प्रयोग से **गतिमण्डल** अगहार बनता ह ।

१५ वृश्चिकापसृत

स्याल्लतावृश्चिकं पूर्व यत्र पश्चान्निकुञ्चितम् । 1499
मत्तल्लि च नितम्बं च करिहस्तं ततः परम् ।
कटीच्छिन्नं षष्ठमसौ वृश्चिकापसृतो भवेत् ।।१४१४।। 1500

लतावृश्चिक, निकुञ्चित, मत्तल्लि, नितम्ब, करिहस्त ओर छठा कटीच्छिन्न--इन करणो की क्रमश रचना से **वृश्चिकापसृत** अगहार बनता है ।

१६ मत्तस्खलित

मत्ताल्ल्यथो गण्डसूचि ततो लीनापविद्धके ।
तलसंस्फोटितं चाथ करिहस्तमतः परम् । 1501
कटीच्छिन्नं क्रमान्मत्तास्खलितः सप्तभिर्भवेत् ।।१४१५।।

मत्तल्लि, गण्जसूचि, लीन, अपविद्ध, तलसस्फोटित, करिहस्त ओर कटीच्छिन्न--इन सातो करणो को क्रमश करने से **मत्तस्खलित** अगहार बनता हे ।

करणोत्करसन्दर्भानन्त्यादेतदनन्तता । 1502
यद्यप्यस्ति तथाप्येते समासात् समुदीरिताः ।।१४१६।।

करण-समूह के सन्दर्भ से अगहारो की सख्या अनन्त हो जाती हे, फिर भी यहाँ उनका सक्षेप मे निरूपण किया गया हे ।

दृष्टादृष्टफला दृष्टनियोगा मुख्यभावतः । 1503
सर्वत्रैवाङ्गहारेषु कलया गुरुरूपया ।।१४१७।।

योज्यं करणमेकैकमिति तज्ज्ञाः [प्रचक्ष] ते । 1504
अङ्गेषु पूर्वरङ्गस्य तथा चोत्थापनादिषु ॥१४१८॥
मृदङ्गप्रमुखैर्वाद्यैर्लयतालानुगामिभिः । 1505
वर्धमानासारितेषु पाणिकागीतिकादिषु ॥१४१९॥
पुरुषैरङ्गहारास्ते परं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिभिः । 1506
प्रयोक्तव्याः शिवस्याग्रे यथाविधि मनीषिभि. ॥१४२०॥

अगहार मुख्य भाव से **दृष्टफल** (जिनके परिणाम देखे गये हो), **अदृष्टफल** (जिनके परिणाम देखे न गये हो) ओर **दृष्टनियोग** (जिनकी प्रवृत्ति देखी गई हो) होते हे । सभी जगह अगहरो मे गुरुरूप कला के द्वारा एक-एक करण की योजना करनी चाहिए, ऐसा उसके विशेषज्ञ कहते हे । कल्याण चाहने वाले मनीषी पुरुष लय आर ताल का अनुगमन करने वाले मृदग आदि वाद्यो के द्वारा **वर्धमान, आसारित** और **पाणिका गीत** आदि के अवसर पर शकर के आगे उन अगहारो का विधिपूर्वक प्रयोग करे ।

बत्तीस अगहारो का निरूपण समाप्त ।



चार प्रकार के रेचको का निरूपण

अथाहं रेचकान् वक्ष्ये चतुरान् मुनिसम्मतान् । 1507
पाणिकण्ठकटीपादविशेषेणसमुद्भवान् ॥१४२१॥

अब, भरत मुनि के अभीष्ट हस्त, कण्ठ, कटि ओर पाद विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के रेचको का निरूपण किया जाता है ।

१ पाणिरेचक

त्वरया परितो भ्रान्ति यदा स्याद्धसपक्षयोः । 1508
पर्यायेण तदा धीरैरादिष्टः पाणिरेचकः ॥१४२२॥
अथवा स्यादसौ पाणेर्विरलप्रसृताङ्गुलेः । 1509

यदि हसपक्ष मुद्रा मे दोनो हाथो को बारी-बारी मे शीघ्रतापूर्वक चारो ओर घुमाया जाय, तो धीर पुरुषो ने उसे **पाणिरेचक** कहा है। अथवा, विरल (अलग-अलग) तथा फैली हुई उगलियों वाले हाथ को तिरछा घुमाया जाय, तो वह (भी) **पाणिरेचक** कहलाता है।

२ कण्ठरेचक

तिर्यग्भ्रान्तिरथो यः स्यात् कण्टस्य विधुतभ्रमः ॥१४२३॥
स कण्ठरेचकः प्रोक्तः कण्ठरेचककोविदैः । 1510

यदि कण्ठ को तिर्यक् रूप मे कम्पित करके घुमा दिया जाय, तो कण्ठरेचकवेत्ताओ ने उसे **कण्ठरेचक** कहा है।

३ कटिरेचक

सर्वतो भ्रमणात् कट्याः कथित कटिरेचकः ॥१४२४॥

यदि कटि को चारो ओर घुमाया जाय, तो उसे **कटिरेचक** कहा जाता है।

४ पादरेचक

या त्वन्तर्बहिरङ्गुष्ठाग्रस्य पार्ष्णेर्निरन्तरा । 1511
नमनोन्नमनोपेता गति. सा पादरेचकः ॥१४२५॥

यदि अँगूठे के अग्रभाग तथा एडी के बाहर-भीतर निरन्तर रूप से झुकने-उठने की गति की जाय, तो उसे **पादरेचक** कहते है।

धीरधुर्योऽशोकमल्लश्चतुरश्चतुरोदितान् । 1512
रेचकांश्चतुरोऽवोचज्जितारातिर्महीपतिः ॥१४२६॥

धीराग्रणी, चतुर, शत्रुजयी महाराज अशोकमल्ल ने, बुद्धिमान् व्यक्तियो द्वारा कथित, (उक्त प्रकार से) चार रेचकों का निरूपण किया है।

चार प्रकार के रेचको का निरूपण समाप्त।

●

मण्डलों का निरूपण

मण्डल (गति) के भेद

[1]अतिक्रान्तं वामविद्धं क्रान्तं ललितसञ्चरम् । 1513
सूचीविद्धमलातं च [विचित्रं] विहृतं तथा ॥१४२७॥
ललितं दण्डपादं च दशोद्दिष्टानि सूरिभिः । 1514
मण्डलान्यान्तरिक्षाणीति–

विद्वानो ने आकाशगत मण्डल के दस भेद वताये है १ अतिक्रान्त, २ वामविद्ध, ३ क्रान्त, ४ ललितसञ्चर, ५ सूचीविद्ध, ६ अलात, ७ विचित्र ८ विहृत ९ ललित और १० दण्डपाद।

–अथ भौमान्यनुक्रमात् ॥१४२८॥ 1515
भ्रमरं शकटास्यं च पिष्ठकुट्टमथाड्डितम् ।
समोत्सरितमावर्तमेलकाक्रीडित तदा ॥१४२९॥ 1516
आस्कन्दितं चाषगतमध्यर्धमिति सूरिभिः ।
दशोद्दिष्टान्यथामीषां लक्ष्माणि व्याहरे क्रमात् ॥१४३०॥ 1517

विद्वानो ने भूमिगत मण्डल के दस भेदो का क्रमश इस प्रकार उल्लेख किया है १ भ्रमर, २ शकटास्य, ३ पिष्टकुट्टक, ४ अड्डित, ५ समोत्सरित, ६ आवर्त, ७ एलकाक्रीडित, ८ आस्कन्दित, ९ चाषगति और १० अध्यर्ध। अब क्रमश उनके लक्षण-विनियोग का निरूपण किया जा रहा है।

दस आकाशगत मण्डल (१)

१ अतिक्रान्त

जनितो दक्षिणः पादः शकटास्यः स एव च ।
अथालातो भवेद् वामः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥१४३१॥ 1518
अथ वामो भवेत् सूची स एव भ्रमरस्तथा ।
अथ सव्योऽड्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातोथ चेदुभौ ॥१४३२॥ 1519
चरणौ छिन्नकरणमाश्रितौ तदनन्तरम् ।
वामाङ्गनिर्मिता वाथ भ्रमरी यत्र जायते ॥१४३३॥ 1520

अथातिक्रान्तको वामो दण्डपादः परस्तदा ।
तन्मण्डलमतिक्रान्तं समवोचन् विचक्षणाः ।।१४३४।। 1521

दाहिना पैर **जनित** तथा **शकटास्य** करणो मे अवस्थित हो और बायाँ पैर **अलात** करण बना हो, फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** तथा बायाँ पैर **सूची** और **भ्रमर** बना हो, पुन दाहिना पैर **उद्वृत्त** और बायाँ पैर **अलात** हो, दोनो चरण **छिन्नकरण** का सहारा लिये हो, तदनन्तर वाम अग मे **भ्रमरी** नामक चारी की रचना की जाय, फिर बायाँ पैर **अतिक्रान्त** करण और दाहिना पैर **दण्डपाद** बनाया जाय, तो ऐसी क्रिया को विद्वानो ने **अतिक्रान्त** आकाशमण्डल कहा है ।

[च[1]मत्काराय चारीणामानुपूर्व्येण या क्रिया ।
तन्मण्डलमिति प्रोक्तमखण्डमतिशालिभिः । 1522

चमत्कार उत्पन्न करने के लिए चारियो को क्रमश क्रियान्वित करना ही मण्डल कहलाता है, ऐसा विद्वानो का मत है ।

भौममाकाशिकं चेति तत्पुनर्द्विविधं भवेत् ।
प्राचुर्याद्भौमचारीणां भौममण्डलमुच्यते । 1523
आकाशचारी बाहुल्यादाकाशिकमिति स्मृतम् ।
भौमाकाशिकभेदानामुद्देशोऽत्र विधीयते । 1524

फिर उस मण्डल के दो भेद है १ **भौम** और २ **आकाशिक** । अधिकता के कारण भौम चारियो को भौममण्डल और आकाशचारियो को आकाशिकमण्डल कहा गया है। यहा भोम ओर आकाशिक नाम-भेद से उद्देश्य का विधान किया गया है ।

भ्रमरं च तदावर्तमास्कन्दितमथाड्डितम् ।
समोत्सरितमत्यर्धमेलकाक्रीडितं तथा । 1525
शकटास्यं पिष्टकुष्टं ततश्चाषगताभिधम् ।
भौमानि मण्डलानीति दशोद्दिष्टान्यनुक्रमात् । 1526

भौम मण्डल के क्रमश दस नाम बताये गये है १ **भ्रमर**, २ **आवर्त**, ३ **आस्कन्दित**, ४ **अड्डित**, ५ **समोत्सरित**, ६ **अत्यर्ध**, ७ **एलकाक्रीडित**, ८ **शकटास्य**, ९ **पिष्टकुट्ट** और १० **चाषगत** ।

१ देखिए अशोक-भरतकोश, पृ० ४५४ ।

अतिक्रान्तं दण्डपादं क्रान्तं च विहृतं तथा ।
सूचीविद्धं वामविद्ध तदा ललितसञ्चरम् । 1527
विचित्रं ललितं चैव ततश्चालातमित्यपि ।
एतान्याकाशिकानि स्युः मण्डलानि दश क्रमात्] । 1528

आकाशिक मण्डल के भी क्रमश दस नाम हे १ अतिक्रान्त, २ दण्डपाद, ३ क्रान्त, ४ विहृत, ५ सूचीविद्ध, ६ वामविद्ध, ७ ललितसञ्चर, ८ विचित्र, ९ ललित और १० अलात।

२ वामविद्ध

सूची स्याद् दक्षिणः पादो वामोऽतिक्रान्तता गतः ।
दक्षिणो दण्डपादोऽन्य सूच्यङ्घ्रिभ्रमरः क्रमात् ॥१४३५॥ 1529
पार्श्वक्रान्तस्तु सव्यःस्याद् वामस्त्वाक्षिप्तता गतः ।
दक्षिणो दण्डपादः स्यादूरूद्वृत्तोऽप्यथ क्रमात् ॥१४३६॥ 1530
पादः सूची भवेद् वामस्ततोऽसौ भ्रमरो भवेत् ।
आलातोऽप्यथ सव्यः स्यात् पार्श्वक्रान्तोऽथ वामकः । 1531
अतिक्रान्तो यत्र वामविद्धमेतत् प्रकीर्तितम् ॥१४३७॥

दाहिना पैर सूची हो और वायाँ पैर अतिक्रान्त हो, फिर दाहिना पैर दण्डपाद और बायाँ पैर क्रमश सूची तथा भ्रमर हो, पुन दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त हो ओर बायाँ पैर आक्षिप्त, दाहिना पैर क्रमश दण्डपाद तथा ऊरूद्वृत्त हो ओर बायाँ पैर सूची तथा भ्रमर हो, फिर दाहिना पैर अलात तथा पार्श्वक्रान्त हो ओर बायाँ पैर अतिक्रान्त हो, तो ऐसी स्थिति मे वामविद्ध आकाशमण्डल होता हे ।

३ क्रान्त

सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामोऽपक्रान्तो दक्षिणो भवेत् । 1532
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः परितो मण्डलभ्रमः ॥१४३८॥
अथ वामो भवेत् सूची परोपऽक्रान्ततां गतः । 1533
यत्र तन् मुनिभिः क्रान्तं स्वभावगमने मतम् ॥१४३९॥

दाहिना पैर **सूची** करण हो ओर बायाँ **अपक्रान्त** करण हो, फिर दाहिना पर **पार्श्वक्रान्त** हो ओर बायाँ पैर चारो ओर मण्डलाकार मे घुमाया जाय, फिर बायाँ पैर **सूची** हो ओर दाहिना पैर **अपक्रान्त** हो, तो इस क्रिया को भरत आदि मुनियो ने **क्रान्त** आकाशमण्डल कहा है। इसका विनियोग स्वाभाविक चाल के अभिनय मे किया जाता है।

४ ललितसञ्चर

ऊर्ध्वजानुस्ततः सूची दक्षिणोऽड्घ्रिः क्रमात् तत. । 1534
अपक्रान्तोऽपरः पार्श्वक्रान्त. स्याद् दक्षिणस्तत· ॥१४४०॥
सूची भ्रमरको वामः क्रमादड्घ्रिस्तु दक्षिण । 1535
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिण. पुनः ॥१४४१॥
सूची वामोऽप्यपक्रान्त· पार्श्वक्रान्तश्च दक्षिणः । 1536
अतिक्रान्तस्तु वामोऽड्घ्री द्वौ छिन्नकरणाश्रयौ ॥१४४२॥
वामाड्घ्रिर्निर्मिता बाह्यभ्रमर्यन्ते यदा तदा । 1537
सञ्चरं ललिताद्यं स्यान्मण्डलं शिववल्लभम् ॥१४४३॥

दाहिना पेर क्रमश **ऊर्ध्वजानु** तथा **सूची** करण बना हो ओर बायाँ पैर **अपक्रान्त** बना हो, तदनन्तर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** ओर बायाँ पैर क्रमश **सूची** तथा **भ्रमर** बना हो, फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** और बायाँ **अतिक्रान्त** हो, पुन दाहिना पैर **सूची** तथा बायाँ पैर **अपक्रान्त** हो, फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** और बायाँ पैर **अतिक्रान्त** हो, दोनो पैर **छिन्न** करण का आश्रय लिये हुए हो, अन्त मे बाये पैर से बाहर **भ्रमरी** नामक चारी बनायी जाय, तो **ललितसञ्चर** आकाशमण्डल बनता है, जो शकर को प्रिय है।

५ सूचीविद्ध

दक्षिणे यत्र सूची स्याद् भ्रमरोऽप्यथ जायते । 1538
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तश्चरणः परः ॥१४४४॥
सूची स्यादथ वामोऽड्घ्रिरपक्रान्तः स्वरूपधृक् । 1539
पार्श्वक्रान्तोऽपरस्तद्धि सूचीविद्धं प्रकीर्तितम् ॥१४४५॥

जहाँ दाहिना पैर **सूची** तथा **भ्रमर** मुद्रा मे हो आर बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्त** हो, फिर दाहिना पैर **अतिक्रान्त** तथा **सूची** मे हो और बायाँ पैर **अपक्रान्त** का स्वरूप धारण किये हुए हो, पुन दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** हो, तो **सूचीविद्ध** आकाशमण्डल बनता है।

६ अलात

कुर्याद् वामाङ्घ्रिणा सूची भ्रमरी दक्षिणाङ्घ्रिणा । 1540
भुजङ्गत्रासिता चारीमलातामपराङ्घ्रिणा ॥१४४६॥
षड्वारमथवा सप्तकृत्वः कृत्वा क्रमादिमाः । 1541
क्षिप्रं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु समन्तान्मण्डलाकृति ॥१४४७॥
अपक्रान्तां दक्षिणेन वामेन त्वङ्घ्रिणा यदा । 1542
अतिक्रान्ताभ्रमरिके विधत्ते ललितैः क्रमैः ।
तदालातं मण्डलं स्यात्सदा शङ्करशङ्करम् ॥१४४८॥ 1543

बाये पैर से **सूची** तथा **भ्रमरी** नामक चारियो को तथा दाहिने पैर से **भुजगत्रासिता** नामक चारी को और फिर बाये पैर से **अलाता** नामक चारी को छह बार या सात बार क्रमश करके चारो दिशाओ मे मण्डलाकार मे शीघ्रतापूर्वक घुमाकर दाहिने पैर से **अपक्रान्ता** नामक चारी को और बाये पैर से **अतिक्रान्ता** एव **भ्रमरिका** नामक चारियो को सुन्दर ढग से करने पर **अलात** नामक **आकाशमण्डल** बनता है, जो सदा शकर को प्रिय है ।

७ विचित्र

जनितो दक्षिणोऽङ्घ्रिः स्यादूरूद्वृत्तोऽपि विच्यवः ।
अथ सप्तस्थितावर्तोद्व्यावर्तोदितभेदवान् ॥१४४९॥ 1544
वामोऽङ्घ्रिः स्पन्दितोऽथ स्यात् पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।
भुजङ्गत्रासितोऽन्यः स्यादतिक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥१४५०॥ 1545
उद्वृत्तकोऽप्यसौ वामस्त्वलातो दक्षिणः पुनः ।
पार्श्वक्रान्तोऽथ सूच्यङ्घ्रिर्वामो विक्षिप्य दक्षिणम् । 1546
अपक्रान्तो भवेद् वामो यत्र तत् स्याद् विचित्रकम् ॥१४५१॥

दाहिना पैर **जनिता, ऊरूद्वृत्ता, विच्यवा**, सात **स्थितावर्ता** और दो **आवर्ता** चारियो के भेद से युक्त हो, बायाँ पैर **स्पन्दिता** चारी से युक्त हो, दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्ता** चारी से युक्त हो, फिर बायाँ पैर **भुजगत्रासिता** से युक्त हो, दाहिना पैर **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, बायाँ पैर **उद्वृत्ता** से युक्त हो, पुन दाहिना पैर **अलाता** से युक्त हो, फिर बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो, तो **विचित्र** आकाशमण्डल होता हे ।

८ विहृत

दक्षिणो विच्यवीभूयः क्रमादुत्स्पन्दितस्ततः । 1547
पार्श्वक्रान्तोऽप्यथो वामः स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४५२॥
भवेत् सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातत्वमागतः । 1548
सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामः पार्श्वक्रान्तत्वमाश्रितः ॥१४५३॥
आक्षिप्तो दक्षिणो यत्र भ्रान्त्वा सव्यापसव्यतः । 1549
आश्रितो दण्डपादत्वमथ वामः क्रमाद् यदि ॥१४५४॥
सूच्यङ्घ्रिर्भ्रमरश्चाथ भुजङ्गत्रासितोऽपरः । 1550
अतिक्रान्तस्तु वामः स्यात् तत् तदा विहृतं मतम् ॥१४५५॥

दाहिना पैर **विच्यवा** चारी से युक्त होकर क्रमशः **स्पन्दिता** तथा **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो, तदनन्तर बायाँ पैर **स्पन्दिता** से युक्त हो, दाहिना पैर **उद्वृत्ता** से युक्त हो, बायाँ पैर **अलाता** से युक्त हो, दाहिना पैर **सूची** से युक्त हो, फिर बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो, दाहिना पैर **आक्षिप्ता** से युक्त होकर दाये-बाये घूमकर **दण्डपादा** से युक्त हो जाय, फिर बायाँ पैर क्रमशः **सूची** तथा **भ्रमरी** से युक्त हो, दाहिना पैर **भुजगत्रासिता** से युक्त हो और बायाँ पैर **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, तो **विहृत** आकाशमण्डल होता है।

९ ललित

दक्षिणश्चरणः सूची वामोऽपक्रान्ततां गतः । 1551
पार्श्वक्रान्तो भवेत् सव्यो भुजङ्गत्रासितोऽप्यसौ ॥१४५६॥
अतिक्रान्तः पुनर्वामः स्यादाक्षिप्तस्तु दक्षिणः । 1552
वामः क्रमादतिक्रान्त ऊरूद्वृत्तोऽप्यलातकः ॥१४५७॥
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यात् सूची वामोऽथ दक्षिणः । 1553
अपक्रान्तोऽथ वामोऽङ्घ्रिरतिक्रान्तत्वमाश्रितः ।
सञ्चरेल्ललितं यत्र तन्मतं ललितं बुधैः ॥१४५८॥ 1554

दाहिना चरण **सूची** से युक्त हो, बायाँ चरण **अपक्रान्ता** से युक्त हो, दाहिना चरण **पार्श्वक्रान्ता** तथा **भुजगत्रासिता** से युक्त हो, बायाँ चरण **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, पुनः दाहिना **आक्षिप्ता** से युक्त हो, बायाँ क्रमशः **अतिक्रान्ता**, **ऊरूद्वृत्ता** तथा **अलाता** से युक्त हो, फिर दाहिना **पार्श्वक्रान्ता** से और बायाँ **सूची** से युक्त हो, तदनन्तर

दाहिना **अपक्रान्ता** से युक्त हो ओर बायाँ **अतिक्रान्ता** से युक्त होकर सुन्दर ढग से सचरण करे, तो उसे विद्वानो ने **ललित** आकाशमण्डल बताया है ।

१० दण्डपाद

> **जनितो दण्डपादश्च दक्षिणोऽङ्घ्रिः क्रमात् ततः ।**
> **सूची स्याद् भ्रमरश्चान्योऽथोद्वृत्तो दक्षिणस्ततः ॥१४५९॥** 1555
> **वामोऽलातोऽथ चरणः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।**
> **भुजङ्गत्रासितोऽप्येष ततोऽतिक्रान्ततः गतः ॥१४६०॥** 1556
> **वामोऽथ दण्डपादस्तु सूची चान्यस्ततो यदा ।**
> **वामः स्याद् भ्रमरो यत्र दण्डपादमिदं तदा ॥१४६१॥** 1557

दाहिना पैर क्रमश **जनिता, दण्डपादा** तथा **सूची** नामक चारियो से युक्त हो, बायाँ पैर **भ्रमरी** से युक्त हो, फिर दाहिना पैर **उद्वृत्ता** से युक्त आर बायाँ पर **अलाता** से युक्त हो, पुन दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्ता, भुजगत्रासिता** तथा **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, आर बायाँ पैर **दण्डपादा** से युक्त हो, पुन दाहिना पैर **सूची** से युक्त हो, और बायाँ पैर **भ्रमरी** से युक्त हो, तो **दण्डपाद** आकाशमण्डल होता है ।

दस भूमिगत मण्डल (२)

१. भ्रमर

> **दक्षिणो जनितोऽथाङ्घ्रिर्वामः स्यात् स्पन्दितस्ततः ।**
> **दक्षिण. शकटास्योऽथ वामोऽपि स्पन्दितोऽथवा ॥१४६२॥** 1558
> **दक्षिणो भ्रमरः पादः स्याद् वामः स्पन्दितस्ततः ।**
> **दक्षिण. शकटास्यः स्याद् वामश्चाषगतो भवेत् ॥१४६३॥** 1559
> **परस्तु भ्रमरोऽथाङ्घ्रिर्वाम स्यात् स्पन्दितो यदि ।**
> **तदोक्तं भ्रमर धीरैर्मण्डलं शिववल्लभम् ॥१४६४॥** 1560

दाहिना पैर **जनिता** नामक चारी से युक्त आर बायाँ पैर **स्पन्दिता** से युक्त हो, फिर दाहिना **शकटास्या** से तथा बायाँ **स्पन्दिता** से युक्त हो, पुन दाहिना **भ्रमरी** से युक्त हो, बाँया **स्पन्दिता** से युक्त हो, फिर दाहिना **शकटास्या** से युक्त ओर बायाँ **चाषगति** से युक्त हो, तत्पश्चात् दाहिना **भ्रमरी** से युक्त ओर बाँया **स्पन्दिता** से युक्त हो, तो धीर पुरुषो ने उसे **भ्रमरी** भूमिमण्डल कहा है, जो शकर को प्रिय है ।

२ शकटास्य

दक्षिणो जनितोऽथ स्यात् स्थितावर्त स एव चेत् ।
शकटास्यस्ततोऽसौ स्यादेलकाक्रीडितस्तत. ॥१४६५॥ 1561
ऊरूद्वृत्तोऽड्डितोऽड्घ्रि स्याज्जनितोऽपि ततो भवेत् ।
शकटास्योऽथ वामोऽड्घ्रि स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४६६॥ 1562
शकटास्यस्तत पादो यावन्मण्डलपूरणम् ।
क्रमतो यत्र जायन्ते शकटास्य तदीरितम् ॥१४६७॥ 1563

दाहिना पैर क्रमश **जनिता**, **स्थितावर्ता**, शकटास्या, एलकाक्रीडिता, ऊरुद्वृत्ता, अड्डिता, पुन **जनिता** तथा **शकटास्या** नामक चारियो मे युक्त हो ओर बायाँ पैर क्रमश स्पन्दिता एव मण्डल के पूर्ण होकर **शकटास्या** से युक्त हो, तो **शकटास्य** भूमिमण्डल होता है ।

३ पिष्टकुट्टक

दक्षिणोऽड्घ्रिर्भवेत् सूची वामोऽपक्रान्तकस्ततः ।
क्रमान्मुहुः सव्यवामौ भुजङ्गत्रासितौ ततः । 1564
मण्डलभ्रमणं प्रान्ते यत्रेद पिष्टकुट्टकम् ॥१४६८॥

दाहिना पैर सूची से युक्त तथा बायाँ पर अपक्रान्ता से युक्त हो, फिर दोनो दाहिना ओर बायाँ क्रमश **भुजगत्रासिता** से युक्त हो ओर उन्हे मण्डलाकार मे घुमाया जाय, तो **पिष्टकुट्टक** भूमिमण्डल होता है ।

४ अड्डित

उद्घट्टितोऽथ बद्धः स्यात् समोत्सरितपूर्वकः । 1565
मत्तल्लिरर्धमत्तल्लिरपक्रान्तश्च दक्षिणः ॥१४६९॥
उद्वृत्तश्च ततो विद्युद्भ्रान्तश्च भ्रमरस्ततः । 1566
स्पन्दितोऽप्यथ वामः स्याच्छकटास्योऽथ दक्षिणः ॥१४७०॥
भवेद् द्विश्चरणश्चाषगतिश्च तदनन्तरम् । 1567
वामोऽड्डितोऽध्यर्धिकश्च क्रमाच्चाषगतिः परः ॥१४७१॥
समोत्सरितमत्तल्लिर्मत्तल्लिर्भ्रमरः पुनः । 1568

वामोऽथ स्पन्दितीभूय विधत्ते स्फोटन भुवः ।
दक्षिणो यदि पाद स्यादड्डित मण्डलं तदा ॥१४७२॥ 1569

दाहिना पैर क्रमश उद्घट्टिता बद्धा, समोत्सरितमत्तल्लि, अर्धमत्तल्लि तथा अपक्रान्ता नामक चारियो से युक्त हो और बायाँ पैर क्रमश उद्वृत्ता, विद्युद्भ्रान्ता, भ्रमरी तथा स्पन्दिता से युक्त हो, फिर दाहिना पैर शकटास्या तथा चाषगति से युक्त होकर दो बार प्रयुक्त हो आर बायाँ पैर क्रमश अड्डिता तथा अध्यर्धिका से युक्त हो, फिर दाहिना पैर चाषगति से युक्त हो तथा बायाँ पैर क्रमश समोत्सारितमत्तल्लि, मत्तल्लि तथा भ्रमरी से युक्त हो आर दाहिना पेर स्पन्दिता से युक्त होकर पृथ्वी पर चोट करे, तो अड्डिता भूमिमण्डल होता है ।

५ समोत्सरित

समपाद समाश्रित्य सम्प्रसार्य करौ ततः ।
निरन्तरौ विधायोर्ध्वावावेष्टचोद्वेष्टच च क्रमात् ॥१४७३॥ 1570
न्यस्येत् कटीतटेऽथाङ्घ्री भ्रामयेत् सव्यवामकौ ।
क्रमादथ पुरो वाममङ्घ्रि यत्र प्रसारयेत् ॥१४७४॥ 1571
एवं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु मण्डलभ्रमणं क्रमात् ।
समोत्सरितमेतत् स्यात् मण्डलं शिवशङ्करम् ॥१४७५॥ 1572

सम स्थिति पैर का आश्रय लेकर दोनो हाथो को फैलाकर तथा सटाकर ऊपर करके क्रमश आवेष्टित तथा उद्वेष्टित करके कटि पर रख दिया जाय, अनन्तर दाहिने और बाये पैरो को क्रमश घुमाकर बाये पेर को आगे फैला दिया जाय, इस प्रकार चारो दिशाओ मे मण्डलाकार घुमाने से समोत्सरित भूमिमण्डल बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

६ आवर्त

[द[1]क्षिणो जनितो वामः स्थितावर्तस्ततः परम् ।
शकटास्यो भवेत् पश्चादेडकाक्रीडिताह्वयः] । 1573
ऊरूद्वृत्तोऽड्डितः पश्चाच्चारी स्याज्जनिताभिधा ।
समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमात् पादस्तु दक्षिण. ॥१४७६॥ 1574

१ देखिए सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ११५४, (आडियार सस्करण) ।

शकटास्यस्ततोऽनूरूद्वृत्तोऽङ्घ्रि· स्यादथापरः ।
अङ्घ्रिश्चाषगतिर्द्विः स्यात् स्पन्दितो दक्षिणस्तत· ।।१४७७।। 1575
शकटास्यो भवेद्वाम. पराङ्घ्रिर्भ्रमरोऽथ चेत् ।
अङ्घ्रिश्चाषगतिर्भ्रमरस्तदावर्तमुदीरितम् ।।१४७८।। 1576

दाहिना पैर जनिता चारी मे युक्त हो तथा बायाँ स्थितावर्ता से युक्त होकर शकटास्या, एडकाक्रीडिता, ऊरूद्वृत्ता, अड्डिता, पुन जनिता तथा स्तोकास्थितमस्तकी से क्रमश युक्त हो, दाहिना पैर शकटास्या तथा ऊरूद्वृत्ता से युक्त हो और बायाँ पैर चाषगति मे दो बार युक्त हो, पुन दाहिना पैर स्पन्दिता से तथा बायाँ पैर शकटास्या से युक्त हो, फिर दाहिना भ्रमरी से युक्त हो और बायाँ चाषगति से युक्त हो, तो आवर्त भूमिमण्डल होता है।

७ एलकाक्रीडित

भूमिश्लिष्टैर्यदा पादै· सूचीविद्धं समाश्रितैः ।
एलकाक्रीडितैः सूचीविद्धैरपि पुनः पुनः ।।१४७९।। 1577
सम्पूर्णभ्रमणैः प्राग्वत् सूचीविद्धैस्ततोऽङ्घ्रिभिः ।
आक्षिप्तैर्मण्डलभ्रान्त्या चतुर्दिक्ष्ववसानके । 1578
तदेलकाक्रीडिताख्यमाख्यात मण्डलं बुधैः ।।१४८०।।

भूमि से सटे हुए पैर सूचीविद्ध नामक करण का आश्रय लेकर एलकाक्रीडित तथा पुन-पुन सूचीविद्ध करणो से युक्त होकर पूर्ण रूप घुमाये जाते हुए आक्षिप्त करणो मे अवस्थित किये जाँय, फिर अन्त मे चारो दिशाओ मे मण्डलाकर घुमाने से एलकाक्रीडित भूमिमण्डल बनता है, ऐसा विद्वानो का कहना है ।

८ आस्कन्दित

दक्षिणो भ्रमरः पादस्ततो वामोऽड्डितो भवेत् । 1579
दक्षिणः शकटास्यत्वं प्राप्तोऽरूद्वृत्तता व्रजेत् ।।१४८१।।
यदा वामोऽध्यर्धिकः स्याद् भ्रमरो दक्षिणः पुन· । 1580
स्पन्दित शकटास्य स्याद् वामस्तेन महीतलम् ।
आस्फोटित स्फुट यत्र तदास्कन्दितमीरितम् ।।१४८२।। 1581

दाहिना पैर **भ्रमरी** चारी से युक्त तथा बायाँ पैर **अड्डिता** से युक्त हो, फिर दाहिना **शकटास्या** तथा **ऊरूदवृत्ता** से ओर बायाँ **अध्यर्धिका** से युक्त हो, दाहिना पुन **भ्रमरी** से युक्त हो, और बायाँ **स्पन्दिता** तथा **शकटास्या** से युक्त हो, उससे पृथ्वी पर स्पष्ट रूप से पटकने की आवाज हो, तो **आस्कन्दित** भूमि मण्डल बनता है।

९ चाषगत

सर्वे चाषगताः पादा यदान्ते मण्डलभ्रमः ।
तदा चाषगतं ज्ञेयं नियुद्धे मण्डलं बुधैः ॥१४८३॥ 1582

जब पैर **चाषगति** नामक चारी से युक्त हो और अन्त मे मण्डलाकार घुमाया जाय, तो **चाषगत** भूमिमण्डल बनता है। विद्वानो ने इसका विनियोग कुश्ती के अभिनय मे बताया है।

१० अध्यर्ध

क्रमादङ्घ्रिर्दक्षिणः स्याज्जनितः स्पन्दितस्ततः ।
अड्डितोक्तचतुर्भेदो वामः स्यादथ दक्षिणः ॥१४८४॥ 1583
शकटास्यश्चतुर्दिक्षु मण्डलभ्रमण यदा ।
भवेदन्ते तदा धीरैरध्यर्ध परिकीर्तितम् ॥१४८५॥ 1584

दाहिना पैर क्रमश **जनिता** तथा **स्पन्दिता** से युक्त और बायाँ पैर **अड्डिता** के चार भेदो से युक्त हो, फिर दाहिना पैर **शकटास्या** से युक्त होकर अन्त मे चारो दिशाओ मे मण्डलाकार घुमाया जाय, तो धीर पुरुष उसे **अध्यर्ध** भूमिमण्डल कहते है।

चारी नाम्ना प्रविज्ञेयश्चरणस्तु मनीषिभिः ।
चरणन्यूनताधिक्यं मन्वते नेह दोषकृत् । 1585
अतो न्यूनेऽधिके चाङ्घ्रौ न दुष्टं मण्डलं मतम् ॥१४८६॥

मनीषियो को यहाँ चारी के नाम से चरण को समझना चाहिए। यहाँ विद्वान् लोग चरण की न्यूनता या अधिकता को दोषकारक नही मानते है। इसलिए चरण के न्यून ओर अधिक होने पर भी मण्डल निर्दुष्ट है।

समवेत रूप मे बीस मण्डलो का निरूपण समाप्त।



लास्यांग प्रकरण / चौदह

मार्गस्थित लास्यागो (आगिक अभिनयो) के भेद

स्थितपाठ्यमथासीन सैन्धव पुष्पमण्डिका । 1586
प्रच्छेदक. शेषपदं द्विमूढं च त्रिमूढकम् ॥१४८७॥
वैभाविकं चित्रपदमुक्तप्रत्युक्तकं तथा । 1587
उत्तमोत्तमकं चेति द्व्यधिकानि दशाब्रुवन् ॥१४८८॥
क्रमान्मार्गस्थितानीति लास्याङ्गान्यथ लक्षणम् । 1588
प्रोच्यतेऽशोकमल्लेन तेषा लक्ष्मानुसारत. ॥१४८९॥

अशोकमल्ल ने मार्गस्थित लास्यागो के बारह भेद बताये ह १ **स्थितपाठ्य**, २ **आसीन**, ३ **सैन्धव**, ४ **पुष्प मण्डिका**, ५ **प्रच्छेदक**, ६ **शेषपद**, ७ **द्विमूढ**, ८ **त्रिमूढ**, ९ **वैभाविक**, १० **चित्रपद**, ११ **उक्तप्रत्युक्त** आर १२ **उत्तमोत्तम**। अब उनकी गति-विधियो के अनुमार उनके लक्षण-विनियोगो का निरुपण किया जा रहा है।

१ **स्थितपाठ्य**

[यदा] कन्दर्पतप्ताङ्गी तन्वी [वि] रहविह्वला । 1589
स्थिता पठेत् प्राकृतं चेत् स्थितपाठ्यं तदोदितम् ॥१४९०॥

जब कामपीडित तथा विरह से व्याकुल युवती खडी होकर प्राकृत भाषा का पद्यपाठ करे, तब **स्थितपाठ्य** लास्याग होता है।

यथा–

मयणप्पहुकोवतावितए मह सीदाइं कुरंगलोअणाए। 1590
सहि वल्लहसंगवचिदाए सरण पुम्मदलांइ जीवियस्स[1] ॥१४९१॥

जैसे, हे सखी ! कामदेव के क्रोध से जलायी हुई, (अतएव) डरी हुई और प्रियतम के सहवास से वंचित की हुई मुझ मृगनयनी के प्राणो के रक्षक कमलदल ही हो सकते है।

मदनप्रभुकोपतापिताया मम भीतायाः कुरङ्गलोचनायाः ।
सखि वल्लभसङ्घवञ्चितायाः शरणं पद्मदलानि जीवस्य ॥
(नृत्यरत्नकोश, वाल्यूम २, पृष्ठ १९९, श्लोक ७)।

२ आसीन

यत्राङ्गना खण्डितास्ते चिन्ताशोकाकुला । 1591
वर्जिताभिनयैर्वाक्यैरतदासीनं मतं बुधैः ॥१४९२॥

जहाँ खण्डिता नायिका चिन्ता और शोक से व्याकुल तथा अभिनय एवं वचनों से रहित होकर बैठी रहती है, वहाँ बुधजन **आसीन** लास्यांग बनाते हैं ।

यथा—

प्रसरति दिनमणितेजसि विगलित तमसि प्रकाशिते नभसि । 1592
अपनीताधररागं पश्य वयस्ये समागत रमणम् ॥१४९३॥

जैसे, हे सखी ! सूर्य की किरणों के फैल जाने तथा अंधकार के नष्ट हो जाने पर और आकाश के प्रकाशित हो जाने पर अधर की लालिमा से रहित होकर आये हुए कान्त को देखो ।

भालेऽलक्तकमञ्जिताधरमुर कर्पूरमुद्रं वहन् । 1593
निःशङ्कः पतिरभ्युपैति वियति प्रत्यग्रसूर्योदये ॥
चिन्तासागरसन्निमग्नमनसा नीता मया यामिनी । 1594
किं कुर्वे सखि कैतवं कलयता मुग्धामुना वञ्चिता ॥१४९४॥

ललाट पर महावर, लालिमा रहित अधर और कर्पूर से अंकित वक्षस्थल धारण किये हुए (मेरे) पति आकाश में सद्य सूर्योदय हो जाने पर निःशंक होकर (मेरे) पास आ रहे हैं । चिन्ता रूपी सागर में डूबे हुए मन वाली मैंने (सारी) रात बिता दी । सखी ! क्या करूँ ? इस छलिये ने भोली-भाली मुझको ठग लिया ।

३ सैन्धव

यत्र पात्रं कालहीनं नाट्यपाठ्यविवर्जितम् । 1595
भाषासिन्धुभवाच्चैतत् सैन्धवं समुदीरितम् ॥१४९५॥

जहाँ पात्र समय से रहित, नाट्य-पाठ्य से अनभिज्ञ हो और भाषा सिन्धु देश की हो, वहाँ **सैन्धव** लास्यांग होता है ।

४ पुष्पमण्डिका

विचित्रं यत्र कान्ताना गीतं वाद्यं च नर्तनम् । 1596
मनोवाक्कायचेष्टाभिर्हीनं सा पुष्पमण्डिका ॥१४९६॥

जहाँ कान्तों का गीत, वाद्य तथा नृत्य विचित्र हो और कायिक (आंगिक), वाचिक एवं मानसिक (आहार्य) चेष्टाओं से शून्य हो, वहाँ **पुष्पगण्डिका** लास्यांग होता है।

५ प्रच्छेदक

यत्राङ्गना परित्यक्तलज्जाश्चन्द्रातितापिता: । 1597
कृतापराधकान् यान्ति प्रियान् प्रच्छेदकस्तु स: ॥१४९७॥

जहाँ चन्द्रमा से अत्यन्त तप्त रमणियाँ लज्जा का परित्याग करके अपराधी प्रियतमों के पास जाती हैं, वहाँ **प्रच्छेदक** लास्यांग होता है।

यथा—

सखि स्फुरति यामिनी मृगशिशुमुखकयांशुभिर् 1598
ज्वलद्भिरिव मामयं स्पृशति मानमुन्मूलयन् ।
अतो विगतलज्जया सुरतसंगरे सज्जया । 1599
मयापि विदितागसं प्रियमुपासितुं गम्यते ॥१४९८॥

जैसे, हे सखी! रात्रि चन्द्रमा को उठाकर चमक रही है और यह चन्द्रमा मानो अपनी जाज्वल्यमान किरणों से मेरे मान का उन्मूलन करते हुए मुझे छू रहा है। इसलिए मैं निर्लज्ज होकर रतियुद्ध की तैयारी करके अपराधी प्रियतम के पास जा रही हूँ।

६ शेषपद

तताद्यनुगता गाननिष्णाता यत्र गायका: । 1600
गायन्ति सुखसंस्थानास्तच्छेषपदमीरितम् ॥१४९९॥

(वीणा, सारंगी आदि) वाद्यों का अनुगमन करने वाले गानविद्या में निष्णात गायक जहाँ सुख से बैठकर गाते हैं वहाँ **शेषपद** लास्यांग होता है।

७ द्विमूढ

चित्रार्थं श्लेषभावाढ्यं मुखप्रतिमुखान्वितम् । 1601
यद् वाक्यं तद् द्वि[मू]ढाख्यं लास्याङ्गं कथितं बुधै: ॥१५००॥

विचित्र अर्थों वाला, श्लेषालंकार से युक्त और मुख एवं प्रतिमुख सन्धियों से युक्त जो वाक्य होता है, उसे बुधजन **द्विमूढ** लास्यांग कहते हैं।

यथा–

अङ्कुरिता मम हृदये प्रेमलतां रमणजलधरो मुदितः। 1602

सिञ्चति जीवनस्वनैरिह वचनैरुन्नति नेतुम् ॥१५०१॥

जैसे, मेरे हृदय मे अकुरित हुई प्रेम रूपी लता को बढाने के लिए प्रियतम रूपी बादल वचन रूपी जलधारा से सीच रहा है।

८ त्रिमूढ

रम्यवर्णनिबद्धं यद् बहुभावसमन्वितम्। 1603

अलङ्कृत तुल्यवृत्तं[वा]क्यं तत् स्यात् त्रिमूढकम् ॥१५०२॥

जो रमणीय अक्षरो मे निबद्ध हो, अनेक भावो मे युक्त हो, अलकार से पूर्ण हो, और समान वृत्त वाला हो, उसे **त्रिमूढ** लास्याग कहते हे।

यथा–

भयहर्षरोषरोदनवद [न]–सम्भेदनानि कुर्वाणौ। 1604

स्मरसङ्गरसङ्गमितौ जितमिति नौ मन्मथो हसति ॥१५०३॥

भय, हर्ष, क्रोध, रुदन, कथन ओर सभेदन––ये सब करते हुए तथा रतियुद्ध मे लगे हुए हम दोनो को जीत लिया–यह कहकर कन्दर्प हँस रहा है।

कुचोन्नमनचातुरीचलितकञ्चुकीबन्धया 1605

कपोलपुलकावलीकलितयाऽऽयतापाङ्गया।

विमोहनविवर्तनैर्विदितसङ्गया संगमे 1606

त्वयाभिलषिते कथं सुमुखि मानमालम्बसे ॥१५०४॥

हे सुमुखी! कुचो को उत्तुग बनाने की चतुरता मे चोली पहनने वाली कपोलो पर रोमाच से युक्त लम्बी तिरछी चितवन वाली ओर ज्ञात सहवास वाली तुम मोहक हाव-भावो द्वारा मेरे सहवास की इच्छा प्रकट करके मान का अवलम्बन क्यो कर रही हो?

९ वैभाविक

प्रियं स्वप्ने समालोक्य पञ्चबाणनिपीडिता। 1607

विचित्रान् रचयेद् भावान् यदा वैभाविकं तदा ॥१५०५॥

जब नायिका स्वप्न मे प्रियतम को देखकर कामबाण से पीडित होती हुई अनेक प्रकार के भावो की रचना करे, तब **वैभाविक** लास्याग होता है।

यथा—

अद्याकर्णय नैशिकं सखि मया कान्तश्चिरं प्रोषितो 1608
निद्रामुद्रितनेत्रयापि शयने साक्षादिवावेक्षितः ।
मायासङ्गमभङ्गभीरुतरये वोन्मज्ज्य लज्जाजलात् 1609
कण्ठग्राहमनिन्दित परिवृतः प्रोल्लासितो मोदितः ॥१५०६॥

जैसे, हे सखी ! अब रात का वृत्तान्त सुनो ! चिरकाल से परदेश गये हुए प्रियतम को, निद्रा मे मुंदी हुई आँखे होने पर भी, मैने पलग पर साक्षात् की तरह देखा। तब मानो ऐन्द्रजालिक सगम के नष्ट होने से अत्यन्त डरी हुई मैने लज्जा रूपी जल से निकलकर प्रियतम के गले से लिपटकर घेर लिया और खूब आमोद-प्रमोद किया।

१० चित्रपद

यत्र चित्रकृतं कान्तं कान्ता कामकृतव्यथा । 1610
दृष्ट्वा खिद्यति चेदुक्तमिद चित्रपदं तदा ॥१५०७॥

जहाँ चित्र मे नायक को देखकर नायिका कामपीडा से खिन्न हो जाती है, वहाँ **चित्रपद** लास्यांग होता है।

यथा—

कान्तं चित्रपटे विलिख्य विदधे यावत् तयालापनम् 1611
लब्धो जीवनवासरैः कतीपयैस्त्यक्ष्यामि न त्वामिति।
तावन् मज्जदनल्पबाष्पसलिले सम्भिन्नभिन्नाक्षरम् 1612
खेदस्वेदकपाटकोटिघटितं कण्ठे विशीर्ण वचः ॥१५०८॥

जैसे, चित्रपट पर प्रियतम को लिखकर जब तक नायिका यह कहने लगी कि मिलने पर तुम्हे जीवन के कतिपय दिनो तक नही छोडूगी, तब तक अत्यधिक अश्रुजल मे डूब जाने से छिन्न-भिन्न अक्षरो वाला तथा खेद के कारण बहने वाले पसीने-रूपी किवाडा के सिरे से टकराया हुआ वचन कण्ठ मे ही विगलित हो गया।

११ उक्तप्रत्युक्त

प्रसादकं सरोषस्य साधिक्षेपपदं यदा । 1613
नानार्थगीतसहितमुक्तप्रत्युक्तकं तदा ॥१५०९॥

जब क्रुद्ध व्यक्ति को प्रसन्न करने वाला आक्षेपयुक्त तथा अनेक अर्थो सहित वचन प्रयुक्त होता है, तब उक्त **प्रत्युक्त** लास्यांग होता है।

यथा–

प्राप्तो वसन्तसमय. समयानभिज्ञ 1614
रोष परित्यज भजस्वमयि प्रसादम् ।
उत्तुङ्गपीवरपयोधरभूरिभारा– 1615
माराधितोऽपि नहि रक्षितुमीहसे माम् ॥१५१०॥

हे समय से अनभिज्ञ कान्त ! वसन्तकाल आ गया है। (इसलिए) रोष का परित्याग करो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। क्या, मनाये जाने पर भी, तुम उन्नत तथा स्थूल कुचो वाली मुझको (अपना) नही रखना चाहते हो ?

१२ उत्तमोत्तम

युक्तं चित्ररसैर्वाक्यं चित्रैर्भावैश्च मञ्जुलम् । 1616
तथाभिनयनैर्युक्तमुत्तमोत्तमकं मतम् ॥१५११॥

विभिन्न प्रकार के रसो तथा भावो से युक्त, सुन्दर तथा अनेक प्रकार के अभिनयो से युक्त वाक्य **उत्तमोत्तम** लास्याग कहलाता है।

यथा–

सहर्षमवलोकन विहितभीतमालिङ्गनम् 1617
सरोषमपि भाषण सजललोचन रोदनम् ।
इति प्रथमसंगमे चतुरचित्तचेतोहरो 1618
विचित्ररससङ्करो जयति कोऽपि वामभ्रुवः ॥१५१२॥

जैसे, हर्षपूर्वक देखना, भयपूर्वक आलिगन करना, क्रोधपूर्वक बोलना और सजलनेत्रपूर्वक रोना—यह ललना के प्रथम सहवास मे चतुर व्यक्ति के चित्त को हरने वाला अनेक रसो का सम्मिश्रण विलक्षण होता है।

देशी लास्यागो का निरूपण (२)

देशी लास्यागो के भेद

चालिश्चालिवटस्तूकं मनो लेढिरुरोङ्कणम् । 1619
ढिल्लाई त्रिकलिः किन्तु देशीकार निजापनम् ॥१५१३॥
उल्लासस्थसको भावः सुकलासं लयस्तथा । 1620
ढालश्छेवाङ्गहारश्च लङ्घितं विहसी तथा ॥१५१४॥

नीकी नमनिका शङ्का वितडं गीतवाद्यता । 1621
विवर्तनं रथ(?थर)हर स्थापना सौष्ठव तत. ॥१५१५॥
स्रुवा मसृणतोपारस्तथाङ्गानङ्गमित्यपि । 1622
कोमलिका चाभिनयस्ततो मुखरसस्तथा ॥१५१६॥
एवं सप्ताधिकास्त्रिशल्लास्याङ्गाना समासतः । 1623
देश्याद्यानाम्–

देशी लास्यांगो के सक्षेप मे सैंतीस भेद इस प्रकार है १ चालि, २ चालिवट, ३ तुक, ४ मनस्, ५ लेढि, ६ उरोङकण ७ ढिल्लाई, ८ त्रिकलि, ९ किन्तु, १० देशीकार, ११ निजापन, १२ उल्लास, १३ थसक, १४ भाव, १५ सुकलास, १६ लय, १७ ढाल, १८ छेवर, १९ अगहार, २० लत्रिन, २१ विहसी, २२ नीकी, २३ नमनिका, २४ शका, २५ वितड, २६ गीतवाद्यता, २७ विवर्तन, २८ थरहर, २९ स्थापना, ३० सौष्ठव, ३१ स्रुवा, ३२ मसृणता, ३३ उपार, ३४ आनग, ३५ अभिनय, ३६ कोमलिका और ३७ मुखरस।

–अथैतेषां लक्ष्यलक्षणवेदिना ।
लक्ष्माण्यशोकमल्लेन कथ्यन्ते साधुनाधुना ॥१५१७॥ 1624

लक्ष-लक्षणो के ज्ञाता साधु अशोकमल्ल अब उनके लक्षणो का निरूपण कर रहे है ।

१ चालि

बाहुकट्यूरुपादानामेकदा चालनं यदा ।
तालतौल्ययुतं नातिमन्दं नातिद्रुतं तथा ॥१५१८॥ 1625
मधुर सविलासं च कोमलं त्र्यस्रभावभाक् ।
तदा चालि समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणी. ॥१५१९॥ 1626

जब बाँह, कमर, जाँघ और पैर को एक ही समय ताल-मात्रा के साथ न बहुत मन्द और न बहुत शीघ्र गति से मधुरता, हावभाव, कोमलता तथा त्र्यस्रभाव पूर्वक चलाया जाय, तब महाराज अशोकमल्ल उसे **चालि** नामक लास्यांग कहते है ।

२ चालिवट

शैघ्र्यसांमुख्यबहुला सैव चालिवटो मतः ॥१५२०॥

जब चालि लास्याग मे शीघ्रता ओर सम्मुखता का बाहुल्य होता हो, तब वही **चालिवट** लास्याग कहलाता है ।

३ तूक

द्रुतमन्दादिभावेन चालनं हावपूर्वकम् । 1627
लीलावतसयुतयोः कर्णयोस्तूकमीरितम् ।।१५२१।।

लीला के लिए धारण किये गये आभूषणो से युक्त दोनो कानो को शीघ्र तथा मन्द गति से हाव-भाव पूर्वक चलाया जाय, तो **तूक** लास्याग कहलाता हे ।

४ मन

शृङ्गाररससम्पन्नः कोऽप्यपूर्वो गुणो यदा । 1628
लक्ष्यते शिक्षिताद् योऽतिसूक्ष्मोऽभिनयभावभाक् ।।१५२२।।
अन्य एव तु नाट्याङ्गक्रियायोगाद्यदा लये । 1629
तदा मनो मनोहारि सुमनोभिरिदं मतम् ।।१५२३।।

जब शृगार रस से सम्पन्न कोई अपूर्व गुण, जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा अभिनय के भाव का द्योतक हो ओर नाट्याग-क्रिया के योग से दूसरा ही हो, शिक्षित व्यक्ति से लय के साथ दिखाई पडे, तब मनस्वी लोगो ने उसे सुन्दर **मन** नामक लास्याग कहा है ।

५ लेढि

कोमल मधुरं तिर्यक् सविलासं च यद् भवेत् । 1630
एकदा चालनं बाहुकटीनां सा लेढिर्मता ।।१५२४।।
सौन्दर्यभरसंपन्नः संगीतप्राप्तिसम्भवः । 1631
आनन्दातिशयः कोऽपि लेढिरित्यपरे जगुः ।।१५२५।।

बॉह ओर कमर का एक साथ सचालन, जो कोमल, मधुर, तिरछा तथा हाव-भावपूर्वक हो, **लेढि** नामक लास्याग कहलाता हे । दूसरे आचार्यो का मत है कि सोन्दर्य के भार से सम्पन्न और सगीत के सयोग से व्युत्पन्न एव अतिशय आनन्द से युक्त लास्याग **लेढि** कहलाता हे ।

६ उरोङ्कण

अंसयोः स्तनयोस्तालसम्मितं चालनं भवेत् । 1632
पर्यायादेकदा वा यद् द्रुतं यद् वा विलम्बितम् ।।१५२६।।

क्रमादधः पुनः पश्चादूर्ध्वमेतदुरोङ्कणम् । 1633
इदमेव नटाः प्राहुस्त्रङ्गशब्देन कोविदाः ।।१५२७।।
मनाक् सुललितं तिर्यक् चालनं यत् कुचासयो । 1634
विलम्बेनाविलम्बेन तदूचु केप्युरोङ्कणम् ।।१५२८।।
यत्र पात्रं द्रुत गात्रं कम्पयेत् तालकालतः । 1635
मनाङ् मनोहर केचिदूचुरे तदुरोङ्कणम् ।
इदमेव रचे नाम्नाचक्षन्ते साम्प्रदायिका. ।।१५२९।। 1636

यदि कधो तथा स्तनो को ताल-मात्रा के प्रमाण से क्रमश या एक समय शीघ्रता से या विलम्ब से क्रमश नीचे और ऊपर की ओर चलाया जाय, तो उसे उरोकण लास्याग कहते है। इसी को विज्ञ नर्तक त्रग शब्द से अभिहित करते है । कोई आचार्य कहते है कि कुचो तथा कधो को थोडा सुन्दर ढग से तिरछा करके विलम्ब से या शीघ्रता से जो चलाया जाता है, वह **उरोकण** कहलाता है। अन्य विद्वानो का कहना है कि जहाँ अभिनेता ताल-मात्रा के प्रमाण से शरीर को कुछ सुन्दरतापूर्वक शीघ्रता से कम्पित करता है वहाँ उरोकण लास्याग होता है। इसी को नाटच-सम्प्रदाय के आचार्य **रचे** नाम से पुकारते है ।

७ ढिल्लाई

नर्तकी तनुते नृते यदाङ्गं स्तोकसौष्ठवम् ।
भावार्द्र हृदयोपेता विलासमधुरान्वितम् । 1637
हेलाभावालसं यत्र सा ढिल्लाई तदा मता ।।१५३०।।

जब नृत्य मे भावो से सरस हृदयवाली नर्तकी विलास के माधुर्य से युक्त और शृगार-सूचक हाव-भावो से अलसाये हुए अग को किञ्चित् सुन्दरता के साथ फैलाती है, तब उसे **ढिल्लाई** लास्याग कहते है ।

८ त्रिकलि

चार्या स्थानेऽथवाताललयानुगतिभिर्यदा । 1638
विधुताकम्पिताधूतपरिवाहितकम्पितैः ।।१५३१।।
पञ्चभिर्मूर्धभिर्यत्र पात्रं चित्तानि पश्यताम् । 1639
आनन्दयत्यसौ सद्भिस्तदा त्रिकलिरीरितः ।।१५३२।।

जब चारी मे या स्थानक मे ताल-लय का अनुगमन करने वाले, **विद्युत**, **आकम्पित**, **आधूत**, **परिवाहित** ओर **कम्पित** नामक पाँच मस्तक मुद्राओ द्वारा अभिनेता देखने वालो के चित्त को आनन्दित कर देता हे, तब सज्जन लोग उसे **त्रिकलि** लास्याग कहते हे ।

९ किन्तु

यत्राङ्गना गीततालतुलितं चालन यदा । 1640
भ्रुवयोः स्तनयो.कट्याः कुर्यात् किन्तु तदा रिवदम् ।।१५३३।।

जहाँ रमणी गीत के ताल के अनुसार भौहो, स्तनो तथा कटि का सचालन करती हे, वहाँ **किन्तु** नामक लास्याग होता है ।

१० देशीकार

मनोहरं यदग्राम्य तत्तद्देशानुसारतः । 1641
नानारीत्यन्वितं नृत्तं देशीकारमिद जगुः ।।१५३४।।

मनोहर, ग्राग्य से भिन्न और तत्तत् देश के अनुसार अनेक प्रकार की गीतियो से युक्त नृत को **देशीकार** लास्याग कहते है ।

११ निजापन

पात्रे यत्राप्रत्नेन सौष्ठवं रेखयान्वितम् । 1642
नृत्तति प्रेष्यते दृष्टिः करे सुगतिसुन्दरी ।
सभ्यातिमोहनीभावसम्पन्ना तन्निजापनम् ।।१५३५।। 1643

जहाँ आमानी से सुन्दरतापूर्वक रेरा (राग) से अन्वित होकर नृत्य करते हुए पात्र पर दृष्टिपात किया जाय और हाथ मे सभासदो (दर्शको) को मोहित करने वाली अच्छी गति रूपी सुन्दगी हो, तो वहाँ **निजापन** लास्याग होता है ।

१२ उल्लास

क्षिप्रं निरूपितास्तालान् दर्शयेद् भावसूचकैः ।
द्विगुणैस्त्रिगुणैर्यद्वा पात्रं गात्रसमुद्भवैः ।।१५३६।। 1644
सूक्ष्मैरसकृदुल्लासैर्मनो हरति पश्यताम् ।
तदोल्लासं समाचष्टं वीरसिहसुनन्दनः ।।१५३७।। 1645

१७ ढाल

यदा [त्व] मन्दमुल्लोलकमलोपरि बिन्दुवत् । 1651
नृत्ये यत्राङ्सञ्चारः तदासौ ढाल उच्यते ।
इममेव बुधा केचित्तानानाम्ना प्रचक्षते ॥१५४३॥ 1652

जब नृत्य मे अत्यन्त चचल कमल पर जल-बिन्दु की तरह अगो का सचार किया जाता है, तब वह **ढाल** नामक लास्याग कहलाता है । इसी को कोई विद्वान् **तान** नाम से अभिहित करते है ।

१८ छेवा

सुभ्रुवो यत्र नेत्रान्तौ भावगर्भौ स्वभावतः ।
तरलौ नर्तने स्यातामसौ छेवा मता बुधैः ॥१५४४॥ 1653

जहाँ नृत्य मे नर्तकी के नेत्रो के कोर स्वभावत भावगर्भित एव चचल हो, वहाँ बुधजन **छेवा** नामक लास्याग मानते है ।

१९ अगहार

ललिता यत्र गात्रस्य नतिः पूर्वोत्तरार्धयोः ।
चापवत् तालसहिता सोऽङ्गहारोऽभिधीयते ॥१५४५॥ 1654

जहाँ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध धनुष की तरह अगो का वलन (झुकना) ताल सहित सुन्दर दिखाई दे, वहाँ **अगहार** लास्याग होता है ।

२० लघित

मुहुर्मुहुः समुल्लङ्घ्य वाद्यस्यावादनं यदा ।
पात्र विश्रम्य विश्रम्य नृत्येत् स्याल्लङ्घितं तदा ॥१५४६॥ 1655

जब पात्र वाद्य के शब्द का बार-बार उल्लघन करके रुक-रुक कर नृत्य करे, तब **लघित** लास्याग होता है ।

२१ विहसी

विहसी तु तदा ज्ञेया यदा स्यात् सुन्दरस्मितम् ॥१५४७॥

जब सुन्दर मुसकराहट के साथ नृत्य किया जाय, तब उसे **विहसी** लास्याग कहते है ।

२२ नीकी

नर्तकी नर्तने गीतवाद्यताल [ल] येष्वपि । 1656
अस्खलन्ती यदा नीकी तदा जनमनोहरा ॥१५४८॥

जब नृत्य मे नर्तकी गीत, वाद्य, ताल और मे लय भी किसी प्रकार की त्रुटि न करती हुई जन-मन को आकृष्ट कर ले, तब वह **नीकी** लास्याग होता है

२३ नमनिका

अङ्गानां यत्र पात्रस्य प्रयासव्यतिरेकत । 1657
नमनं स्यात् प्रयोगेषु दुष्करेष्वपि सा तदा ।
मता नमनिका धीरै· सभ्यानन्दविवर्धनी ॥१५४९॥ 1658

जहाँ अत्यन्त कठिन प्रयोगो मे बिना प्रयास के भी (स्वाभाविक रूप मे)पात्र के अगो का नमन होना रहता है, धीर पुरुष उसे, सभासदो के आनन्द को बढाने वाली, **नमनिका** नामक लास्याग कहते है ।

२४ शका

अङ्गानि तावदौद्धत्याच्चालयित्वा सविभ्रमम् ।
पुनराहार्य तान्यग्रे पार्श्वयोरपि नर्त्तकी । 1659
वञ्चयन्तीव चेल्लोकं नृत्येच्छङ्का तदोदिता ॥१५५०॥

जहाँ अगो को उद्धतता से विलासपूर्वक चलाकर नर्तकी पुन अगो को आगे तथा बगलो मे भी सचालित करके लोगो को ठगती हुई-सी नृत्य करे, तो वहाँ **शका** नामक लास्याग होता है ।

२५ वितड

स्वभावाल्ललितं चारीकरणादिबलाद् यदा । 1660
कुरुते कठिन यत्र तदेदं वितडं मतम् ॥१५५१॥

जहाँ चारी, करण आदि के बल से कठिन नृत्य को भी स्वाभाविक रूप मे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया जाय, वहाँ **वितड** नामक लास्याग होता है ।

२६ गीतवाद्यता

नृत्येदनुगुणं यत्र नर्तकी गीतवाद्ययोः । 1661
अक्षराणां लयस्यापि समता गीतवाद्यता ॥१५५२॥

जहाँ नर्तकी गीत और वाद्य के अनुकूल नृत्य करे और अक्षरो तथा लय की भी सगति रहे, वहाँ **गीतावद्यता** नामक लास्याग होता है ।

२७ विवर्तन

वाद्यप्रबन्धवर्णानां यत्र साम्येन नर्तनम् । 1662

रचयेद् हस्तकैः पात्रं चारीभिः करणैरपि ।
भ्रमरीभिश्च सम्प्रोक्तं विवर्तनमिदं बुधै ॥१५५३॥ 1663

जहाँ पात्र वाद्य और गीत के वर्णो के साम्य से हाथो, चारियो, करणा आर भ्रमरियो द्वारा नृत्य प्रस्तुत करे वहाँ उसे बुधजन **विवर्तन** नामक लास्याग कहते है ।

२८ थरहर

नर्तने तनुयात् क्षीप्रं कम्पनं कुचयोर्नटी ।
भुजावधि विलासेन यदा थरहरं तदा ॥१५५४॥ 1664

जब नर्तकी नृत्यकाल मे कुचो के कम्पन को हाव-भाव के साथ शीघ्रतापूर्वक बाँहो तक फैलाती है, तब **थरहर** नामक लास्याग होता है ।

२९ स्थापना

या स्थितिर्ललिता भूमौ सरेखमुखरागभाक् ।
समार्धे नर्त्तनेऽड्गानां प्राहुस्तां स्थापना बुधाः ॥१५५५॥ 1665

नृत्य के बराबर आधे भाग मे भूमि पर अगो को ऐसे सुन्दर ढग से स्थापित किया जाय, जिसमे रेखा सहित चेहरे का रग स्पष्ट दिखायी दे, तो उसे बुधजन **स्थापना** नामक लास्याग कहते हैं ।

३० सौष्ठव

सौष्ठवस्य पुरोक्तस्य चतुर्भिर्बाष्टभिर्मिता ।
यद् वा द्वादशभिर्यत्राड्गुलैर्वा खर्वता त्रिधा ॥१५५६॥ 1666
तत्तद्देशानुसारेण कटिकण्ठोरुजानुषु ।
वाञ्छया वा महीपस्य सद्भिस्तत् सौष्ठवं मतम् ॥१५५७॥ 1667

पहले बताये गये **सौष्ठव** को चार, आठ या बारह अगुल के नाप से कटि, कण्ठ, जाँघ ओर घुटने मे तीन बार देश-विशेष के अनुसार या राजाज्ञा के अनुसार छोटा कर दिया जाय, तो सज्जन लोगो ने उसे **सौष्ठव** नामक लास्याग कहा है ।

३१ स्रुवा

यथा मन्दानिलाघाताच्चलेद्दीपशिखा तथा ।
चलेयुर्यत्र गात्राणि सा स्रुवा परिकीर्तिता ॥१५५८॥ 1668

जैसे मद वायु के झोके से दीपक की लौ चलायमान हो जाती है, उसी तरह जहा अग चलायमान हो, वहाँ **ग्रुवा** नामक लास्याग होता है ।

३२ मसणता

मुग्धां स्निग्धा यदा दृष्टिं तनुते रसनिर्भराम् ।
नृत्यहस्तानुगां नृत्ये तदा मसृणता भवेत् ।।१५५९।। 1669

जब नृत्य मे नृत्य-हस्तो का अनुगमन करने वाली मुग्ध, स्निग्ध तथा रसभरी दृष्टि को फैलाया जाय, तब **मसणता**, नामक लास्याग होता है ।

३३ उपार

पूर्वं पूर्वमुपक्रान्ता नृत्यस्यावयवा यदा ।
भूषावलितसर्वाङ्गा वर्तेरन्नुत्तरोत्तरम् । 1670
तालप्रयोगनैपुण्यात् तदोपारो मतो बुधैः ।।१५६०।।

जब पहले-पहले आरभ किये गये नृत्य के अवयव आभूषणो से सर्वांग युक्त होकर आगे-आगे ताल-प्रयोग निपुणता से विद्यमान रहे, तब **उपार** नामक लास्याग होता है ।

३४ अगानग

अङ्ग लास्याङ्गमादिष्टमनङ्गं ताण्डवं मतम् । 1671
यत्र नृत्येऽनयोर्योगस्तदङ्गानङ्गमीरितम् ।।१५६१।।

अग को **लास्याग** और अनग (काम) को **ताण्डव** (नृत्य) कहा गया है । जहाँ नृत्य मे दोनो का योग होता है वहाँ **अङ्गानङ्ग** नामक लास्याग होता है ।

३५ अभिनय

भावप्रकाशकैरङ्गैर्यथावत् करणादिकम् । 1672
विदध्याद् यत्र पात्रं चेदसावभिनयस्तदा ।।१५६२।।

जहाँ पात्र भावसूचक अगो से अच्छी तरह करण आदि की रचना करे वहाँ **अभिनय** नामक लास्याग होता है ।

६ कोमलिका

यदा नृत्येऽङ्गनाङ्गाना क्रियाभिर्वलनादिभिः । 1673
आर्द्रता प्रेक्ष्यते चित्तात् परा कोमलिका तदा ।।१५६३।।

जब नृत्य मे सुन्दरियो के अगो की वलन आदि क्रियाओ द्वारा चित्त से सरसता लक्षित होती है, तब **कोमलिका** नामक लास्याग होता है ।

३७ मुखर

यत्र पात्रं मुखे कुर्याद् वर्णानां तु विवर्तनम् । 1674
तत्तद्रसानुगुण्येन भवेन्मुखरसस्त्वसौ ॥१५६४॥

जहाँ पात्र अपने मुख मे तत्तत् रसो के अनुकूल अक्षरो को परिवर्तित करे, वहाँ **मुखरस** नामक लास्याग होता है ।

अन्य भेद

अन्येऽपि सन्ति ये भेदा देशीलास्याङ्गसंश्रयाः । 1675
ग्रन्थविस्तरसंत्रासान्न तेऽस्माभिर्निरूपिता. ॥१५६५॥

देशी लास्यागो के अन्य जो भेद है, उन्हे ग्रन्थ के विस्तार भय से नही बताया गया है ।

लास्यागो का निरूपण समाप्त



कलास करण प्रकरण / पन्द्रह

[1]कलास करणो का निरूपण

कलास (ताल के अनुसार नृत्य) के भेद

विद्युत्कलासः खड्गाद्य. कलासो मृगपूर्वकः । 1676
बकाद्यः प्लवपूर्वश्च हंसाद्यश्चेति षण्मता. ॥१५६६॥

कलास के छह भेद होते है १ विद्युत्कलास, २ खड्गकलास, ३ मृगकलास, ४ बककलास, ५ प्लवकलास और ६ हसकलास ।

तत्राद्यौ प्लुतमानेन गुरुमानात् ततोऽग्रिमौ । 1677
पञ्चमो लघुमानने षष्ठः स्याद् द्रुतमानतः ॥१५६७॥

उनमे **विद्युत्कलास** ओर **खड्गकलास** त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से, **मृगकलास** आर **बककलास** द्विमात्रिक ताल के प्रमाण से, **प्लवकलास** एकमात्रिक ताल के प्रमाण से, आर **हसकलास** अर्धमात्रिक ताल के प्रमाण मे सम्पन्न होते है ।

तत्राद्यः षड्विधः खड्गकलासः स्याचतुर्विधः । 1678
तृतीयस्त्वेकधा तुर्यपञ्चमौ च चतुर्विधौ ॥१५६८॥
त्रिधान्तिमः कलासः स्यादेव द्वाविंशतिर्मताः । 1679
कलासाः क्रमशस्तेषा संचक्षे लक्षणान्यहम् ॥१५६९॥

विद्युत्कलास के छह भेद, **खड्गकलास** के चार भेद, **मृगकलास** का एक भेद, **बककलास** आर **प्लवकलास** के चार-चार भेद और **हसकलास** के तीन भेद होते है । इस प्रकार सब को मिलाकर कुल बाईस कलास होते है । अब क्रमश उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है ।

प्रथम

छह विद्युत्कलास (१)

मेघपंक्तौ यथा विद्युच्चकास्ति सचमत्कृतिः । 1680
तथा यत्र पताकादीन्न प्लुतमानकृतान् करान् ॥१५७०॥

---

[1] कलास एक वाद्ययत्र का नाम है। उसके ताल-प्रमाण के अनुसार हस्तपादादि की विशेष चेष्टाओ की योजना को इस प्रकरण के अन्तर्गत निरूपित किया गया है ।

तिर्यगूर्ध्वमधोऽधश्चेदारादातन्वती नटी । 1681
विभाति विद्युदाद्यस्तु कलासः स तदोदितः ।।१५७१।।
वामं करं पताकाख्यं नीत्वा दक्षिणकर्णकम् । 1682
तथा परं करं वामां कटिं वामां च जङ्घिकाम् ।।१५७२।।
एतद्व्यत्यासनेनापि कृत्वा पाणिद्वयं ततः । 1683
सम्मुखं रचयेद् विद्युद्भेद आद्यो भवेदसौ ।।१५७३।।

जैसे मेघो की पक्ति मे बिजली चमत्कार के साथ चमकती है, उसी तरह जहाँ त्रिमात्रिक ताल के मान से बनाये हुए पताक आदि हस्तो को तिरछे, ऊपर, नीचे और दूर या समीप फैलाती हुई नर्तकी विराजमान होती है, वहाँ **प्रथम विद्युत्कलास** होता है। बाये हाथ को दाहिने कान बाये हाथ, बायी कटि और बायी जाँघ के पास ले जाकर सामने **पताक हस्त** की रचना करे। उसको बदलकर भी हाथ की रचना करे, अर्थात् बाये **पताक हस्त** के बदले दाहिने हाथ को **पताक हस्त** मे परिणत करे। ऐसा करने से भी **प्रथम विद्युत्कलास** बनता है।

द्वितीय

विधाय दक्षिणं पाणिमर्धचन्द्रं स्वसम्मुखम् । 1684
विलोक्य च नटी कुर्याद् धनुराकृति जानु चेत् ।
तदा भेदो द्वितीयः स्याद् विद्युदाद्यकलासजः ।।१५७४।। 1685

अपने सम्मुख दाहिने हाथ को **अर्धचन्द्र हस्त** मे परिणत करके नटी घुटने को धनुष के आकार मे प्रस्तुत करे। ऐसा करने से **द्वितीय विद्युत्कलास** बनता है।

तृतीय

समदृष्टिर्नटी हस्तमञ्जलिं प्रविधापयेत् ।
अस्याङ्गुलीः प्रसार्याथ पुरतः शिखरं करम् । 1686
कृत्वा प्रसारयेद् बाहू तदा भेदस्तृतीयकः ।।१५७५।।

सीधी दृष्टि वाली नर्तकी **अञ्जलि हस्त** की रचना करके उसकी उँगलियो को फैला दे, फिर सामने **शिखर हस्त** की रचना करके दोनो भुजाओ को फैला दे। ऐसा करने से **तृतीय विद्युत्कलास** बनता है।

चतुर्थ

केशबन्धौ करौ [कृ] त्वा क्रमादलिकमूर्धनोः । 1687
करौ दक्षिणवामौ चेन्निधाय द्वौ पताककौ ।

कुर्यात् तदा भवेद् भेदश्चतुर्थश्च पुरोदितः ॥१५७६॥ 1688

केशबन्ध मुद्रा मे दोनो हाथो की रचना करके दाहिने ओर बाये हाथो का क्रमश ललाट ओर मस्तक पर रख कर दो **पताक हस्तो** की रचना करे। ऐसा करने से **चतुर्थ विद्युत्कलास** बनता है।

पचम

कृत्वा पुष्पपुटं पाणिमुच्चैस्तं द्विर्निरीक्ष्य च ।
तदनूत्सङ्गमारच्य चरणै दक्षिणं द्रुतम् ॥१५७७॥ 1689
स्पृशेद् दक्षिणहस्तेन वामाङ्घ्रि वामपाणिना ।
यत्रासौ पञ्चमो भेदः कलासज्ञैरुदीरित ॥१५७८॥ 1690

पुष्पपुट नामक हाथ को ऊँचा करके दो बार निरीक्षण करे, फिर **उत्सग** नामक हाथ की रचना करके दाहिने हाथ मे दाहिने पैर का ओर बाये हाथ से वाये पैर का स्पर्श करे। ऐसा करने मे **पचम विद्युत्कलास** बनता है।

षष्ठ

प्लुतमानकृताङ्घ्रिश्चेदधो [ऽथ] मकरं करम् ।
कृत्वा नृत्यति पाणिभ्यां षष्ठो भेदस्तदोदितः ॥१५७९॥ 1691

त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से पैर और नीचे **मकर** नामक हाथ की रचना करके दोनो हाथो से नृत्य करे। ऐसा करने से **षष्ठ विद्युत्कलास** बनता है।

चार खड्गकलास (२)

प्रथम

सव्यापसव्यतो यत्र नर्तकी चकिता मुहुः ।
विलोक्य च पुरः पश्चाद् धृतखड्गलतेव सा ॥१५८०॥ 1692
आचरन्ती प्रचारं चेद् विचित्रमथ हस्तकान् ।
प्लुतमानकृतानर्धचन्द्रादीन् रचयेत् स्फुटान् । 1693
तदा खड्गकलासोऽसौ विद्वद्भिः परिभाषितः ॥१५८१॥

जहाँ खड्गलता (तलवार) धारण किये हुई-सी नर्तकी बाये, दाये, आगे और पीछे देखकर विचित्र चाल चलती हुई त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से **अर्धचन्द्र** आदि हाथो की सुस्पष्ट रचना करे, वहाँ विद्वानो ने उसे **प्रथम खड्गकलास** बताया है।

द्वितीय

वामं करं कटौ न्यस्य पर खड्गाकृतिं करम् । 1694
कृत्वा सकम्पं चेदर्धचन्द्रमास्ते तदादिगः ॥१५८२॥
कृत्वा कपोतमूर्ध्वं चेदधोमुष्टिं करं ततः । 1695
यत्र तिर्यक् पताकाख्य कर कुर्यात्तदाभिधा ।
द्वितीया खड्गपूर्वस्य कलासस्य निरूपिता ॥१५८३॥ 1696

बाये हाथ को कटि पर रखकर दूसरे हाथ को खड्गाकृति (खड्ग जैसा) बनावे, फिर कम्पन सहित **अर्धचन्द हस्त** की रचना करे , फिर **कपोत हस्त** को ऊपर, **मुष्टि हस्त** को नीचे तथा **पताक हस्त** को तिरछा करे। ऐसा करने पर **द्वितीय खड्गकलास** निष्पन्न होता है ।

तृतीय

विधाय त्रिपताकौ द्वौ यस्य यश्चरणः पुरः ।
घातयन्निव तत्रैतं योजयेत्स तृतीयकः ॥१५८४॥ 1697

दोनो **त्रिपताक हस्तो** की रचना करके आगे चरण-प्रहार करने से **तृतीय खड्गकलास** बनता है ।

चतुर्थ

स्वस्तिकं कर्कटं मुष्टिपताकपाणी चतुरः ।
धृतिमोहघातपातक्रियां कुर्याच्चतुर्थकः ॥१५८५॥ 1698
तत्र [वि] धाश्चतुर्धोर्ध्वमधः पार्श्वद्वयोऽपि च ।

चतुर जन **स्वस्तिक, कर्कट, मुष्टि** तथा **पताक** नामक हाथो की रचना करके धैर्य, मोह, घात ओर पतन क्रिया को करे। ऐसा करने से **चतुर्थ खड्विलास** होता है। यदि उक्त हस्तो को ऊपर -नीचे तथा दोनो पार्श्वो मे भी सचालित किया जाय तो **चतुर्थ खड्गकलास** निष्पन्न होता है ।

एव खड्कलासस्य भेदाश्चत्वार ईरितः ॥१५८६॥ 1699

इम प्रकार **खड्विलास** के चारो भेदो का निरूपण कहा गया है ।

मृगकलास (३)

पादाङ्गुलीभिराक्रम्य भुवमुत्थाय जानुनो ।
मुहुर्मुहुः सन्निपात्य गर्भखिन्नमृगीव चेत् ॥१५८७॥ 1700

सालस्यगमनोपेता मृगशीर्षकरान्विता ।
नर्तकी गुरुमानेन हरिणप्लुतया प्लुतम् । 1701
विदध्याद् विचित्र्यां यत्र कलासोऽसौ मृगादिगः ॥१५८८॥

यदि पैरो की उगलियो से पृथ्वी को आक्रान्त करके दो घुटनो को उठाकर तथा बार-बार गिराकर, गर्भभार से खिन्न हरिणी की तरह अलसायी हुई चाल वाली, नर्तकी **मृगशीर्ष** नामक हाथ की रचना करके हरिण की छलाँग मारकर चले, तो वह **मृगकलास** होता है ।

चार बककलास (४)

प्रथम

यत्र पक्षौ समानीयौ बकीवाधून्यती करौ । 1702
सव्यापसव्ययोरारात् सन्दंशमुकुलाभिधौ ॥१५८९॥
नर्तकी लघुमानेन कृतासनसमुत्थितिः । 1703
नृत्येत् ससौष्ठवं स स्यात् कलासो बकपूर्वकः ॥१५९०॥
कामपि भ्रमरी कृत्वा संहतस्थानमाश्रिता । 1704
करौ कृत्वाऽलपद्माख्यावरालौ यत्र पादयोः ॥१५९१॥
नीत्वा क्रमेणैकदा वा कम्पयेदच्युताविव । 1705
जलृविलन्नाथवा सव्यं पाणि मुकुलसंज्ञकम् ॥१५९२॥
मत्स्यग्रहासक्तचित्तबकवद्यदि संव्रजेत् । 1706
पादाग्रेण नटी मन्दं मन्दं पश्चात्पुरोऽपि च ।
तदैष भेद आद्यः स्याद् बकपूर्वकलासजः ॥१५९३॥ 1707

जैसे बगली अपने पखो को फडफडाती है, उसी तरह नर्तकी अपने हाथो की मुद्रा बनावे, तत्पश्चात् बाये-दाये क्रम से समीप ही **सन्देश** और **मुकुल** हस्तमुद्राओ की रचना करे , तदनन्तर एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आसन से उठकर सुन्दर ढग से नृत्य करे । इसी को **बककलास** कहते है । **सहत** नामक स्थानक के आश्रित किसी **भ्रमरी** नामक चारी को करके **अलपद्म** एव **अराल** नामक हाथो की रचना करे, उन्हे पैरो के समीप ले जाकर क्रमश या एक साथ बिना गिराये ही कम्पित करे, जल से भीगी अथवा यो ही बाये हाथ की **मुकुल** मुद्रा बनाकर मछली पकडने मे दत्तचित्त बगली की तरह यदि नर्तकी पैरो के अग्रभाग से धीरे-धीरे पीछे या आगे की ओर चले तो **प्रथम बककलास** निष्पन्न होता है ।

द्वितीय

त्रिपताकौ यदा पाणी विषमासनसंश्रितौ ।
विधाय मण्डिकां पादौ यथास्वं च पदे पदे ।।१५९४।। 1708
नीत्वा तत्र करौ चित्रं सन्दंशमथ कुर्वती ।
पश्यन्त्यग्रे पार्श्वयोश्च चकितेव नटी मुहुः । 1709
तनोति यत्र नृत्तं स बकभेदो द्वितीयकः ।।१५९५।।

जब **त्रिपताक** दोनो हाथो को विषम आसन पर टिकाकर **मण्डिका** नामक मुद्रा (दे० श्लोक १५९६) रचकर दोनो पैरो को बगलो प्रत्येक पग मे ठीक ढग से रखकर **चित्र** तथा **सन्देश** नामक दोनो हाथो को बनाकर आगे और बगलो मे चकित होकर बार-बार देखती हुई नर्तकी नृत्य का विस्तार करती है, तब **द्वितीय बककलास** निष्पन्न होता है ।

तृतीय

सव्यापसव्यतो यत्र वामं दक्षिणतस्तथा । 1710
जानु सत्वरमापात्य भुव्यङ्घ्री स्थापयेद् यदा ।।१५९६।।
मण्डिका सा तदा प्रोक्ताशोकमल्लेन भूभुजा । 1711
विधाय मुकुलं हस्तं क्षिप्रमग्रे शनैरनु ।।१५९७।।
गच्छन्त्यनुपदं तद्वन्नटी स्खलति खिद्यति । 1712
धृतमुक्ते यथा मीने बकोऽस्यानुपदं क्रमात् ।।१५९८।।
अलपद्मराल च मुकुलं यत्र कुर्वती । 1713
नृत्ये चित्रमसौ भेदो बकस्य स्यात् तृतीयकः ।।१५९९।।

जब बाये-दाये क्रम से दाहिने तरफ से बाये घुटने को शीघ्रता से मोडकर दोनो पैरो को पृथ्वी पर स्थापित किया जाता है तब राजा अशोकमल्ल उसे **मण्डिका** कहते है । जहाँ **मुकुल हस्त** की रचना करके आगे शीघ्रता से और पीछे धीरे से चलती हुई नर्तकी, पकडी हुई मछ ली के छूट जाने पर बगुले की तरह, कदम-बकदम गिरती है और खिन्न होती है तथा **अलपद्म, अराल** एव **मुकुल** हस्त की रचना करती हुई नाचती है, वहाँ **तृतीय बककलास** निष्पन्न होता है ।

चतुर्थ

उत्तानवञ्चितौ पाणी विधायाथार्धचन्द्रकम् । 1714
कट्यां करं निवेश्याथ पादाग्राभ्यां नटी यदा ॥१६००॥
रचयन्ती गतीर्नाना [बक] वत् पुरतोऽनु च । 1715
पादाङ्गुष्ठकरस्पर्शान्नृत्ये वक्राकृतिस्तदा ।
तुर्यो भेदो बकाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०१॥ 1716

उत्तानवञ्चित नामक दोनो हाथो की रचना करके अर्धचन्द्र हस्त को कटि पर रखकर जब नर्तकी पैरो के अग्रभाग से बगुले की तरह आगे-पीछे अनेक प्रकार की चालो को रचती हुई **बक्राकृति** होकर पैरो के अगूठो को हाथ से छूकर नृत्य करती है, तब विद्वानो ने उसे **चतुर्थ बककलास** कहा हे ।

चार प्लवकलास (५)

प्रथम

विषमस्था समुत्प्लुत्य समौ पादौ यदा नटी ।
बिभ्रती सर्वतश्चित्रं त्रिपता [क] करान्विता ॥१६०२॥ 1717
नृत्येदसौ तदा प्रोक्तः कलासः प्लवपूर्वकः ।
त्रिपताकौ पताकौ वा कृत्वा नाभिस्थितौ करौ ॥१६०३॥ 1718
पद्भ्यां तालानुगं गच्छेत् पश्चाद्यत्र भवेदसौ ।
आद्यो भेदः प्लवाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०४॥ 1719

विषमासन से उछलकर **सम** नामक पैरो को धारण करती हुई नर्तकी जब सब ओर आश्चय के साथ **त्रिपताक** नामक हाथ से युक्त होकर नृत्य करती है, तब **प्लवकलास** निष्पन्न होता है। जहाँ पश्चात **त्रिपताक** या **पताक** नामक दोनो हाथो को नाभि पर रखकर पैरो से ताल का अनुसरण करती हुई **नर्तकी** चले, वहाँ विद्वानो ने **प्रथम प्लवकलास** माना है ।

द्वितीय

विधाय त्रिपताकौ चेद् वाममङ्घ्रिं पुरोगतम् ।
पाणिमेवं विधं वामं लघुमानेन नर्तकी ॥१६०५॥ 1720
वामतो गम [न] कृत्वा बध्नीयादासनं समम् ।

विषमं वा ततः स्थानात्समुत्प्लुत्य समाङ्घ्रिकम् । 1721
गच्छेत् तदा प्लवस्योक्तः सद्भिर्भेदो द्वितीयकः ।।१६०६।।

यदि **त्रिपताक** नामक दोनो हाथो की रचना करके बाये पैर ओर बाये हाथ को आगे किये हुए नतकी एकमात्रिक ताल के प्रमाण से वायी ओर जाकर **सम** या **विषम** नामक आसन को बाँधे, फिर उस स्थान से उछलकर **सम** पेर से चले । ऐसा करने पर सज्जनो ने **द्वितीय प्लवकलास** बताया है ।

तृतीय

त्रिपताकौ कटीक्षेत्रे विधाय सममासनम् । 1722
विषमं वा यदा स्थित्वा स्थित्वोत्प्लुत्य महीतले ।।१६०७।।
दधती चरणौ गच्छेल्लघुमानात् पुरोऽनु वा । 1723
पश्यन्तीमवनि ज्ञेयः प्लवभेदस्तृतीयकः ।।१६०८।।

त्रिपताक नामक दोनो हाथो को कटिक्षेत्र म रखकर **सम** या **विषम** आसन पर स्थित होकर तथा उछलकर पृथ्वी पर पैरो को रखती हुई नर्तकी यदि एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आगे या पीछे पृथ्वी को देखती हुई चले, तो वहाँ **तृतीय प्लवकलास** समझना चाहिए ।

चतुर्थ

यदाग्रे पृष्ठतश्चैव व्युत्क्रमात्क्रमतोऽथवा । 1724
सव्यापसव्ययोर्नृत्यं चतुर्धा सम्प्रजायते ।
तदा भेदः प्लवस्य स्याच्चतुर्थश्चतुरोदितः ।।१६०९।। 1725

जब आगे ओर पीछे न्यतिक्रम या क्रम से बायी-दाग्री ओर चार प्रकार से नृत्य किया जाता है, तब **चतुर्थ प्लवकलास** निष्पन्न होता है ।

तीन हसकलास (६)

प्रथम

हस्तौ विधाय हसास्यौ यत्र हंसीवनर्तकी ।
अतिरम्याङ्घ्रिविन्यासैर्नानागतिमनोहरम् ।।१६१०।। 1726
यदा नृत्यति हंसाद्यः कलासः स तदोदितः ।
नर्तकी दक्षिणे पार्श्वे विधाय मकरं करम् ।।१६११।। 1727

[[1]मकर दक्षपार्श्वस्थं पताक वामहस्तकम् ।
पुरतो यत्र हंसीव यायाद्भेदः स आदिमः । 1728

जहाँ **हसास्य** नामक दोनो हाथो की रचना करके नर्तकी हसी की तरह अति रमणीय चरण-विन्यासो से नाना प्रकार की सुन्दर चाले चलती हुई नृत्य करती है, वहाँ **हसकलास** कहा गया है । यदि नर्तकी दाहिने पार्श्व मे **मकर हस्त** तथा बाये हाथ को **पताकहस्त** बनाकर आगे हसो की तरह चले, तो वह **प्रथम हसकलास** होता है ।

द्वितीय

मुकुल हस्तमारभ्या पादाभ्या पृष्ठतो व्रजेत् ।
विचित्रलास्यभेदज्ञा हसीवासौ द्वितीयकः । 1729

यदि (नर्तकी) मुकुल नामक हाथ की रचना करके पैरो मे पीछे की ओर हसी की तरह चले, तो लास्यो के भेदो के ज्ञाता उसे **द्वितीय हसकलास** मानते है ।

तृतीय

हस्तं हसास्यमाधाय पार्श्वयोर्ललिता गतिम् ।
आलापवर्णतालाना क्रमतो यत्र नृत्यति । 1730
हंसीवासौ तृतीयोऽयं भेदः प्रोक्तः पुरातनै.] ।

जहाँ **हसास्य** नामक हाथ को बनाकर पार्श्वों मे ललित चाल चलती हुई नर्तकी आलाप, अक्षर तथा ताल के क्रम मे हसी की तरह नाचती है, वहाँ पूर्वाचार्यों ने **तृतीय हसकलास** माना है ।

समवेत रूप मे बाईस कलास करणो का निरूपण समाप्त

श्रीसाम्बाशिवार्पणमस्तु



१ **हसकलास** के ये भेद मूलपाठ मे अनुपलब्ध है। अत मैंने उन्हे प्रा० रसिकलाल सी० पारिख और डॉ० प्रियबाला शाह द्वारा सम्पादित श्री कुम्भकर्ण विरचित **नृत्यरत्नकोश** मे उद्धृत किया है—(सम्पादक) ।

चित्रसूची

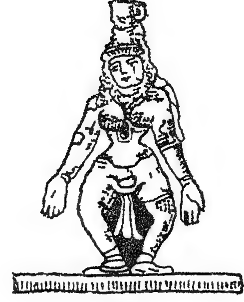
[१०८ नृत्तकरणो की मुद्राएँ]



तलपुष्पपुट



[illegible]



वर्तित



मण्डलस्वस्तिक



लीन



उन्मत्त



वलितोरु



स्वस्तिक



अर्धस्वस्तिक



दिक्स्वस्तिक



पृष्ठस्वस्तिक



आक्षिप्तरेचित



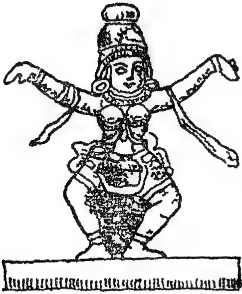
अलात



भुजगत्रासित



कटीसम



कटिछिन्न



घूर्णित



निकुञ्चित


निकुट्टक


अर्धनिकुट्टक


विक्षिप्ताक्षिप्तक


अपविद्ध


समनख


स्वस्तिकरेचित


मत्तल्लि


अर्धमत्तल्लि


वलित



अर्धरेचित



ऊर्ध्वजानु



कटिभ्रान्त



छिन्न



पादापविद्धक



भ्रमर



दण्डपक्ष



नूपुर



ललित


व्यसित


चतुर


क्रान्त


भुजगत्रस्तरेचित


भुजगाञ्चित


आक्षिप्त


उद्घट्टित


दण्डरेचित


वृश्चिक



वृश्चिकरेचित



वृश्चिककुट्टित



लतावृश्चिक



[illegible]



चक्रमण्डल



आवर्त



कुञ्चित



दोलापाद



तलविलासित


विवृत्त


विनिवृत्त


ललाटतिलक


विवर्तित


अतिक्रान्त


विद्युद्भ्रान्तत्रिक

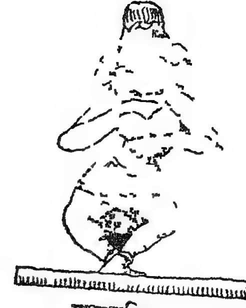

निशुम्भित


उरोमण्डल


विक्षिप्त


पार्श्वनिकुट्टक


तलसम्फोटित


गण्डसूचि

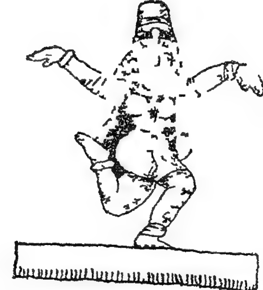

सूचि


अधसूचि


गजक्रीडितक


पार्श्वजानु

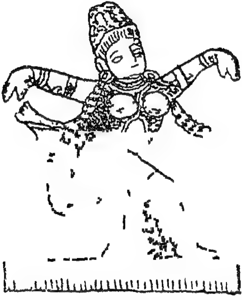

गरुडप्लुत


गृध्रावलीनक


दण्डपाद


सनत


सर्पित


मयूरललित


सूचीविद्ध


प्रेङ्खोलित


स्खलित


परिवृत्त


करिहस्त


प्रसर्पित


पार्श्वक्रान्त


निवेश


नितम्ब


हरिणप्लुत


सिंहविक्रीडित


सिंहाकर्षित


जनित


अवहित्थ


उद्‌वृत्त


तलसघट्‌टित


लोलित


शकटास्य


वृषभक्रीडित


एलकाक्रीडित


निश्कम्भ


उपसृत


विष्णुक्रान्त



अपक्रान्त



उरूद्वृत्त



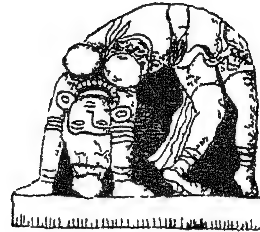
अञ्चित



सम्भ्रान्त



मदस्खलितक



अगल



रेचकनिकुट्टक



नागापसर्पित



गगावतरण

परिशिष्ट

श्लोकानुक्रमणिका

५५

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

नृत्याध्याय

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकानुक्रमणिका



पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

संक्षिप्त संकेत

अ० हा०	अगहार	भू० चा०	भूमिचारी
अ० ह०	असयुतहस्त	भू० म०	भूमिमण्डल
आ० चा०	आकाशचारी	म० ब०	मणिबन्ध
आ० म०	आकाशमण्डल	मा० ला०	मार्गलास्यॉग
उ० क०	उत्प्लुतिकरण	मु० द०	मुखदर्शन
क० क०	करकर्म	मु० रा०	मुखराग
कला०	कलास	मु० चा०	मुडुपचारी
ख० क०	खड्गकलास	मृ० क०	मृगकलास
च० गु०	चरणागुलि	र० दृ०	रसदृष्टि
ता० क०	ताराकर्म	वि० न०	विचित्राभिनय
त्र्य० अ०	त्र्यस्रमान मे अगहार		
द० क०	दन्तकर्म	वि० क०	विद्युत्कलास
दे० आ०	देशी आकाशचारी	व्य० दृ०	व्यभिचारी दृष्टि
दे० भू०	देशी भमिचारी	स० दृ०	सचारी दृष्टि
दे० ला०	देशी लास्यॉग	स० ह०	सयुतहस्त
दे० स्था०	देशी स्थानक	सु० स्था०	सुप्तस्थानक
नृ० क०	नृत्तकरण	स्त्री०स्था०	स्त्रीस्थानक
नृ० ह०	नृत्तहस्त	स्था० दृ०	स्थायिभाव दृष्टि
पा० त०	पादतल		
पु० स्था०	पुम्पस्थानक	ह० क०	हसकलास
प्र० भू०	प्रत्यगभूषण	ह० क०	हस्तकरण
प्ल० क०	प्लवकलास	ह० क्षे०	हस्तक्षेत्र
फु०	फुटनोट	ह० प्र०	हस्तप्रचार
भ० म०	भरतमत	ह० वि०	हस्तविन्यास
भा० भा०	भावानुभाव	ह० म०	हनूमन्मत
भा० न०	भावाभिनय		

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
अगहार	(दे० ला०)	अधोगत	(पा० त०)
अगानग	(दे० ला०)	अधोगत	(हृ० प्र०)
अगुलिमगता	(पार्ष्णि)	अधोमुख	(बाहु)
अघिताडिता	(दे० आ०)	अधोमुख	(ह० प्र०)
अमपर्यायनिर्गत	(चालन)	अध्यर्ध	(भू० म०)
असवर्तनिक	(चालन)	अध्यर्धिका	(भ्० चा०)
अग्रग	(ह० प्र०)	अनागमोटन	(चालन)
अग्रग	(पाद)	अनगोदीपन	(चालन)
अग्रतल	(ह० प्र०)	अनिल	(वायु)
अग्रतलसचर	(पाद)	अनिष्ट	(भा० न०)
अञ्चित	(पाद)	अनुलोमविलोमा	(मु० चा०)
अञ्चित	(बाहु)	अनुवृत्त	(मु० द०)
अञ्चित	(उ० क०)	अन्तरालग	(उ० क०)
अञ्चित	(करण)	अन्तर्गता	(पार्ष्णि)
अञ्चिता	(ग्रीवा)	अन्तर्यान	(गुल्फ)
अञ्जलि	(स० हृ०)	अपक्रान्त	(करण)
अड्डम् लिनिता	(दे० भू०)	अपक्रान्ता	(आ० चा०)
अड्डित	(भू० म०)	अपकुञ्चिनना	(दे० भू०)
अड्डिता	(भू० चा०)	अपक्षेपा	(द० आ०)
अतिक्रान्त	(आ० म०)	अपराजित	(चा० अ०)
अतिक्रान्त	(करण)	अपविद्ध	(बाहु)
अतिक्रान्त	(आ० म०)	अपविद्ध	(चालन)
अतिक्रान्ता	(आ० चा०)	अपविद्ध	करण)
अत्यर्ध	(भू० म०)	अपविद्ध	(त्र्य० अ०)
अद्भुता	(र० दृ०)	अपसर्पित	(च० गु०)
अध	(हृ० क्षे०)	अपसृत	(पार्श्व)
अध क्षिप्ता	(च० गु०)	अपसृत	(करण)
अधर	(अधर)	अपस्पन्दिता	(भू० चा०)
अधस्तल	(हृ० प्र०)	अभितप्ता	(स० दृ०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सक्षिप्त संकेत	शब्द	सक्षिप्त संकेत
अभिनय	(दे० ना०)	अवलोकित	(मु० द०)
अराल	(अ० ह०)	अवहित्थ	(स० ह०)
अरालखटकामुख	(नृ० ह०)	अवहित्थ	(स्त्री० स्था०)
अरालवर्तना	(वर्तना)	अवहित्थ	(करण)
अर्गल	(करण)	अवहित्थवर्तना	(वर्तना)
अर्धकुञ्चित	(जानु)	अश्वक्रान्त	(स्त्री० स्था०)
अर्धचन्द्र	(अ० ह०)	अष्टबन्धविहार	(चालन)
अर्धनिकुट्ट	(करण)	असंयुत हस्त	(अ० ह०)
अर्धनिकुट्टक	(करण)	आ	
अर्धपुराटिका	(दे० भू०)	आकाशचारी	(आ० चा०)
अर्धमण्डलवर्तना	(वर्तना)	आकाशमण्डल	(फु० नो०)
अर्धमण्डलिका	(दे० भू०)	आकुञ्चित	(म० ग्र०)
अर्धमत्तल्लि	(करण)	आकुञ्चित	(सु० स्था०)
अर्धमुकुला	(स० ह०)	आकृष्टि	(क० क०)
अर्धरेचित	(न० ह०)	आकेकरा	(म० दृ०)
अर्धरेचित	(करण)	आक्षिप्त	(करण)
अर्धसूचि	(करण)	आक्षिप्त	(च० अ०)
अर्धस्वस्तिक	(करण)	आक्षिप्तरेचित	(करण)
अलग	(उ० क०)	आक्षिप्तरेचित	(त्र्य० अ०)
अलगाञ्चित	(उ० क०)	आक्षिप्ता	(आ० चा०)
अलाग	(करण)	आच्छुरित	(च० अ०)
अलात	(व्य० अ०)	आदिकूर्मावतार	(करण)
अलात	(आ० म०)	आन्दोलित	(बाहु)
अलातचक्र	(चालन)	आभुग्न	(वक्ष)
अलपद्म	(नृ० ह०)	आयत	(अधर)
अलपद्मवर्तना	(वर्तना)	आयत	(स्त्री० स्था०)
अलपल्लव	(अ० ह०)	आलात	(आ० म०)
अलाता	(दे० आ०)	आलीढ	(प्र० स्था०)
अलाता	(आ० चा०)	आलीढ	(च० अ०)

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
जालाकित	(मु० द०)	[illegible]	(न० ह०)
आवर्त	(करण)	उत्स्पन्दिता	(भू० चा०)
आवर्त	(भू० म०)	उत्सारित	(बाहु)
आवर्तिता	(जंघा)	उदर	(उदर)
आविद्ध	(बाहु)	उद्घट्टित	(पाद)
आविद्धवक्र	(नृ० ह०)	उद्घट्टित	(करण)
आविद्धवर्तना	(वर्तना)	उद्घट्टित	(त्र्य० अ०)
आविद्धा	(आ० च०)	उद्वर्तित	(उर)
आवेष्टित	(ह० क०)	उद्वाहि	(मुख)
आसीन	(मा० ला०)	उद्वाहित	(वक्ष)
आस्कन्दित	(भू० म०)	उद्वाहित	(मु० स्था०)
आह्वान	(क० क०)	उद्वाहिता	(कटि)
इ		उद्वाहिता	(जंघा)
इन्द्रियाभिनय	(इन्द्रिय)	उद्वृत्त	(नृ० ह०)
इष्ट	(भा० भा०)	उद्वृत्त	(अधर)
उ		उद्वृत्त	(करण)
उक्तप्रत्युक्त	(मा० ला०)	उद्वृत्त	(त्र्य० अ०)
उच्छ्वास	(अनिल)	उद्वृत्ता	(आ० चा०)
उत्कट	(उ० स्था०)	उद्वृताग्र	(पा० त०)
उत्कुञ्चिता	(दे० भृ०)	उद्वेष्टन	(दे० आ०)
उत्कृष्टि	(क० क०)	उद्वेष्टित	(बाहु)
उत्क्षिप्ता	(भ्रू)	उद्वेष्टित	(क० क०)
उत्क्षिप्ता	(पार्ष्णि)	उन्नत	(पार्श्व)
उत्क्षिप्ता	(च० गु०)	उन्नत	(जानु)
उत्क्षेप	(दे० आ०)	उन्नता	(ग्रीवा)
उत्तमोत्तम	(मा० ला०)	उन्नता	(रसना)
उत्तान	(ह० पु०)	उन्मत्त	(करण)
उत्तानवञ्चित	(नृ० ह०)	उन्मेषित	(नलक)
उत्प्लुतिकरण	(उ० क०)	उपविष्ट स्थानक	(भ० म०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
कम्पित	(अधर)	कुञ्चित	(जानु)
कम्पित	(कपोल)	कुञ्चित	(पलक)
कम्पिता	(जघा)	कुञ्चित	(कपोल)
कम्पिता	(कटि)	कुञ्चित	(करण)
करकर्म	(क० क०)	कुञ्चित	(भ्रू)
करण	(करण)	कुञ्चिता	(ग्रीवा)
कररेचितरत्न	(चालन)	कुञ्चिता	(स० दृ०)
करस्पर्श	(उ० क०)	कुञ्चिता	(च० गु०)
करॉगुलि	(क० गु०)	कुट्टन	(द० क०)
करिहस्त	(नृ० ह०)	कुण्डलिचारक	(चालन)
करिहस्त	(करण)	कुलीरिका	(दे० भू०)
करिहस्ता	(दे० भू०)	कुद्वा	(स्था० दृ०)
करुणा	(र० ह०)	कूर्मालिग	(उ० क०)
कर्कट	(स० ह०)	कूर्मासन	(दे० स्था०)
कर्णयुग्मप्रकीर्ण	(चालन)	केशबन्ध	(नृ० ह०)
कर्तरीमुख	(अ० ह०)	केशबन्धवर्तना	(वर्तना)
कर्तरीमुख वर्तना	(वर्तना)	कोमलिका	(दे० ला०)
कर्तरी लोहडी	(उ० क०)	क्रमपादनिकुट्टिका	(मु० चा०)
कर्तर्याञ्चित	(उ० क०)	क्रान्त	(उ० स्था०)
कर्लविकविनोद	(चालन)	क्रान्त	(करण)
काडगूल	(अ० ह०)	क्रान्त	(आ० म०)
कातरा	(दे० भू०)	क्रोध	(भा० भा०)
कान्त	(आ० म०)	क्लिष्टागुप्ठ	(गुल्फ)
कान्ता	(र० ह०)	क्षाम	(उदर)
किन्तु	(दे० ला०)	क्षाम	(पृष्ठ)
कुञ्चन्मध्य	(पा० त०)	क्षाम	(कपोल)
कुञ्चन्मूला	(क० म०)	क्षिप्ता	(जघा)
कुञ्चित	(पाद)	क्षेत्राञ्चित	(उ० क०)
कुञ्चित	(बाहु)	क्षेप	(क० क०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
चालि	(दे० ला०)	ढिलाई	(दे० ला०)
चालिवट	(दे० ला०)	**त**	
चाषगत	(भू० म०)	तर्जन	(क० क०)
चाषगति	(भू० चा०)	तलदर्शिनी	(दे० भू०)
चित्रपद	(मा० ला०)	तलपुष्पपुट	(करण)
चिबुक	(चिबुक)	तलमुख	(नृ० ह०)
चक्कित	(द० क०)	तलमुखवर्तना	(वर्तना)
छ		तलविलासित	(करण)
छिन्न	(उ० क०)	तलसंघटित	(करण)
छिन्न	(करण)	तलसंस्फोटित	(करण)
छिन्ना	(कटि)	तलोद्वृत्ता	(दे० भू०)
छेद	(क० क०)	तार्क्ष्यपक्षविनोद	(चालन)
छेवा	(दे० ला०)	ताडन	(क० क०)
ज		ताम्रचूड	(अ० ह०)
जंघा	(जंघा)	ताराकर्म	(ता० क०)
जंघालघनिका	(दे० आ०)	तिरश्चीना	(जंघा)
जंघावर्ता	(दे० आ०)	तिर्यक्	(बाहु)
जनित	(करण)	तिर्यक्करण	(उ० क०)
जनिता	(भ० चा०)	तिर्यक्कुञ्चिता	(दे० भू०)
जलशयन	(उ० क०)	तिर्यक्ताण्डव	(चालन)
जानु	(जानु)	तिर्यक्स्वस्तिक	(उ० क०)
जानुगत	(उ० स्था०)	तिर्यगाञ्चित	(उ० क०)
जिह्वा	(स० दृ०)	तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र	(चालन)
जुगुप्सिता	(स्था० दृ०)	तिर्यङ्मुखा	(दे० भू०)
ड		तिरश्चीन	(पा० त०)
डमरी	(दे० आ०)	तिरश्चीनकुट्टिता	(मु० चा०)
डमरुकुट्टिता	(मु० च०)	तूक	(दे० ला०)
ढ		तृतीय	(वि० क०)
ढाल	(दे० ला०)	तृतीय	(ख० क०)

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
तृतीय	(व० क०)	दण्डवर्तना	(वर्तना)
तृतीय	(प्ल० क०)	दन्तकर्म	(द० क०)
तृतीय	(हृ० क०)	दर्पशरण	(उ० क०)
तोरणचालक	(चालन)	दष्ट	(द० क०)
तोलन	(क० क०)	दिक्स्वस्तिक	(करण)
त्र्यस्र अगहार	(अ० हा०)	दिग्वर्पाभिन्नचालन	(चालन)
त्र्यस्रा	(ग्रीवा)	दीना	(स्था० दृ०)
त्रस्ता	(स० द०)	दुःख	(भा० भा०)
त्रिकलि	(दे० ला०)	दृप्ता	(स्था० दृ०)
त्रिकोणचारी	(भु० चा०)	देवोपहारक	(चालन)
त्रिकोणस्वस्तिक	(चालन)	देशी आकाशचारी	(दे० आ०)
त्रिकूट	(मा० ला०)	देशीकर	(दे० ला०)
त्रिपताक	(अ० ह०)	देशी भौमचारी	(दे० भौ०)
त्रिपातकवर्तना	(वर्तना)	देशी लाम्याँग	(दे० ला०)
त्रिभगीवर्णसार	(चालन)	देशी स्थानक	(दे० स्था०)
त्रोटित	(पाद)	दोल	(म० ह०)
थ		दोल	(चालन)
थरहर	(दे० ला०)	दोलापाद	(करण)
थासक	(दे० ला०)	दोलापादा	(आ० चा०)
द		द्विगूढ	(मा० ला०)
दण्डपक्ष	(नृ० ह०)	द्वितीय	(हृ० क०)
दण्डपक्ष	(करण)	द्वितीय	(प्ल० क०)
दण्डपाद	(आ० स०)	द्वितीय	(ख० क०)
दण्डपाद	(करण)	द्वितीय	(वि० क०)
दण्डपाद	(आ० म०)	द्वितीय	(ब० क०)
दण्डपादा	(दे० आ०)	ध	
दण्डपादा	(आ० चा०)	धनुराकर्षण	(चालन)
दण्डपादाञ्चित	(उ० क०)	धनुर्पल्लविनाक	(चालन)
दण्डरेचित	(करण)	धूनन	(क० क०)

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
न		निर्भुग्न	(वक्ष)
नत	(पार्श्व)	निर्वर्तित	(उर)
नत	(जानु)	निवृत्ता	(ग्रीवा)
नत	(सु० स्था०)	निवेश	(करण)
नत पृष्टक	(उ० क०)	निशुम्भित	(करण)
नता	(ग्रीवा)	निःश्वास	(अनिल)
नता	(जंघा)	निषध	(स० ह०)
नता	(नासा)	निष्कर्षण	(द० क०)
नन्द्यावर्त	(दे० स्था०)	निष्क्राम	(ता० क०)
नर्मनिका	(दे० ला०)	निःसृता	(जंघा)
नम्र	(बाहु)	नीकी	(दे० ला०)
नलिनी पद्मकोश	(नृ० ह०)	निराश्रित	(चालन)
नवरत्नमुख	(चालन)	नूपुर	(करण)
नागबन्ध	(दे० स्था०)	नूपुरपादिका	(आ० च०)
नागबन्ध	(उ० क०)	नूपुरविद्धिका	(दे० भू०)
नागापसर्पित	(करण)	नृत्त हस्त	(नृ० ह०)
नाभि	(ह० क्षे०)	प	
नासा	(नासा)	पंचम	(वि० क०)
निकुट्टक	(दे० भू०)	पक्ष प्रद्योतक	(नृ० ह०)
निकुट्टक	(करण)	पताकवर्तना	(वर्तना)
निकुञ्च	(म० व०)	पतिता	(भ्रू)
निकुञ्चित	(करण)	पतिता	(पार्ष्णि)
निग्रह	(क० क०)	पतिता	(क० गु०)
निजापन	(दे० ला०)	पतिताग्र	(पा० त०)
नितम्ब	(नृ० ह०)	पतितोत्थिता	(पार्ष्णि)
नितम्ब	(करण)	पदद्वयनिकुट्टा	(मु० चा०)
नितम्ब वर्तना	(वर्तना)	पद्मकोश	(अ० ह०)
निमेषित	(पलक)	पद्मवर्तना	(वर्तना)
निरस्त	(अनिल)	पराङ्मुख	(ह० प्र०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सक्षिप्त सकेत	शब्द	सक्षिप्त सकेत
पूण	(पृष्ठ)	[illegible]	[illegible]
पूर्ण	(कपोल)	प्रमृत	(अनिल)
पृष्ठ	(पृष्ठ)	प्रसृता	(क० गु०)
पृष्ठलुठित	(मु० चा०)	प्रावृत	(दे० आ०)
पृष्ठस्वस्तिक	(करण)	प्रेङ्खोलित	(करण)
पृष्ठानुसारी	(बाहु)	प्रोन्नत	(स्त्री० स्था०)
पृष्ठोत्क्षेप	(दे० आ०)	प्लवकलास	(प्ल० क०)
पृष्ठोत्तानतल	(दे० स्था०)	**फ**	
प्रकम्पित	(वक्ष)	फुल्ल	(कपोल)
प्रच्छेदक	(मा० ला०)	**ब**	
प्रतिवर्तना	(वर्तना)	बककलाम	(ब० क०)
प्राकृत	(ता० क०)	बद्धा	(भू० चा०)
प्रत्यकभूषण	(प्र० भू०)	वल्लित वर्तना	(वतना)
प्रत्यालीढ	(प्र० स्था०)	बलिवन्धाञ्चित	(उ० क०)
प्रथम	(वि० क०)	बहिर्गत	(गुल्फ)
प्रथम	(ख० क०)	बहिर्गता	(जघा)
प्रथम	(ब० क०)	बाहु	(बाहु) –
प्रथम	(प्ल० क०)	बाहुबन्धलोहडी	(उ० क०)
प्रथम	(ह० क०)	ब्राह्मण	–(दे० स्था०)
प्रतिलोमानुलोमका	(मु० चा०)	**भ**	
प्रविलोकित	(मु० द०)	भय	(भ० भा०)
प्रवृद्ध	(अनिल)	भयानका	(र० दृ०)
प्रवेशन	(ता० क०)	भयान्विता	(स्था० दृ०)
प्रसन्न	(मु० रा०)	भाल वतना	(वर्तना)
प्रसारित	(पार्श्व)	भाव	(दे० ला०)
प्रसारित	(बाहु)	भावाभिनय	(भा० न०)
प्रसारित	(सु० स्था०)	भग्न	(मुख)
प्रसारिता	(च० गु०)	भुजगत्रासिन	(करण)
प्रसर्पित	(करण)	भुजगत्रासिता	(आ० चा०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सक्षिप्त सकेत	शब्द	सक्षिप्त सकेत
लोला	(रसना)	विकूणिता	(नासा)
लोलित	(करण)	विकृष्टि	(क्र० क०)
लोहडी	(उ० क०)	विकृष्टा	(नासा)
लोहड्याञ्चित	(उ० क०)	विकोशा	(स० दृ०)
व		विक्षिप्त	(करण)
वक्र	(चिबुक)	विक्षिप्ताक्षिप्तक	(करण)
वक्रकुट्टिना	(मु० चा०)	विक्षेपा	(दे० आ०)
वक्रा	(क० गु०)	विचित्र	(आ० म०)
वक्रा	(रसना)	विचित्रलोहडी	(उ० क०)
वक्ष	(वक्ष)	विच्यवा	(भू० चा०)
वक्ष स्वस्तिक	(करण)	वितड	(दे० ला०)
वर्तनाभरण	(चालन)	वितर्किता	(स० दृ०)
वर्तनास्वस्तिक	(चालन)	वितालित	(पलक)
वर्तित	(करण)	विद्युत्कलाम	(त्रि० क०)
वर्धमान	(म० ह०)	विद्युद्भ्रान्तक्रिय	(करण)
वर्धमान	(दे० स्था०)	विद्युद्भ्रान्ता	(चा० ल०)
वलन	(ता० क०)	विद्युद्भ्रान्ता	(आ० चा०)
वलित	(नृ० ह०)	विद्युद्भ्रान्ता	(दे० आ०)
वलित	(उरु)	विद्धा	(दे० आ०)
वलित	(स्त्री० स्था०)	विवृत	(मुख)
वलितोरु	(करण)	विनिगूहित	(अधर)
वलित	(करण)	विनिर्वर्तित	(स्त्री० स्था०)
वलिता	(ग्रीवा)	विनिवृत्त	(करण)
वलिता	(क० गु०)	विनिवृत्त	(मुख)
वहिर्गता	(पार्ष्णि)	विप्रकीर्ण	(नृ० ह०)
वामदक्षतिरश्चीन	(चालन)	विप्रकीर्णवर्तना	(वर्तना)
वामविद्ध	(आ० म०)	विप्लुता	(स० दृ०)
वालव्यसनचालन	(चालन)	विभ्रान्ता	(स० दृ०)
विकासी	(अधर)	विमुक्त	(अनिल)

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
विमुक्तक	(उ० स्था०)	विसर्जन	(क० क०)
वियुक्त	(गुल्फ)	विसृष्ट	(अधर)
वियुक्ता	(पार्ष्णि)	विस्मित	(अनिल)
वियुक्ता	(क० गु०)	विस्मिता	(स्था० दृ०)
विखण्डितबन्धन	(चालन)	विह्मी	(दे० ला०)
विलीन	(अनिल)	विहृत	(आ० म०)
विलोकित	(म० द०)	बीभत्सा	(र० दृ०)
विवतन	(ना० क०)	वीरा	(र० दृ०)
विवर्तन	(दे० ला०)	वृश्चिक	(करण)
विवर्तित	(पार्श्व)	वृश्चिककुट्टित	(करण)
विवर्तित	(पलक)	वृश्चिकरेचित	(करण)
विवर्तित	(अधर)	वृश्चिकापसृत	(व्य० अ०)
विवर्तित	(मु० स्था०)	वृषभक्रीडित	(करण)
विवर्तित	(करण)	वृषभासन	(दे० स्था०)
विवृत	(मुख)	वेष्टन	(दे० जा०)
विवृत	(जानु)	वेपथुव्यञ्जक	(चालन)
विवृत	(करण)	वैभाविक	(मा० ला०)
विवृत्ता	(कटि)	वैशाखरेचित	(करण)
विषण्णा	(म० दृ०)	वैशाखरेचित	(च० अ०)
विषमसूचि	(दे० स्था०)	वैशाखस्थानक	(त्र० स्था०)
विष्कम्भ	(उ० स्था०)	वैष्णव	(पु० स्था०)
विष्कम्भ	(करण)	वैष्णव	(दे० स्था०)
विष्कम्भ	(व्य० अ०)	व्यसित	(करण)
विष्कम्भापसृत	(व्य० अ०)	व्यभिचारिदृष्टि	(व्य० दृ०)
विष्णुक्रान्त	(करण)	व्यादीर्ण	(चिबुक)
विश्लिष्टवर्तित	(चालन)	व्याभुग्न	(मुख)
विश्लिष्टा	(दे० भू०)	व्यावर्तित	(क० क०)
विश्लेष	(क० क०)	व्यस्तोप्लुतिनिवर्तक	(चालन)
विशृगाटकबन्ध	(चालन)		

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
समपादनिकुट्टित	(मु० चा०)	सूचीविद्ध	(आ० म०)
समप्रकोष्ठचलन	(चालन)	सूच्यन्तर	(उ० क०)
सममूचि	(दे० स्था०)	सूच्यास्य	(नृ० हृ०)
समस्खलितिका	(दे० भू०)	सूत्कृत	(अनिल)
समा	(ग्रीवा)	सैन्धव	(मा० ला०)
समुद्गक	(अधर)	सोच्छ्वासा	(नासा)
समुद्वृत्त	(ता० क०)	सौष्ठव	(दे० ला०)
समोत्सारित	(भू० म०)	स्कन्ध	(हृ० क्षे०)
समोत्सारितमत्तल्ली	(भू० चा०)	स्कन्धभ्रान्त	(उ० क०)
सरल	(बाहु)	स्कन्धाञ्चित	(उ० क०)
सर्पित	(करण)	स्खलित	(अनिल)
सहजा	(भ्रू)	स्खलित	(करण)
साचि	(मु० द०)	स्तब्ध	(उरु)
साधारण	(चालन)	स्तम्भक्रीडनिक	(दे० भू०)
सारिका	(दे० भू०)	स्तम्भित	(अनिल)
सिंहाकर्षित	(करण)	स्त्रीस्थानक	(स्त्री० स्था०)
सिंहविक्रीडित	(करण)	स्थापना	(दे० ला०)
सीत्कृत	(अनिल)	स्थायिदृष्टि	(स्था० दृ०)
सुकलास	(दे० ला०)	स्थितपाठ्य	(मा० ला०)
सुप्तस्थानक	(सु० स्था०)	स्थितावर्ता	(भू० चा०)
सृक्कागुना	(रसना)	स्थिरहस्त	(च० अ०)
सूचि	(करण)	स्निग्धा	(स्था० दृ०)
सूची	(पाद)	स्पन्दिता	(भू० चा०)
सूची	(आ० चा०)	स्पर्शाभिनय	(हृ० भि०)
सूची	(दे० आ०)	स्फुरिका	(दे० भू०)
सूचीमुख	(अ० हृ०)	स्फुरित	(पलक)
सूचीमुखवर्तना	(वर्तना)	स्फुरित	(चिबुक)
सूचीबिद्ध	(करण)	स्फुरिता	(दे० भू०)
सूचीविद्ध	(च० अ०)	स्फोटन	(क० क०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

